श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

रचयिता
राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय
श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

सम्पादक
पं० रमाशंकर शास्त्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

● श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय पुष्प—१२८

● श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

● रचयिता
उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

● सम्पादक
पं० रमाशंकर शास्त्री

● प्रस्तावना
देवेन्द्र मुनि शास्त्री

● प्रथम प्रवेश
सन् १९८०, जनवरी
वि० सं० २०३६ वीर निर्वाण सं० २५०६

● मूल्य
पन्द्रह रुपए

● श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान) PIN—313001

● मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२

प्रकाशकीय

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय साहित्य की विविध विधाओं में नित नूतन ग्रन्थ प्रकाशित कर साहित्यिक क्षेत्र में अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। साहित्य की हर विधा में उसने उत्कृष्ट ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं जिनकी विज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और भावुक भक्तों ने उसे प्रेम से अपनाया है। इसके फलस्वरूप हमारे मन में अभिनव जागृति का संचार हुआ और हमने उत्साह के साथ एक के बाद एक ग्रन्थ प्रकाशित कर यह बताने का प्रयास किया कि लगन के साथ कोई भी कार्य किया जाय तो उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है।

"**श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्**" श्रद्धेय उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी की एक मौलिक कृति है जो विविध छन्दों में रचित है। यह काव्य सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ था और उसी समय प्रस्तुत काव्य की प्रतियाँ समाप्त हो गईं। इसे पुनः प्रकाशित करने की चिरकाल से इच्छा थी, पर गुरुदेवश्री चाहते थे कि इस काव्य को जो बहुत ही संक्षेप में है, इसलिए इसका पुनर्लेखन किया जाय। पर समयाभाव से इस कार्य में विलम्ब होता गया। सन् १९७६ (रायचूर), १९७७ (बेंगलोर), १९७८ (मद्रास) वर्षावासों में पुनः उसका नवीन दृष्टि से लेखन हुआ और गुरुभक्त पं० प्रवर रमाशंकर जी शास्त्री ने ग्रन्थ का संपादन किया। इस प्रकार हमारी वर्षों की मंगल कामना पूर्ण हुई।

ग्रन्थ का मुद्रण कलात्मक दृष्टि से सम्पन्न करने का श्रेय हमारे परम स्नेही श्रीचन्दजी सुराना को है। ग्रन्थ प्रेस में जाने पर भी लम्बे समय तक विद्युत् संकट के कारण मुद्रित नहीं हो सका। ग्रन्थ का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। जैन संस्कृति के ज्योतिर्धर आचार्य अमरसिंह जी महाराज की पावन-गाथा पर यह काव्य आधृत है। संस्कृत भाषा में जैन मूर्धन्य मनीषियों ने विपुल साहित्य का सृजन किया है। उसी परम्परा में प्रस्तुत काव्य भी है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज संस्कृत भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं। उनके द्वारा

लिखित प्रस्तुत काव्य विज्ञ समाज में पूर्ण रूप से समादृत होगा—ऐसा हमें आत्मविश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर श्रद्धेय गुरुदेवश्री के सुशिष्य देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने विस्तार से प्रस्तावना लिखकर ग्रन्थ की शोभाश्री में अभिवृद्धि की है। इसलिए हम उनका आभार मानते हैं।

जिन दानी महानुभावों ने उदारतापूर्वक प्रकाशनार्थ अर्थ-सहयोग प्रदान किया जिसके फलस्वरूप ग्रन्थ के प्रकाशन में सहूलियत रही, एतदर्थ उनके मधुर सहकार की भी हम भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं; और सदा उनका स्नेहपूर्ण सहकार मिलता रहेगा ऐसी आशा है।

—मन्त्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

उदयपुर

गीर्वाण गिरा के यशस्वी कवि और सफल समालोचक मङ्खक ने समालोचक के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है – किसी भी कवि के काव्य के मर्म को समझने की योग्यता समालोचक में होती है। सफल साहित्यकार ही कवि के कमनीय सद्गुणों की सौरभ दिग्दिगन्त में फैला सकता है। जैसे एक तैलबिन्दु बिना जल के विस्तार नहीं पाता वैसे ही समालोचक के अभाव में कवि के काव्य का रहस्य जनता समझ नहीं पाती। समालोचक कवि के काव्य की कसौटी करता है। वह सहृदयी होता है। उसका मानस उदात्त और हृदय विराट् होता है।

आचार्य राजशेखर ने "काव्य मीमांसा" में, आचार्य रुय्यक ने "साहित्य मीमांसा" में, पण्डित विश्वनाथ ने "साहित्य दर्पण" में काव्य के समस्त अंगों पर चिन्तन-मनन किया है। काव्य एक कला है। उसमें उदात्त भावानुभूति और रसानुभूति होती है। वह बुद्धि और तर्कप्रधान नहीं, अपितु अनुभूतिप्रधान होता है। उसमें कवि के अन्तःकरण का अनन्त आनन्द अठखेलियाँ करता रहता है। एतदर्थ ही महाकवि भवभूति के हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझनाये हैं कि मैं उस विमल वाणी को वन्दना करता हूँ जिसमें आत्मा की दिव्य और भव्य कला अमृत रूप में विद्यमान है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी कहा है—काव्य में कलाकार अपने को अभिव्यक्त करता है।

समवायांग, नायाधम्मकहा, राजप्रश्नीय, औपपातिक, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र और उनकी वृत्तियों में कला के सम्बन्ध में गहराई से विश्लेषण किया गया है। पुरुषों के लिए बहत्तर कलाएँ और महिलाओं के लिए चौंसठ कलाओं का विधान है। उन कलाओं में 'काव्य कला' भी एक कला है। 'ललित विस्तर' ग्रन्थ में काव्य करण विधि को कला में परिगणित किया है। भर्तृहरि ने तो काव्य कला रहित व्यक्ति को पशु की संज्ञा प्रदान की है।[1] कलाओं में काव्यकला श्रेष्ठ

---

१. साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥

कला है। 'काव्यालंकार' ग्रन्थ में आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप से लिखा है—ऐसा कोई शब्द नहीं, ऐसा कोई वाक्य नहीं, ऐसी कोई विद्या नहीं और ऐसी कोई कला नहीं जो काव्य का अंग होकर न आये।

काव्य क्या है ? इस प्रश्न पर अतीत काल से ही चिन्तन चलता रहा है। विभिन्न मनीषियों ने विभिन्न दृष्टियों से उत्तर देने का प्रयास किया है। किन्तु काव्य की सर्वसम्मत परिभाषा अभी तक निश्चित नहीं हो सकी। आचार्य भामह ने "काव्यालंकार" में शब्द और अर्थ को काव्य कहा है।[2] आचार्य दण्डी ने "काव्यादर्श" में शब्दार्थ रूपी शरीर को अलंकृत करने वाले अलंकारों को सर्वाधिक महत्त्व देकर उसे काव्य की संज्ञा से अभिहित किया है।[3] आचार्य कुन्तक ने "वक्रोक्ति जीवितम्" में साहित्य उसे माना है जिसमें शब्द और अर्थ का शोभाशाली सम्मिलन होता है जब कवि अपनी प्रकृष्ट, प्रतिभा से उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त शब्द समाविष्ट करता है। जो कुछ भी लेखबद्ध हो जाय वह साहित्य नहीं है, अपितु साहित्य वह है जिसमें हृदय की निर्मल भावना का विस्फोट होता है। साहित्य का श्रेष्ठतम रूप काव्य है। क्योंकि काव्य सुन्दर, सरस और मधुर होता है। उसमें व्याकरणशास्त्र की तरह नीरसता नहीं होती, दर्शन और तर्कशास्त्र की तरह गंभीरता नहीं होती, और गणितशास्त्र की तरह जटिलता नहीं होती। काव्य में लोकजीवन का मंगल और अखण्ड आनन्द का पयोधि उछालें मारता है। विदग्धता और सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यंजना शैली काव्य का प्राण है।[4] आनन्दवर्द्धन के अनुसार—काव्य वह है जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो।[5] वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है।[6] आचार्य मम्मट ने दोषरहित गुण-युक्त अलंकार से समलंकृत शब्दार्थमयी रचना को काव्य की अभिधा दी है।[7]

---

२. शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।

३. तैः शरीरं च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली॥
—दण्डी, काव्यादर्श

४. वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्।
—कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्

५. काव्यस्यात्मा ध्वनिः।
—ध्वन्यालोक

६. रीतिरात्मा काव्यस्य।
—वामन, अलंकार सूत्र

७. तदोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
—मम्मट, काव्यप्रकाश

विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है।[8] पंडित जगन्नाथ ने 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्दों को काव्य कहा है।[9] इसी तरह अग्निपुराणकार[10] तथा रुद्रट,[11] भोज,[12] जयदेव,[13] आचार्य हेमचन्द्र,[14] वाग्भट,[15] आदि ने भी काव्य की परिभाषाएँ निर्माण की हैं।

आचार्य राजशेखर ने लिखा है शास्त्र को समझने के लिए शब्द की अभिधा शक्ति पर्याप्त है, किन्तु काव्य को समझने के लिए केवल अभिधा ही पर्याप्त नहीं है, कहीं अभिधा, कहीं व्यंजना और कहीं लक्षणा आवश्यक है। काव्य में शब्द और अर्थ दोनों रहते हैं। वे दोनों एक दूसरे पर आधृत हैं। शब्द बिना अर्थ के नहीं रह सकता और अर्थ की अभिव्यक्ति शब्द के बिना संभव नहीं है। शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव ही काव्य नहीं है। काव्य में रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष-शून्यता आवश्यक है। काव्य में रसात्मकता होती है। सांसारिक जितने भी आनन्द हैं, वे क्षणिक हैं। प्रथम क्षण में उनकी जैसी अनुभूति होती है, वैसी अनुभूति बाद में नहीं होती। पर काव्य के आनन्द को देश-काल की संकीर्ण सीमा आबद्ध नहीं कर सकती। उस आनन्द की तुलना पुत्रजन्म, धनागमन, पद-प्राप्ति, प्रतिष्ठा की उपलब्धि और प्रमदा की उपलब्धि से भी कहीं अधिक है।

---

८. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण

९. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्:

—जगन्नाथ, रसगंगाधर

१०. संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्॥

—अग्निपुराण

११. ननु शब्दार्थौ काव्यम्।

—रुद्रट, काव्यालंकार

१२. निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम्। रसान्वितं।

—भोज, सरस्वती कण्ठाभरण

१३. निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्॥

—जयदेव, चन्द्रालोक

१४. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन।

१५. वाग्भट, काव्यानुशासन।

आचार्य मम्मट और विश्वनाथ ने काव्य के मुख्य रूप से माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण माने हैं। भरत और वामन ने दस गुणों का उल्लेख किया है। पर वे सभी गुण इन तीन गुणों में समाविष्ट हो जाते हैं। काव्य की आत्मा रस है। जिसके कारण रस में बाधा उपस्थित होती हो वह दोष है। मम्मट ने पद-दोष, पदांश-दोष, वाक्य-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष ये पाँच दोष के प्रकार बताये हैं। 'काव्य प्रकाश' के सप्तम उल्लास में उन्होंने उनका विस्तार से विवेचन भी किया है।

काव्य के प्राणतत्त्व के सम्बन्ध में काव्य-मनीषियों ने अत्यन्त गंभीरता से चिन्तन करते हुए रसवादी, अलंकारवादी, रीतिवादी, ध्वनिवादी, वक्रोक्तिवादी और औचित्यवादी इन छह सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। हम यहाँ पर सभी का विस्तार से विश्लेषण न कर संक्षेप में यही कहना चाहेंगे कि काव्य के विविध रूप, विविध अंग, विविध विधा के सम्बन्ध में हजारों वर्षों से उस पर चिन्तन किया जा रहा है।

भारतीय चिन्तकों ने काव्य के मुख्य दो भाग किये हैं—प्रेक्ष्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। जो काव्य रंगमंच पर अभिनय करने योग्य हो वह प्रेक्ष्यकाव्य है।[16] ऐसे काव्यों की पूर्ण आनन्द की उपलब्धि आँखों से देखने पर ही हो सकती है। श्रव्य-काव्य वह है जो कानों से सुना जाय।[17] मधुर स्वर से जो गाया जाता है और जिसे सुनकर आनन्द की अनुभूति होती है वह श्रव्यकाव्य है। प्राचीन काल में लेखन की परम्परा कम थी। इसलिए स्मृति के सहारे ही काव्य को स्मरण रखा जाता था, इसलिए वह श्रव्यकाव्य कहलाता था। आज श्रव्यकाव्य को अधिकांश रूप में पढ़ा ही जाता है, पर उसे पाठ्यकाव्य न कहकर श्रव्यकाव्य ही कहा जाता है। प्रेक्ष्यकाव्य भी पढ़े जाते हैं, किन्तु उसका वास्तविक आनन्द देखने में आता है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्यकाव्य के[18] पाठ्य और गेय ये दो भेद किये हैं—पाठ्य में नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, व्यायोग, डिम, उत्सृष्टिकांग, प्रहसन,

---

१६. प्रेक्ष्यमभिनेयम्।

—काव्यानुशासन ८-१ की वृत्ति (आ० हेमचन्द्र)

१७. श्रव्यमनभिनेयम्।

—वही० ८-१

१८. प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन ८-२

भाण, वीथी तथा सट्टक आदि हैं ।[19] और गेय में डोम्बिका, प्रस्थान, शिगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और राग काव्य आदि हैं ।[20] यहाँ पर हम उन सभी के भेद और प्रभेदों पर चिन्तन न कर, श्रव्य-काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य और मिश्र[21] उस पर विचार करते हुए मूल विषय पर प्रकाश डालेंगे ।

गद्य वह है जो आवश्यक काव्य गुणों से अलंकृत हो । साथ ही उसमें छन्द योजना का अभाव होता है ।[22] गद्यकाव्य को कथा और आख्यायिका इन दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं । आचार्य हेमचन्द्र के मतानुसार आख्यायिका गद्य-मय रचना होती है । जिसमें धीरोदात्त नायक अपने जीवनवृत्त को अपने मुँह से अपने मित्र आदि को बताता है । उसमें रोमांचक तत्त्व कन्यापहरण, संग्राम आदि होते हैं । संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "हर्ष चरित्र" को इसमें लिया जा सकता है ।[23]

कथा वह है जहाँ कवि स्वयं नायक के जीवनवृत्त का वर्णन गद्य में करता है । जैसे दशकुमार चरित्र, पंचतंत्र, कादम्बरी आदि ।[24] कथा में भी रोमांचक तत्त्व की प्रधानता रहती है ।

छन्दोबद्ध रचना पद्य है । छन्दोबद्ध होने से उसमें संगीत की सरसता रहती है जिससे सुनने में वह बहुत मधुर लगती है । पद्य के भी दो विभाग हैं—प्रबन्ध-काव्य और मुक्तककाव्य ।[25] प्रबन्धकाव्य में एक कथा रहती है और सभी पद्य एक दूसरे से संबंधित होते हैं । उसमें वर्णन भी होता है, प्राक्कथन भी होता है;

---

१९. पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिकासमवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकांकप्रहसन भाण-वीथी सट्टकादि ।

—वही० अध्याय ८ सूत्र ३

२०. गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिगकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासगोष्ठी श्रीगदितरागकाव्यादि ।

—वही० अध्याय ८, सूत्र-४

२१. तच्च गद्य-पद्य-मिश्रभेदैस्त्रिधा ।

—वाग्भट, काव्यानुशासन

२२. गद्यमपाद-पदसन्तानच्छन्दो रहितो वाक्यसंदर्भः ।

—वाग्भट, काव्यानुशासन

२३. काव्यानुशासन ८-१० वृत्ति हेमचन्द्र ।

२४. वही० ८-८ वृत्ति ।

२५. वही० पृ० १७ ।

पारस्परिक सम्बन्ध होने के कारण प्रभाव का प्राधान्य रहता है। किन्तु मुक्तककाव्य स्वतन्त्र सत्ता लिये हुए होता है। उसके पद्य एक दूसरे से मिलते नहीं हैं। वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते हैं।

प्रबन्धकाव्य के भी महाकाव्य और खण्डकाव्य ये दो प्रकार हैं। महाकाव्य में सर्वांगीण जीवन का चित्र होता है। वह सर्गबद्ध, विशाल, अलंकारयुक्त श्लिष्ट भाषा का प्रयोग, राज दरबार, दूतप्रेषण सैन्यप्रयाण, युद्ध, जीवन के विविध रूपों व अवस्थाओं का चित्रण, महाकाव्य का नायक, कुलीन, वीर, विद्वान्; उसके उदात्त गुणों का वर्णन, होता है। उसमें समस्त रसों का परिपाक होता है और लोक स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। चार पुरुषार्थों को स्थान दिया जाता है। इस प्रकार भामह ने 'काव्यालंकार'[26] में, दण्डी ने 'काव्यादर्श' में[27], रुद्रट ने 'काव्यालंकार' में[28] और वाग्भट,[29] आचार्य हेमचन्द्र,[30] आचार्य अमरचन्द्र,[31] विश्वनाथ[32] प्रभृति विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप पर विभिन्न दृष्टियों से चिन्तन किया है।

भारतीय चिन्तकों ने महाकाव्य को सर्गबद्ध होना आवश्यक माना है। आचार्य हेमचन्द्र और वाग्भट के अभिमतानुसार वह आश्वासकबद्ध भी हो सकता है। सर्ग न अधिक बड़े होने चाहिए न अत्यन्त लघु ही। विश्वनाथ ने सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में चिन्तन किया है, पर अन्य आचार्यों ने नहीं। कथानक के सम्बन्ध में रुद्रट का मानना है कि वह महती घटना होनी चाहिए। उसमें पांच नाट्य-संधियों की योजना होनी चाहिए जिससे कथानक विस्तृत हो सके। कथानक ऐतिहासिक या पुराण पर आधृत होना चाहिए। रुद्रट की दृष्टि से कल्पना प्रधान भी हो सकता है। रुद्रट और हेमचन्द्र के मतानुसार महाकाव्य में अवान्तर कथाएँ होनी चाहिए जिससे गम्भीर और व्यापक अनुभवों का परिज्ञान हो सके। महाकाव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा का सजीव चित्रण होता है। आचार्य हेमचन्द्र का मानना है 'यदि मूलकथा में प्राकृतिक सौन्दर्य आदि पर चिन्तन न हो सके तो अवान्तर कथाओं में इसका समावेश करना चाहिए।' भोजदेव का अभिमत है 'इन सभी विषयों का समावेश करना कठिन है। किन्तु यदि कवि काल का वर्णन कर देता है

---

२६. काव्यालंकार, परि० १, श्लो० १९-२३।
२७. काव्यादर्श परि० १, श्लो० १४-१९।
२८. काव्यालंकार अ० १६, श्लो० २-१९।
२९. काव्यानुशासन।
३०. काव्यानुशासन अ० ८।
३१. काव्यकल्पलता वृत्ति।
३२. साहित्य दर्पण परि० ६, श्लोक ३१५-३२८।

तो देश का वर्णन करना उतना आवश्यक नहीं है। कालवर्णन आवश्यक है। अमरचन्द्र ने षट्ऋतुओं का वर्णन और अन्य वर्णन विस्तार से करने का सूचन किया है। रुद्रट और विश्वनाथ का मानना है अतिप्राकृतिक और अलौकिक तत्त्वों का होना आवश्यक है।

महाकाव्य का आरम्भ किस प्रकार करना चाहिए इस सम्बन्ध में भामह और भोजदेव ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। दण्डी का मन्तव्य है महाकाव्य में आशीर्वचन, नमस्कार, वस्तुनिर्देशन आदि होना चाहिए। वाग्भट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ इसके साथ ही खल-निन्दा और सज्जन-प्रशंसा भी आवश्यक मानते हैं। महाकाव्य के उपसंहार के सम्बन्ध में अन्य सभी आचार्य मौन रहे हैं किन्तु रुद्रट और हेमचन्द्र ने लिखा है कि कवि को अपना उद्देश्य प्रकट करना चाहिए, अपने आराध्य देव का भी स्मरण करना चाहिए तथा मंगलप्रद शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। रुद्रट का मानना है 'अन्त में नायक का अभ्युदय दिखाना चाहिए।'

सर्ग समाप्ति के सम्बन्ध में विश्वनाथ का कहना है कि अन्त में अगले सर्ग की सूचना देनी चाहिए। वाग्भट का मानना है प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद में कवि द्वारा अभिप्रेत शब्द, 'श्री', 'लक्ष्मी' आदि का प्रयोग होना चाहिए। नामकरण के सम्बन्ध में विश्वनाथ का मानना है कि कि कथावस्तु या चरित्रनायक के नाम पर होना चाहिए। दण्डी, भोज, वाग्भट और हेमचन्द्र के अनुसार नायक चतुर और उदात्त होना चाहिए। भामह की दृष्टि से नायक कुलीन, वीर और विद्वान् हो। विश्वनाथ की दृष्टि से नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त, उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए। रुद्रट का मन्तव्य है कि महाकाव्य में नायक के समान प्रतिनायक भी आवश्यक है जो नायक की क्रोधाग्नि को भड़का सके। प्रतिनायक के अतिरिक्त भामह, दण्डी, रुद्रट, वाग्भट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ का मानना है कि मन्त्री, दूत, सैनिक, कुमार, कुमारपत्नी, राजकन्या आदि भी आवश्यक हैं। महाकाव्य में नवों रसों को आवश्यक माना है। विश्वनाथ का मानना है कि शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रमुख होना चाहिए, अन्य गौण। सभी आचार्यों ने रस के साथ अलंकार भी आवश्यक माने हैं। कितने ही विज्ञ अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिए अलंकारों का प्रदर्शन करते थे। इसलिए रुद्रट, वाग्भट और विश्वनाथ का मन्तव्य था कि अलंकार आवश्यक तो हैं किन्तु अनिवार्य नहीं। महाकाव्य का छन्दोबद्ध होना आवश्यक है। दण्डी का मानना है महाकाव्य का छन्द-अत्यन्त श्रुतिमधुर होना चाहिए और सर्ग के अन्त में भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिए। आचार्य हेमचन्द्र का मन्तव्य है अर्थ के अनुकूल छन्द का प्रयोग होना चाहिए। यदि समस्त काव्य में एक छन्द भी हो तो एतराज नहीं है। विश्वनाथ और दण्डी यह भी मानते हैं कि एक ही सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग भी हो सकता है।

महाकाव्य में प्रसंग के अनुसार माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणवाली भाषा का प्रयोग होना चाहिए। भामह का मानना है महाकाव्य में साहित्यिक भाषा अपेक्षित है। उसमें ग्राम्य शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। दण्डी और हेमचन्द्र की दृष्टि से भाषा सरल, सरस और बोधगम्य होनी चाहिए। रति के प्रकर्ष के लिए कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हो। उत्साह के प्रकर्ष के लिए प्रौढ़ और क्रोध के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग आवश्यक है। कवि को भाषा पर असाधारण अधिकार होना चाहिए जिससे वह अपने मन्तव्य को साधिकार व्यक्त कर सके।

विश्वनाथ के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की उपलब्धि महाकाव्य का उद्देश्य माना है। विश्वनाथ किसी एक पुरुषार्थ को भी महाकाव्य का उद्देश्य मानते हैं।

भारतीय मूर्धन्य मनीषियों ने जिस प्रकार महाकाव्य के बारे में चिन्तन किया है। उसी तरह पाश्चात्य विज्ञों ने भी उस पर चिन्तन किया है। लार्ड केम्स के अनुसार[33] वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन महाकाव्य है। लवस्यू[34] (फ्रेंच विद्वान्) के अनुसार महाकाव्य ऐसा रूपक है जिसमें प्राचीन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन पद्यबद्ध रूप से किया जाय। हाब्स[35] की दृष्टि से वीरतापूर्ण समाख्यानात्मक कविता महाकाव्य है। लैफकैडियो हर्न[36] का मन्तव्य है कि महाकाव्य संपूर्ण जाति के आदर्शों की पद्यबद्ध अभिव्यक्ति करने वाला काव्य है। विलियम रोज बेनिट[37], वालटेयर[38], एबर क्रोम्बी[39], वाल्टर पेपर[40], सी० एम० बावरा[41], डब्ल्यू० पी० केर[42], एम० डिक्सन[43], टिलयार्ड[44] प्रभृति पाश्चात्य

---

३३. M. Dixon, English Epic & Heroic Poetry, Page 18.

३४. Ibid, Page 2.

३५. Ibid, Page 22.

३६. हिन्दी महाकाव्य एवं महाकाव्यकार, ले० श्री रामचरण महेन्द्र पृ० १४ से उद्धृत।

३७. Mr. William Rose Benit "The Reader's Encylopedia" Page 345.

३८. डा० शंभुनाथसिंह कृत 'हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप-विकास' से उद्धृत, पृ० १०४।

३९. Abercrombie, The Epic, Page 40-41.

४०. Appreciation, Page 36.

४१. C. M. Bowara, From Virgil to Milton', Page 1.

४२. W. P. Ker 'Epic & Romance' Page 17.

४३. M. Dixon—'English Epic & Heroic Poetry', Page 9.

४४. सरस्वती संवाद, महाकाव्य विशेषांक पृ० ३९-४०।

चिन्तकों ने महाकाव्य के विविध पहलुओं पर गहराई से अनुचिन्तन किया है। विस्तार भय से हम उन सब पर यहाँ चिन्तन न कर संक्षेप में यही कहना चाहेंगे कि प्रायः सभी मूर्धन्य मनीषियों ने मूलतत्त्व एक सदृश माना है, यत्किंचित् अन्तर महाकाव्य के बाह्य रूप को लेकर ही है। मुख्य तथ्य पाश्चात्य और पौवत्यि दोनों में समान हैं।

अतीतकाल से ही जैन मनीषीगण गीर्वाण गिरा में काव्यों का सृजन करते रहे हैं। क्योंकि अनुयोगद्वार में[45] प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भाषाओं को समान रूप से महत्त्व दिया है। इसलिए जैनाचार्यों की लेखनी दोनों भाषाओं में अविराम गति से चलती रही। [ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में संस्कृत भाषा का अध्ययन अत्यधिक आवश्यक माना जाने लगा। विज्ञों की मान्यता है एकादश अंगों की भाषा अर्धमागधी थी और पूर्वों की भाषा संस्कृत थी। इस दृष्टि से संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को जैन साहित्य में गौरवपूर्ण पद मिला है। जैन मनीषियों ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में विराट साहित्य का सृजन किया तो संस्कृत भाषा में भी विपुल साहित्य सृजन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। यह सत्य है कि जैन परम्परा अध्यात्मप्रधान रही है। उसका मुख्य लक्ष्य मोक्ष रहा है। और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए धार्मिक साधना आवश्यक है। इस दृष्टि से जैन साहित्य में त्याग, वैराग्य के स्वर अधिक मुखरित हुए हैं।

जैन काव्य साहित्य की अनेक विशेषताएँ हैं। इसकी कथावस्तु में विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक होती है। सूक्ष्म भावों का आख्यान और वर्णन के साथ ही विश्लेषण प्रधान होता है। कथाओं में पूर्व जन्मों की कथाएँ चमत्कार उत्पन्न करने वाली होती हैं जो किसी पक्ष का मार्मिक उद्घाटन करती है। शृंगारिक जीवन का वर्णन करने पर भी वासना का विरेचन, प्रशम और निर्वेद पर अधिक बल दिया गया है। भोग पर त्याग की विजय, राग पर विराग की विजय बताई गई है। चरित्र में प्रेम, विवाह, मिलन, युद्ध, सैनिक अभियान, दीक्षा, तपश्चरण, विविध उपसर्ग पर विजय वैजयन्ती फहराते नायक आध्यात्मिक उत्क्रांति की ओर आगे बढ़ता है। काव्य का मूल उद्गम स्रोत आगम, प्रागैतिहासिक व ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चरित्र और ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन-वृत्त उसमें होते हैं जो जन-जीवन को निर्मल प्रेरणा प्रदान करने वाले होते हैं।

---

४५. सक्कया पायया चेव भणिईओ होंति दोण्णि वा।
सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्था इसिभासिया ॥
—अनुयोगद्वारसूत्र, सूत्र १२७

आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य मलयगिरि, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, उपाध्याय यशोविजय, समयसुन्दर गणी, आचार्य अकलंक, आचार्य समन्तभद्र, विद्यानन्द प्रभृति शताधिक जैन मनीषियों ने संस्कृत भाषा में साहित्य का निर्माण किया है। उनके द्वारा सहस्राधिक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। आधुनिक चिन्तकों ने उसके सम्बन्ध में शोध कार्य भी किया है जिससे सैकड़ों जैन महाकाव्यों का, जो अज्ञात थे, उनका पता लगा है।

आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य का उतना प्रचार नहीं जितना अतीत काल में था। संस्कृत साहित्य का अध्ययन तो होता है, किन्तु काव्यों का प्रणयन बहुत ही कम मात्रा में हो रहा है। क्योंकि संस्कृत भाषा-भाषियों की संख्या अल्पतम होती चली जा रही है। जब जनता को संस्कृत भाषा का परिज्ञान नहीं है तो काव्य का आनन्द उन्हें किस प्रकार आ सकता है और बिना आनन्द के काव्य-सृजन को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता। जब कवि के अन्तर्मानस में काव्य-निर्माण के प्रति अत्युत्कट जिज्ञासा होती है, तभी काव्य का प्रणयन होता है।

प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज का प्रस्तुत काव्य अपने आप में एक अनूठा काव्य है। प्रस्तुत काव्य श्रद्धेय गुरुवर्य ने आचार्यसम्राट श्री अमरसिंह जी महाराज के पवित्र चरित्र को लेकर तेरह सर्गों में लिखा। स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका प्रभृति विविध छन्दों का उपयोग हुआ है। और साथ ही रूपक, वक्रोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि विविध अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा के महान ज्योतिर्धर नक्षत्र आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज से सम्बन्धित है। आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज प्रबल प्रतिभा के धनी, महान् क्रियोद्धारक थे। उन्होंने मरुधर धरा में स्थानकवासी समाज के शुद्ध चिन्तन व आचरण का प्रचार किया था। स्थानकवासी समाज एक अध्यात्मप्रधान क्रान्तिकारी सम्प्रदाय है। इसमें यम, नियम, संयम की प्रधानता है। मानवजीवन के मूल्य और महत्व का इसमें सही-सही अंकन किया गया है। इसका उद्देश्य मानव को भोग से योग की ओर, संग्रह से त्याग की ओर, राग से विराग की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर, असत्य से सत्य की ओर ले जाना है।

श्रद्धेय अमरसिंह जी महाराज युगप्रवर्तक थे। वे श्रमण संस्कृति के एक तेजस्वी सन्त रत्न थे। वे विद्वान्, विचारक तथा गंभीर तत्त्ववेत्ता थे। उनके अगाध पांडित्य की सौरभ दिग्दिगन्त में फैल चुकी थी; और आज भी वह जन-मानस को अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित करती है। आपका ज्ञान निर्मल था। सिद्धान्त अटल था। आपका जन्म देहली में हुआ था। आपके पिता का नाम देवीसिंह जी और माता

का नाम कमलादेवी था। सं० १७१६ में आश्विन शुक्ला चतुर्दशी रविवार को आपका जन्म हुआ था। आचार्य लालचन्द जी महाराज के पावन-उपदेश से प्रभावित होकर आपने सं० १७४१ में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही संयम और तप की आराधना प्रारम्भ की। जैन आगम साहित्य का गहरा अध्ययन किया। आपकी बुद्धि पैनी थी। प्रखर प्रतिभा तथा तर्कपूर्ण मेधा शक्ति से अल्पकाल में ही आगम के साथ दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य का विशेष अध्ययन-चिन्तन-मनन किया है।

आचार्य श्री लालचन्द जी महाराज की आज्ञा से आपने अपनी ज्ञान राशि को पंजाब और उत्तर प्रदेश के जन-जीवन में महामेघ के समान हजार-हजार धाराओं में बरसाकर जन-जीवन को त्याग वैराग्य से सरसब्ज बनाया। अनेक स्थलों पर, वेश्या-नृत्य, मृत्युभोज, जातिवाद, बलिप्रथा आदि को बन्द करवाया। आपकी वाणी में ओज था, सत्य का तेज था, विवेक का विशुद्ध प्रकाश था। आप जिस विषय पर भी बोलते साधिकार बोलते। सफलता देवी आपके चरण चूमने के लिए लालायित रहती। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी इन छः भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपने अनेक श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविकाओं को अध्ययन करवाया। आप मानव रूप में साक्षात् बहती हुई ज्ञान-गंगा थे। जिधर भी वह ज्ञान-गंगा प्रवाहित हुई उधर अध्ययन, मनन व चिन्तन के सूखे और उजड़े हुए खेत हरे-भरे हो गये।

आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज प्रकाण्ड पण्डित, महान् प्रभावक, प्रसिद्ध प्रवचनकार और यशस्वी साधक थे। जैन-अजैन जनता आपको एक दिव्य महापुरुष मानती थी; तथापि आप उतने ही नम्र थे। आप गुरुजनों के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे और लघु जनों के प्रति आपके हृदय में प्रेम का सागर ठाठें मारता था। अहंकार-ममकार के दुर्गुणों से आप बहुत दूर थे। आपने बीस व्यक्तियों को आर्हती दीक्षा प्रदान की। सं० १७६१ में आचार्य श्री लालचन्दजी महाराज ने आपश्री को युवाचार्य पद प्रदान किया और सं० १७६२ में आपश्री आचार्य बने।

संवत् १७६७ में आपका वर्षावास देहली में था। उस समय हिन्दुस्तान के बादशाह शहनशाह बहादुर थे। वे दक्षिण से अजमेर आये थे। उस समय जोधपुर के महामन्त्री खींवसिंहजी भण्डारी अजमेर आये और शहजादा अजीम के मार्फत संवत् १७६७ में बादशाह से मुलाकात की। बादशाह भण्डारी जी के साथ लाहोर होते हुए दिल्ली पहुँचे। और एक बार भण्डारी जी के द्वारा आचार्यश्री की सेवा में पहुँचे और आचार्य प्रवर के जादू भरे व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए। आचार्य श्री के उपदेश से प्रभावित होकर प्राणिवध न करने का नियम ग्रहण किया। आचार्य श्री खींवसिंह भण्डारी के अत्यधिक आग्रह पर मारवाड़-राजस्थान के लिए प्रस्थित

हुए। अनेक उपसर्ग उन्हें सहन करने पड़े। सोजत और जोधपुर में देवकृत उपसर्गों का सामना करना पड़ा। पाली में यतियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। और मारवाड़ में सर्वप्रथम स्थानकवासी जैनधर्म का प्रचार किया।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक अत्यन्त दिलचस्प है। ऐतिहासिक होने के साथ ही अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

काव्य का नायक धीर, वीर और उदात्त गुण विशिष्ट है। उनके उदात्त गुणों का सजीव चित्रण प्रस्तुत काव्य में हुआ है। यह काव्य घटनाप्रधान होने पर भी सुखान्त है। त्रयोदश सर्ग में आबद्ध होने के कारण उसे महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है। यद्यपि सर्ग का एक क्रम नहीं रहा है, कुछ सर्ग बड़े हुए हैं तो कुछ लघु भी हैं। किन्तु विषय-सामग्री को देखते हुए गुरुदेवश्री को ऐसा करना पड़ा है।

प्रस्तुत काव्य को महाकाव्य में परिगणित करना या नहीं यह भले ही विज्ञों के लिए चिन्तनीय प्रश्न हो सकता है, पर जहाँ तक काव्य का प्रश्न है प्रस्तुत काव्य एक उत्कृष्ट काव्य है। विविध वृत्तों का उपयोग साधिकार किया गया है। वृत्तों में यति भंग आदि दृग्गोचर नहीं होता है। कठिन से कठिन वृत्त को भी सहज रूप से दिया गया है।

भाषा की दृष्टि से गुरुदेवश्री की भाषा बहुत ही सरल, सरस और अनुप्रास युक्त है। भाषा आपकी सहचरी है। गहन भावों को व्यक्त करने के लिए भाषा सक्षम है। उसमें कहीं पर भी बनावटीपन नहीं है और न भाषा में दुरूहता ही है। भाषा-शैली पाठकों के दिल को लुभानेवाली है। पाठक पढ़ते-पढ़ते झूमने लगता है। लेखक ने व्याकरण के नियमों की कहीं भी उपेक्षा नहीं की है। भाषा की सरसता और सरलता के कारण पाठक को तनिक मात्र भी बौद्धिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है। उसे गहन भाव भी सहज ही हृदयंगम हो जाते हैं। संस्कृत काव्य साहित्य में व्यंग्यार्थ प्रधान काव्य श्रेष्ठ माना जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न इस दृष्टि से उत्तम काव्य है। यत्र-तत्र व्यंग्य का प्रयोग हुआ है और वह निगूढ-तम भाव को अभिव्यक्त करनेवाला है।

नौ रसों में काव्य में एक रस की प्रधानता होती है, पर अन्य रस यत्र-तत्र विषय की अभिव्यक्ति के लिए आते हैं। श्रद्धेय गुरुदेव श्री जैन श्रमण हैं। जैन श्रमण होने के नाते आपश्री का प्रस्तुत काव्य शान्त रस-प्रधान है। शान्त रस का पूर्ण परिपाक काव्य में हुआ है।

अर्थ के चमत्कार को अभिव्यक्त करने के लिए अलंकार की आवश्यकता है। किन्तु अलंकार सहज होना चाहिए। जो अलंकार सहज होते हैं वे ही वास्तविक चमत्कार पैदा करते हैं। जब तक अलंकार अर्थ के साथ घुल मिल नहीं जाता

वहाँ तक उसमें अभिनव चमत्कृति पैदा नहीं होती। स्वाभाविक रूप से यत्र-तत्र अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कवि लिखता है—"संसार में प्रशस्त ब्रह्मचर्य ने महान् आश्चर्य उत्पन्न किया है। ब्रह्मचर्य के विश्वविख्यात वैशिष्ट्य को कोई भी कहने में समर्थ नहीं हो सकता। यहाँ तक कि रमणीय रूप भी लज्जित होकर तिनके तोड़ने लगता है। किन्तु यह अपने अस्तित्व को इसी प्रकार रखकर उस ब्रह्मचर्य के सामने नृत्य करता है अर्थात् संसार में ब्रह्मचर्य ही महान् है।

"ब्रह्माश्चर्यं जगति तनुते ब्रह्मचर्यं प्रशस्तम् ,
यस्योत्कर्षं भुवनविदितं कोऽपि वक्तुं न शक्तः ।
रम्यं रूपं स्पशति तृणकं लज्जमानं परन्तु ,
स्वस्यास्तित्वं कथमपि धरन् नृत्यतीदं तदग्रे ॥"

कवि ने बताया है कि इस विराट विश्व में मानव के दुःख का मूल कारण क्या है ? दैवी विपदाओं के कारण मानव दुःखी नहीं है, और न प्राकृतिक प्रकोपों के कारण ही दुःख की काली घटाएँ मँडराती रहती हैं। दुःख का मूल है इच्छाएँ। इच्छाओं का वातचक्र इतना गहरा है जो मानव की शांति को नष्ट कर देता है। कवि के शब्दों में देखिए—

इच्छाबद्धः विकृतहृदयश्चिन्तया पीडितोऽयम् ,
श्रेष्ठं वस्तु प्रभवति सदा स्वात्मने निग्रहीतुम ।
सर्वस्वं मे भवतु निखिलं सर्वमेवं विचिन्वन् ,
स्वार्थी जीवो ग्रहणनिरतः जायते दुःखदग्धः ॥

कवि ने संसार को मदोन्मत्त अन्धे हाथी की उपमा दी है। एक ओर विराट् वैभवशाली गुलछर्रे उड़ाते हैं, पैसे को पानी की तरह बहाते हैं। अर्थ से अनर्थ कर अपने आपको आनन्दित अनुभव करते हैं। पर उन्हें यह सत्य-तथ्य ज्ञात नहीं है कि वे कर्मों को बाँध रहे हैं। दुःख के बीज वपन कर रहे हैं। दूसरी ओर वे महान् त्यागी सन्त हैं, उत्कृष्ट तप की साधना कर रहे हैं, जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिए प्रबल प्रयास कर रहे हैं। पर यह संसार रूपी हाथी तो झूमता हुआ चला जा रहा है। देखिए, कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

प्रीणन्त्यन्ते चयितविभवा भुक्त भोगप्रपंचा ,
धन्यंमन्या स्वकृतिविवशा पापकृत्यानि कर्त्तुम ।
सन्त्येकेऽमी विरतहृदया मृत्युजन्मैक चिन्ता ,
संसारोऽयं विविधविषय व्याप्तचित्तोऽन्धहस्ती ॥

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त सफलता के साथ हुआ है। सर्वत्र श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की प्रतापपूर्ण प्रतिभा झलक रही है।

आपके काव्य में प्रसाद और माधुर्य इन दोनों गुणों की प्रधानता है। कहीं-कहीं पर ओज गुण भी परिलक्षित होता है।

मेरे स्नेहपूर्ण आग्रह को सन्मान देकर पं० प्रवर रमाशंकरजी शास्त्री ने ग्रन्थ का सुन्दर सम्पादन किया। उनके अन्तर्मानस में श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के प्रति अगाध निष्ठा है। जब उन्होंने यह काव्य देखा तो उनका मन इसके संपादन के लिए ललक उठा और उन्होंने भक्ति भावना से विभोर होकर संपादन किया, तदर्थ मैं उन्हें साधुवाद प्रदान करता हूँ।

प्रस्तुत काव्य संस्कृत साहित्य में अपना अनूठा स्थान प्राप्त करेगा, ऐसा मुझे पूर्ण आत्म-विश्वास है। श्रद्धेय गुरुवर्य के अन्य ग्रन्थों की तरह यह ग्रन्थ भी श्रद्धालुओं के हृदय का हार बनेगा, इसी मंगल आशा के साथ—

जैन स्थानक, सिकन्दराबाद
आश्विन शुक्ला चतुर्दशी
संवत् २०३६

—देवेन्द्र मुनि

प्राक्कथन

अयि मे विद्वन्मूर्धन्या रसिकाः कविमहोदयाः !

किमहं वदेयं भवतां पुरः यत् कवेः कार्यं कियद् दुष्करम् तथापि सर्वमेवमविगणय्याहमस्मिन् काव्यकर्मणि प्रवृत्तोऽभवम्। समवाप्तयशसां महाकवीनामन्यैः काव्यैः पुनश्च प्रेरितोऽभवमहम् । किन्तु तेषां वर्णनं तु वर्णनमेव, किमहं तेषां काव्यस्यानुकृतिमपि कर्त्तुं प्रभुर्भवेयम् । नैतच्छक्यं-कालत्रयेऽप्यस्मादृशानां कवीनां कृते । किन्तु तेऽपि मानवा एवासन्, अहमपि मानवेष्वेकतमोऽस्म्येव । यदात्मानं साक्षात्कर्त्तुं यते, तमात्मानमवाप्तुं शक्नोमि वा न वा, तथापि तद्वदिहाहमपि काव्यं करोम्येव ।

यदाहमधीयान एवासममरभारतीम्, तदा मम गुरुदेवो महास्थविरः श्रीमद् ताराचन्द्रो मुनिरप्येवमुत्साहयन्नब्रूयेकस्मिन् मामेवमवोचत्, यत्त्वमप्येकस्मिन् समये कविरवश्यं भावी विद्यसे । हेतुं तु त एव जानीयुर्ये मामवेक्ष्य गुरुं मदीयं समुपगत्य केऽपि प्राशंसन्त यदवश्यं भवतोऽयं शिष्यः पुष्करो मुनिः कविपुष्करो भवेदिति ।

किमपि स्यादहं तु सोत्साहः सन्नात्मनीनां वाणीं पुनानो मामकीनस्याद्याचार्य्यस्य श्रीमतोऽमरसिंहस्य मुनेरेव यशःप्रख्यापकमेकम् 'अमरसूरि काव्यं' व्यरचयम्, किन्तु न जाने अहं कस्मात् कारणात् समुद्विग्नोऽभवम् । मनसि कमप्यन्यं निश्चयमवलम्ब्याहमेतावन्तं कालं समक्षिप्तुवम् । अथ समयोऽयं महान् बलवानस्ति, किमहं वर्णये यस्य माहात्म्यम् ।

वर्षावासाय गतेऽब्दे पुण्यपत्तनान्महाराष्ट्राद् रायचूरं कार्णाटकमुद्दिश्य विहारमाचरन्नहमधिपथि तमेव निश्चयं समस्मरम् । मामकीनेन मुनिमण्डलेन सह विहरता मयोक्तस्य काव्यस्य स्थाने श्रीमदाचार्य्यामरसिंह नामकस्यास्य पुनरारम्भो व्यधायि । साम्प्रतं सर्वं एव परिचिन्वन्त्येतां तु जैनमुनेरिमां प्रक्रियां विहारस्य ।

पदातिरहं प्रतिस्थानं मार्गे रात्र्यावासं समाचर्य दिन एव समयमधिगम्य च श्लोकान् विरच्य मदीयस्य गुरुकुलस्य पण्डितं श्रीमन्तं रमाशङ्करशास्त्रिणं संगहाय समर्पयम्। अयमपि कविरेवास्ति, पाण्डित्यस्य विषयेऽस्य किमु वर्णयेयमहम्। तदेतद् सर्वं तु साक्षात्कारेणैवास्य प्रत्यक्षं लक्ष्यते, किन्तु विशिष्टोऽयं विदुषां समाजेऽस्त्यहमिमं मन्ये। ममैवायं भक्तोऽस्ति, अतोऽस्य किमहं वैशिष्ट्यमधिकं स्थापयेयम्। यतोऽयं स्वयं स्वीयां प्रसिद्धिमतिवाहयति।

सोऽयमस्मिन् काव्ये परमं विशिष्टं योगं प्रदाय काव्यमदो व्यवस्थितमकरोत्। तस्मादहमिमं सम्पादकमेव व्यवास्थापयम्। निश्चयोऽयमस्ति यदस्मिन् काव्ये स्वाभाविकास्त्रुटयोऽवश्यं भवेयुः। यतो हि जैनो मुनिरहमस्मि, जन्मना ब्राह्मणः, तत्रापि बालब्रह्मचारी, सहैवाचतुर्दशवर्षदेशीयो दीक्षितः, तथापि विद्याव्यवसायादेव यथाकथञ्चिदहं व्यवर्णयमिति विचार्यैव मर्मज्ञाः कवयो मामनुगृह्णीयुरित्यप्यहं विनयेन सन्तिष्ठे।

विश्वसिमि पुनरहं समुत्साहितः सन्नप्यन्यत् काव्यं संस्कृतसाहित्यस्यावरमधिकृत्य समुपस्थितो भवेयमिति। करोमि किमहं समयस्य पुनरियानभावः मुनिमर्यादामेव पुरस्कृत्याहं संस्कारेण ब्राह्मणस्य निष्कारणः षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यश्चेति वृत्यावश्यं प्रेरितोऽस्म्येवेति निवेदये—

भवतामेवाहम्—

पुष्कर मुनिः

सम्पादकीय

संस्कृत भाषा-वाङ्मय अत्यधिक प्रशस्त और गौरव पूर्ण है। इस भाषा के कवि भी विश्वकवि के रूप में यशस्वी हुए हैं। संस्कृत भाषा के माधुर्य की प्रशंसा तो विश्व के भाषा-शास्त्री भी मुक्तकण्ठ से करते चले आ रहे हैं। संसार के भाषा-मर्मज्ञ पण्डित-प्रकाण्ड तो संस्कृत को विश्व भाषा मानते हैं।

किन्तु भारत की मूल राष्ट्रीय धारा में संस्कृत की प्रतिष्ठा सर्वमान्य एवं सर्वोत्कृष्ट रही है। अतः भारतीय संस्कृतियों के धर्म-दर्शन और साहित्य के ग्रन्थों के प्रणेताओं ने संस्कृत भाषा को ही प्रामुख्य प्रदान किया। अतएव अधिकारी विद्वान् होने के लिए संस्कृतज्ञान को मानदण्ड के रूप में स्थिर किया गया है।

इस प्रथा के अनुसार मुनिराज श्री पुष्करमुनि महाराज साहब ने सर्वप्रथम संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया और मुनि जीवन के साथ उसका व्यावहारिक उपयोग लिया और लेते आ रहे हैं। प्रकृत में संस्कृत-काव्य की चर्चा का विषय है, इसलिए संस्कृत के ज्ञान का वहाँ वर्णन किया गया है। वैसे मुनिश्री जी अनेक भारतीय भाषाओं के ज्ञाता हैं। यह बात दूसरी है।

आपश्री ने अनेक वर्ष पूर्व संस्कृत में ही अपने सम्प्रदाय के पूज्य आचार्यश्री अमरसिंह मुनि महाराज के विषय में 'अमरसूरि काव्य' की रचना की थी। उसका प्रकाशन भी हुआ। उससे हृदय को सन्तोष तो मिला, किन्तु परितोष प्राप्त न हो सका। अतएव आपश्री ने यह विचार रख छोड़ा था कि कभी अवसर प्राप्त होगा तो फिर इस काव्य की रचना की जायेगी। संयोग से यह अवसर गतवर्ष रायचूर (कर्णाटक) के वर्षावास पर आपहुँचा, और 'श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्यम्' 'अमरसूरिकाव्य' के स्थान पर सजधजकर जम गया। इस बात का उल्लेख आपश्री ने स्वयं अपने काव्य-समर्पण में भी किया है।

मुनिश्री जी हृदय से कवि हैं, स्वभाव से व्याख्याता हैं, प्रयत्न से लेखक और व्यवहार से अनेक भाषाभिज्ञ हैं। अपने व्याख्यानों में स्वरचित कविता का पाठ करते हैं। प्रसङ्गतः कोई पद अथवा स्तवन किसी अन्य कवि का

स्मरण आ गया, सुना दिया, तो वह कोई दूसरी बात है। शेष, सदा स्वरचित कविता का ही प्रयोग लेते हैं। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत हो, आपश्री ने इस काव्य की रचना की है, यह एक स्पष्ट बात है। इस काव्य की कथावस्तु कल्पना के आधार पर नहीं है, अपितु यह स्थानकवासी श्वेताम्बर श्रमणोपासक जैन मुनियों के इतिहास में वर्णित है।

आचार्य श्रीअमरसिंह जी महाराज मरुधर-प्रदेश में उक्त श्रमण-परम्परा के प्रथम प्रवर्त्तक आचार्य माने गये हैं। आपका जब उक्त प्रदेश में प्रवेश हुआ तब जैन यतिओं का स्थानीय जनता पर बड़ा प्रभाव था। वे अपने अज्ञानान्ध श्रद्धालुओं को स्थानकवासी जैनमुनियों के प्रति कुछ का कुछ समझाकर भड़काते थे। वास्तव में बात यह थी कि ये यति लोग अपने वास्तविक कर्त्तव्य को भूल चुके थे और आचरण-च्युत होकर संसार में लिप्त थे। इन जैनमुनियों की उपस्थिति से उनके आचरण की पोल खुलती थी। इसलिए वे स्थानकवासी जैनमुनियों का जान-बूझ कर युक्तियों के द्वारा विरोध करते थे।

एक बार जोधपुर राज्य के दीवान श्री खिवसीजी साहब उस समय के बादशाह बहादुरशाह से किसी राजकीय कार्य के लिए मिलने के लिए देहली पहुँचे थे। उस समय वर्षावास के हेतु से पूज्य श्रीअमरसिंह जी महाराज अपने मुनिसंघ के साथ विराज रहे थे। पूज्य श्री के व्याख्यानों की उस समय देहली में धूम मची हुई थी। दीवान साहब भी प्रशंसा सुनकर व्याख्यान सुनने पहुँचे। पूज्यश्री समय के प्रभाव से उर्दू-फारसी के माहिर थे। दरबारी दीवान साहब मुनिमहाराज के व्याख्यान, दर्शन आदि से आकृष्ट होकर प्रायः प्रतिदिन मुनिराजश्री की सेवा में पहुँचने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे वे मुनिमहाराज के भक्त बन गये। जैन तो थे ही संस्कार अच्छे थे, और फिर जोधपुर-राज्य के दीवान, इन सब बातों से मुनिमहाराज भी उनकी पूछ-ताछ का ध्यान रखते थे।

एक दिन वे दीवान साहब बड़े दुःखी-से आचार्यश्री की सेवा में पहुँचे। देखते ही आचार्यश्री ने प्रश्न किया कि आज आप बड़े खिन्न-से दिख रहे हैं? दीवान साहब ने बताया कि बादशाह ने अपनी कुमारी राजपुत्री के गर्भ रह जाने से प्राणदण्ड का आदेश कर दिया है। साथ ही महलों की देखभाली के सिपाही राजकुमारी को सच्चरित्र और भोली बताते हैं। इससे दरबार का हाल बेहाल हो गया है और उधर बादशाह अपने आदेश को अनेक अनुनय-विनय के रहने पर भी स्थगित किया नहीं चाहते। इस कारण से मुझे दुःख हो रहा है। दूसरे जिस कार्य से मैं यहाँ आया हूँ, उसमें भी इस से रुकावट आ गई है। मैं वास्तव में बहुत दुःखी हूँ। इसलिए आपने मुझे दुःखी बताया सो वास्तव में सत्य है।

आचार्यश्री ने स्पष्ट किया कि बिना पुरुष-संसर्ग के भी गर्भस्थिति होती है, ऐसा शास्त्रों में और वैद्यक-ग्रन्थों में उल्लेख है। अतः मेरे विचार से तो यह गर्भ-स्थिति यथार्थ में राजसविकार के कारण निस्सार है। देखना कुछ ही मासों में यह निस्सार राजसमात्र का गर्भ घण्टों में विकीर्ण हो जायेगा। क्योंकि बिना वीर्य के अस्थि आदि नहीं बन पातीं। स्थिति को देखते हुए आपके बादशाह को प्राणदण्ड स्थगित कर देना चाहिये। यह सुनकर जब दीवान साहब दूसरे दिन दरबार में उपस्थित हुए तो उन्होंने बादशाह को बताया कि मेरे गुरुदेव श्रीअमरसिंह जी महा-राज ने फरमाया है कि बिना पुरुष-संसर्ग के भी गर्भस्थिति होती है, जो कुछ ही मासों में राजस लोथ जैसा फफूंद पैदा होता है, और घण्टों में विकीर्ण होकर नष्ट हो जाता है। इसलिए राजकुमारी के प्राणदण्ड को स्थगित कर कथित गर्भ के परीक्षण के लिए प्रतीक्षा की जानी चाहिये। बादशाह ने भी बात की सचाई देखने के लिए प्राणदण्ड को तब तक के लिए स्थगित कर दिया और प्रबन्ध कर दिया कि इसमें किसी प्रकार का कोई षड्यन्त्र न होने पाए।

समय आया, राजस गर्भ का निरीक्षण हुआ, परीक्षण से बादशाह को मुनि-महाराज के कथन की सचाई पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने दीवान साहब श्रीखिवसीजी से कहा कि मैं स्वयं मुनिमहाराज के दर्शन आपके साथ चलकर करना चाहता हूँ। जानने के लिए बादशाह ने प्रश्न किया कि दीवान साहब ! ये मुनिजी महाराज, कौन हैं ? कहाँ के हैं ? और किस धर्म के हैं ? दीवान साहब ने उत्तर दिया कि श्रीमन् ! ये हम जैनों में से ही एक हैं और इसी देहली के सेठ श्रीदेवसिंहजी साहब के पुत्र हैं। किन्तु आप भरी जवानी में विवाह होने पर भी सब कुछ छोड़, आज्ञा लेकर जैन मुनि हो गए हैं। अब आपका घर-परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल आप आत्मकल्याण के मार्ग पर पर आरूढ़ हैं और मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। संसारियों को अहिंसा के द्वारा विरक्ति का पाठ पैदल घूम-घूम कर पढ़ाते हैं। वास्तव में ये महान् सन्त हैं।

बादशाह स्वयं मुनिमहाराज की सेवा में दर्शन करने के लिए दीवान साहब श्रीखिवसीजी के साथ पहुँचे। मुनिमहाराज ने अपने नियम के अनुसार धर्मध्यान का उपदेश किया और बादशाह ने उपदेश ग्रहण कर प्रतिज्ञा की कि मैं अपने जीवन में कभी जीवहिंसा नहीं करूँगा।

कुछ समय के बाद दीवान साहब ने आचार्य श्री से मरुधर क्षेत्र के स्पर्श करने के लिए अनेक प्रकार से विनति की। किन्तु विनति पर ध्यान देने से पूर्व आचार्यश्री ने दीवान साहब को बताया कि मरुधर प्रदेश में सुख-शान्ति के साथ विहार करना बड़ा कठिन कार्य है। अतः विहार करने से पूर्व सभी सम्भाव्य बाधाओं को रोकने के लिए प्रबन्ध आवश्यक है। इस बात को उचित समझकर दीवान साहब ने बादशाह से अवसर पाकर निवेदन किया कि मुनि महाराज मरुधर-

प्रदेश की ओर विहार करना चाहते हैं और उस ओर विहार के लिए मार्ग में अनेक बाधाएं सम्भावित हैं। इसलिए यदि आपकी ओर से मरुधर-नरेश को सूचनात्मक फरमान भिजवा दिया जाय तो उचित होगा। क्योंकि बादशाह मुनि महाराज के प्रति भक्ति रखने लगे थे। इसलिए वे कहने लगे कि मुनि महाराज यहाँ पर ही विराजें तो अच्छा है। यहाँ क्या कष्ट है ? यदि कोई यहाँ पर कष्ट हो तो मुझे बताइये। मैं उसको अभी समाप्त कर देता हूँ। इसलिए मेरे विचार में मरुधर-नरेश को फरमान भेजने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

इस प्रसङ्ग पर बादशाह को बताया गया कि बरसात के चार महीनों के अतिरिक्त जैन मुनि बिना कारणविशेष के किसी एक स्थान पर जमकर नहीं बैठ सकते। मुनिधर्म के अनुसार विहार आवश्यक है। यह सुनकर बादशाह ने आवश्यकता के अनुसार मरुधर-नरेश के लिए फरमान भिजवा दिया। जिसमें आचार्यश्री के विहार-मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न हो और न किसी प्रकार का कष्ट हो। साथ ही आवश्यकता के अनुसार सुरक्षा का भी प्रबन्ध हो।

इस फरमान के पश्चात् आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ विभिन्न स्थानों, ग्रामों और नगरों में विहार करते हुए देहली से जयपुर पहुँचे। जयपुर में आचार्यश्री के व्याख्यानों का बड़ा प्रभाव पड़ा। जिससे धार्मिक भावना जगी और बड़ी-बड़ी तपस्याएँ, त्याग और दान हुए। त्याग के प्रसङ्ग से साथ धन की सीमा को लेकर सेठ श्री रङ्गलालजी पटवा का नाम आचार्यश्री के माहात्म्य से जुड़ा हुआ है।

जयपुर के एक स्थानक में जहां पर आचार्यश्री विराजे हुए थे, सेठ श्री रङ्गलालजी पटवा स्वतः धन की कुछ सीमा करने के लिए उद्यत हुए। दूरद्रष्टा आचार्यश्री ने सेठजी को उद्बोधन देते हुए कहा कि सेठजी धन की सीमा करते समय विचार कर लीजिए। क्योंकि सीमा कर लेने के पश्चात् व्रत भंग न हो यह आवश्यक है। सेठ साहब को अपनी स्थिति को देखते हुए सीमा को बढ़ाने का विश्वास नहीं होता था। अतः वे कहने लगे कि इतने कम धन की सीमा, गुरुदेव ! ठीक ही है। सेठजी के इतना कहने पर भी आचार्यश्री ने पटवा साहब से कहा कि सेठजी अब भी धन की सीमा के सम्बन्ध में चिन्तन कीजिए। कहीं फिर ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े। अस्तु-बेमन से यह जानकर कि आचार्यश्री फरमा रहे हैं, तो मुझे कुछ और अधिक सीमा बढ़ा देनी चाहिए। फिर कुछ धन की सीमा और बढ़ा दी। अन्त में फिर आचार्यश्री के फरमाया कि देखो सेठ साहब ! अब भी समय है, अब तो सेठजी के आग्रह पर जितना अधिक बढ़ा था, शेष धन का प्रत्याख्यान आचार्यश्री ने करा दिया। कुछ ही दिन प्रत्याख्यान करने के व्यतीत हुए कि सेठ श्रीरङ्गलालजी पटवा के यहाँ रुपयों की बाढ़-सी आने लगी। वे अब सोचने लगे, कि गुरुदेव इसीलिए मुझे धन की सीमा पर चिन्तन करने के लिए कह रहे थे। जब

कि मुझे इतने धन की आय का विश्वास नहीं था। किन्तु अब क्या होता है ? उस प्रत्याख्यान के फलस्वरूप सीमा से अधिक आय का दान, पटवा साहब की हवेली पर होने लगा। पटवा साहब ने स्वयं जहाँ आचार्यश्री विराज रहे थे, वहाँ पहुँच कर, दर्शन कर वन्दना करते हुए श्रावकों के सम्मुख अपनी बात को प्रकट किया।

आगे किशनगढ़, अजमेर स्पर्श करते हुए आचार्यश्री जब चण्डावल पधारे तो फिर जैनयतियों में हल-चल पैदा होने लगी। क्योंकि आचार्यश्री की कीर्ति-पताका सारे मरुधर-प्रदेश में लहराने लगी थी। अब करें भी तो क्या करें ? ये आचार्यश्री तो मरुभूमि पर तूफान होकर चढ़े ही चले आ रहे थे। मरता क्या नहीं करता ? इसलिए उन्होंने सोचा कि न रहे बाँस, न बजेगी बाँसुरी। अत. आचार्यश्री के जीवन की समाप्ति की योजना स्थिर की गई। किन्तु काम भी हो, और मालूम न हो—इस नीति के अनुसार उन्होंने आचार्यश्री की भाव-भक्ति का सहारा लिया। और सोजत नगर को उन्होंने योजना को मूर्तरूप देने का स्थल चुना।

विहार करते हुए आचार्यश्री जब दोपहर समाप्त होते होते सोजत पहुँचे ही थे कि ये बने-बनाए भक्त सामने आए। वन्दना आदि के पीछे आचार्यश्री को मुनिमण्डल के साथ ठहराने की चर्चा करने लगे। और इधर-उधर के स्थानों का नाम लेकर सबसे बढ़िया स्थान अपनी योजना के अनुसार एक मस्जिद, जो कि जिन्द के रहने की वजह से उजड़ी पड़ी थी, आचार्यश्री को सुखसाता का स्थान बताकर जबरन टिका दिया। किन्तु आचार्यश्री इन को ताड़ गए कि आखिर मुझे मुनिमण्डल के साथ किसलिए ठहराया जा रहा है। साथ ही वे यह भी बताना चाहते थे कि कुछ भी करलो, किन्तु ये तुम्हारे हथकाण्डे कभी सफल नहीं हो सकेंगे। क्योंकि उनको अपने ऊपर विश्वास था। सच्चे तपस्वी और साधक में अपार आत्मबल होता है। वह किसी भी बाधा का डट कर सामना कर सकता है।

योजना के अनुसार वे कृत्रिम भक्त मुनिमण्डल के साथ आचार्यश्री को मस्जिद में ठहरा कर एक-एक करके सटक गए। इधर आचार्यश्री अपने मुनियों के साथ अपने सायन्तन कृत्य के सम्पादन में संलग्न हो गए। धीरे-धीरे सायन्तन कृत्य भी पूर्ण हुए। गुरुसेवा के पश्चात् मुनिजन भी रात्रि अधिक होने पर अपने-अपने स्थान पर जाकर सो गए, किन्तु आचार्य श्री अकेले अपने ध्यान में मग्न थे। आधी रात बीती होगी कि जिन्द ने अपना उपद्रव प्रारम्भ किया। जिन्द इस बात पर क्रुद्ध था कि आप सब मेरे स्थान पर आकर क्यों ठहरे हैं ? उत्तर न मिलने पर क्रुद्ध जिन्द ने आचार्यश्री के ऊपर अनेक शारीरिक बल प्रयोग किए। किन्तु आचार्यश्री अविचल शान्तभाव से बीजसहित मन्त्र-जप में ही संलग्न रहे। जिन्द इस मस्जिद में ठहरने वालों को सदा-सदा के लिए सुलाता आ रहा था। किन्तु आचार्य श्री के सामने उसकी कुछ भी नहीं चल रही थी। वह अपनी मनमानी

कर-कर के थक गया। किन्तु आचार्यश्री ज्यों-के-त्यों ध्यानस्थ विराजमान हैं, अन्त में लाचार होकर हाथ जोड़ते हुए, अपने किए पर पछताने लगा और कहने लगा, कि मैंने आपको निरर्थक कष्ट दिया, पर्याप्त शारीरिक यातनाएँ दीं, किन्तु मैं फिर भी आपका कुछ न कर सका। इस सबसे मैं बहुत लज्जित हूँ। साथ ही अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ। और फिर आगे अपने आप कहने लगा कि मैं सच्चा मुसलमान हूँ तो फिर कभी किसी मुनि को यहाँ ठहरने-बसने पर आपत्ति नहीं करूँगा। असल बात यह है कि मैं आज से इस मस्जिद को छोड़कर जा रहा हूँ। अब यह सदा स्थानक ही रहेगा। मुसलमान इस मस्जिद को अपने-आप छोड़ देंगे।

इस प्रकार वह जिन्द वहाँ से चला गया। मस्जिद का स्थानक बन गया। जो आज भी मस्जिद का स्थानक के नाम से सोजत नगर में विद्यमान है।

वे षड्यन्त्री यतिप्रेरित भक्त धीरे-धीरे प्रभात में वहाँ आकर देखने लगे कि हमारी योजना सफल हुई कि नहीं। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आचार्य-श्री अपने मुनिमण्डल के साथ सानन्द अपनी निर्धारित मुनिक्रियाओं में व्यस्त हैं। यतिप्रेरित वे भक्त अब समझे, कि हमको ऐसे सन्त के प्रति यतियों के जाल में फँसकर कभी कोई कार्य भविष्य में नहीं करना चाहिये। प्रत्युत हमको अपने इस सच्चे मुनि महाराजों की आज्ञा में रहना चाहिये।

बात कभी कोई छिपी नहीं रहती। इस घटना को जानकर स्थानीय जैन-जगत् एक साथ सजग हो गया। अतएव श्रद्धा भक्ति के साथ श्रावकजन मुनिराजश्री के व्याख्यानवाणी का आनन्द लेने लगे और सत्य सनातन जैनधर्म के तत्त्व को समझ कर आगे बढ़ने का प्रयास करने लगे।

इस प्रकार मरुधर-प्रदेश में एक आन्दोलन-सा उठ खड़ा हुआ कि सत्य जैन-धर्म को पहचान कर आचरण करो और जीवरक्षा के लिए मुखपत्ति आदि का उप-योग लो। इस प्रकार के वायु-वेग को बहते हुए देखकर प्रख्यात यतियों ने स्थिति पर अधिकार पाने के लिए कहना प्रारम्भ किया कि ये सब बातें आगमों और शास्त्रों के विरुद्ध हैं। यदि कोई इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो हम शास्त्रार्थ के लिए कृतसंकल्प हैं। जब यह बात धीरे-धीरे फैलती हुई आचार्यश्री के शुभ कानों तक पहुँची, तो उन्होंने भी इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। साथ ही यह भी आचार्यश्री ने उद्घोष किया, कि यतिजन जब चाहें तब शास्त्रार्थ कर लें। हम अपनी ओर से सदा सन्नद्ध हैं।

यतियों ने अपने प्रमुख विद्वज्जनों को इसके लिए सूचना-पत्र भेजे और साथ ही दूसरे प्रयत्न भी किए, जिसमें वे शास्त्रार्थ में सम्मिलित हों। शास्त्रार्थ के लिए स्थान और दिन का निश्चय कर आचार्यश्री को भी सूचित किया गया। सूचना प्राप्त करते हुए आचार्यश्री निर्विलम्ब विहार कर निर्दिष्ट स्थान और समय

पर पहुँचे । एकत्र जनसमूह के सम्मुख आचार्यश्री ने शास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत करते हुए युक्तियों से भी, मुखपत्ति आदि का औचित्य सिद्ध कर दिया तो भी वे यतिजन सहमत नहीं हुए, प्रत्युत आग्रहवश यही कहते रहे कि मुनिजनों का प्रतिपादन आगमों और शास्त्रों के विरुद्ध है। इस बात को अनुचित समझते हुए विवेकी जनसमूह ने आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज की जय हो, कहकर विजेता उद्घोषित कर दिया और जय-जयकार करते हुए नगर भर में आचार्यश्री का स्वागत किया गया।

इसके पश्चात् हर्ष-शोक से दूर रहने वाले आचार्यश्री ने मरुधर-प्रदेश के छोटे-मोटे सभी ग्रामों का स्पर्श कर पुरातन जैन धर्म की स्थिति-काल के अनुकूल पुनः प्रवर्तना स्थापित की। सहस्रों-सहस्रों की संख्या में आचार्यश्री के सम्यक्त्वांकित शिष्य बने।

इस ओर आकर दीवान साहब खिंवसीजी की जोधपुर पधारने की विनीत ने जोर पकड़ा। स्थिति पर विचार करते हुए आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ विहार कर जोधपुर पहुँचे। उस समय आचार्यश्री और मुनिमण्डल के स्वागत के लिए स्वयं जोधपुर-नरेश अपने राजमान्य सरदारों और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ पधारे। धार्मिक जनता का तो कहना ही क्या! स्त्री-पुरुष सभी हर्ष के साथ स्वागत और दर्शन-वन्दन के लिए उपस्थित थे।

अन्त में दरबार के आग्रह पर सभी मुनियों के साथ आचार्यश्री को राजमहल के मुख्य द्वार के गोखड़े पर ठहराया गया। क्योंकि जोधपुर-नरेश आचार्यश्री के दर्शनमात्र से ही भक्त हो गये थे। था कोई अनूठा चमत्कार उस दिव्यपुरुष में, जो देखते ही उनके भक्त बन जाते थे।

किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे सब स्थानों और समयों से देखे और सुने गये हैं कि जो किसी न किसी रूप में महान् से महान् पुरुष के साथ अकारण दुर्भावनाएँ स्थिर कर लेते हैं, और विरोध अथवा कोई न कोई हेतु खड़ा कर देते हैं, जिससे कि उस विशिष्ट पुरुष को कुछ तो कष्ट हो। यह युग-युग का लेखा-जोखा है। इधर वैसे भी यतियों के संकेत से घूमने वाले लोग थे ही, कुछ कहा नहीं जा सकता।

किन्तु जोधपुर-नरेश को इन लोगों ने भिड़ाया कि जब आप राजमहल के द्वार से पधारते हैं तो आचार्यश्री गोखड़े में विराजे रहते हैं, यह तो श्रीमान् का अपमान है। कहते हैं कि दरबार ने पहले तो इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया और कहा कि पूज्य महात्मा हैं, विराजते हैं तो विराजें। इससे हमारा कोई अपमान नहीं होता। किन्तु बार-बार घुमा-फिराकर कहने से उस समय जोधपुरनरेश ने यही अच्छा समझा कि आचार्यश्री को अन्य राजकीय भवन पर ठहरा दिया जाए। जिससे इन सब का बार-बार कहना-सुनना बन्द हो। अन्त में तो वे नरेश ही थे।

दूसरे दीवान साहब श्री खिवसीजी भी वहां नहीं थे, कोई नरेश को समझाता भी तो कैसे समझाता। इस प्रकार विरोधियों का यह षड्यन्त्र सफल हुआ। नरेश का आदेश हुआ कि आचार्यश्री को आदर के साथ अन्य किसी राजकीय भवन में ठहरा दिया जाना चाहिये।

षड्यन्त्र का पता तब चला, जबकि आचार्यश्री को उनके मुनियों के साथ आसोप ठाकुर साहब की हवेली में ठहराया गया। स्मरणीय बात यह है कि यह स्थान भी सोजत नगर की मस्जिद से भी अधिक विकट था। यह स्थान अपने नाम पर पहले ही से कलङ्कित था। इस स्थान पर बसने अथवा ठहरने वाले अनेक प्राणी अपने प्रिय प्राणों की आहुति दे चुके थे। कारण यह था कि इस के निर्माता ठाकुर साहब मरने के पश्चात् पिशाच बनकर इस हवेली में आ जमे थे। ऐसे दुष्प्रसिद्ध स्थान पर आचार्यश्री को ठहराया गया।

यहां पर मुनियों के साथ आचार्यश्री दिन में तो सुख-शान्ति के साथ विराजे, किन्तु रात्रि में पिशाच का घोर उपद्रव प्रारम्भ हुआ। क्रूर पिशाच ने अपनी पैशाचिकता का अतिरेक कर दिया। किन्तु आचार्यश्री ने अपने आत्मबल, तप और जप से सब शारीरिक यातनाएँ सह लीं और पिशाच ने भी अपना पराजय मान लिया। अन्त में स्वतः पिशाच ने कहा कि अच्छा आप तो यहाँ ठहर सकेंगे, किन्तु स्त्रियों को फिर भी नही आने देंगे। आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि जहाँ हम ठहरते हैं, वहाँ पर स्त्री-पुरुष सभी आते हैं और हम किसी को मना नहीं करते। तब फिर पिशाच ने कहा, अच्छा स्त्रियाँ भी आ सकेंगी, किन्तु मासिकधर्म से युक्त स्त्रियाँ तो फिर भी नहीं आ सकेंगी। इस पर भी आचार्यश्री से फरमाया कि हम इसमें भी कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि कौन किस स्थिति में है यह हम नहीं जान सकते। इस पर पिशाच ने कहा, कि इस बात को मैं देख लूंगा, किन्तु आप तो सानन्द विराजिए।

कुछ भी हो, आचार्यश्री अपने मुनिमण्डल के साथ जब तक जोधपुर नगर में विराजे, वहाँ ही विराजे थे। यह आज भी हवेली विद्यमान है। वहाँ पर वह पाट भी आज तक विद्यमान है, जिस पर विराज कर आचार्यश्री व्याख्यान फरमाते थे। कहते हैं कि पाट का एक पाया, जो पिशाच ने तोड़ डाला था, शान्त होने पर उसने ही जिसको छोड़ा था, वैसा का वैसा आज भी उस स्थान में प्रस्तुत है।

दीवानसाहब श्री खिवसीजी राजकीय कार्य समाप्त कर जब जोधपुर पहुँचे, तो सदा के अनुसार महल के द्वार के गोखड़े पर आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए गए। पहुँचने पर उन्हें बताया गया कि आचार्यश्री ने यहाँ से आसोप ठाकुर साहब की हवेली के लिए प्रस्थान कर दिया है। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि वे वहाँ पर कैसे ठहराये गए हैं? क्योंकि उनको उस स्थान की वास्तविकता का परिचय

था। वे उसी समय आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए पहुँचे और आचार्यश्री को सानन्द सुख-शान्ति के साथ विराजते हुए देखकर प्रसन्न हुए।

उन्होंने स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पूज्यश्री से अधिक आग्रह किया कि यह सब ऐसा कैसे हुआ ? किन्तु पूज्यश्री ने सब प्रश्नों का एक ही उत्तर दिया कि यहाँ पर आनन्द ही आनन्द है। साथ ही उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि हम यहाँ नहीं आते तो जोधपुर के स्पर्श करने में कमी रह जाती। इस घटना से आचार्य श्री की महत्ता का संकेत प्राप्त होता है।

पूज्यश्री बड़े प्रभावी व्याख्याता आचार्य थे। उन्होंने हजारों भूले-भटके लोगों को सही रास्ता दिखाया और भ्रान्तियाँ दूर कर उन्होंने मानव जाति का जो उपकार किया है, उसके लिए मरुधर-प्रदेश साक्षी एवं ऋणी है।

उनके मरुधर प्रदेश के प्रवेश के समय बड़ी विकट स्थिति थी। कोई यतियों के पाखण्डों के विरोध में अपना मुख नहीं खोल सकता था। ऐसी स्थिति में भी आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने स्थानकवासी जैन मुनियों के मार्ग को प्रशस्त किया और श्रमण परम्परा की पुनःस्थापना की, यह उत्कर्ष आचार्यश्री के चरित्र में और भी श्रीवृद्धि करता है। वैसे उन्होंने मुनिराजों में अनेक स्वस्थ परम्पराओं का श्रीगणेश किया, इस बात को ऐसा कौनसा जैनमुनि-सम्प्रदाय है, जो नहीं जानता !

उपर्युक्त कथावस्तु से सम्बद्ध कतिपय अन्य विशेषताओं का मुनिश्रीजी ने यथास्थान सूत्ररूप में वर्णनात्मक परिचय दिया है। यह इस काव्य के अध्ययन से विवेकी विद्वज्जन स्पष्ट रूप में अवगम कर आनन्दित हो सकते हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्त में आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज को आद्यसम्प्रदाय का आचार्य मानकर आचार्यपट्टावली प्रस्तुत की गई है। पट्टधर आचार्य की विशेषता का भी चित्रण किया गया है, यह इस पट्टावली की विशेषता है। अधिक जानने के लिए कृपया पट्टावली देखिए।

साथ ही उक्त कथावस्तु में वर्णन के साहाय्य के लिए मुनिश्रीजी ने कवि के अधिकार के अन्तर्निहित योगी जैसे पात्र की विशेष सृष्टि के द्वारा पात्र की विशेषता को व्यक्त किया है, जिससे रोचकता प्रतीत होती है।

इसके स्पष्ट करने का अभिप्राय यह है कि इतिहास के पृष्ठों पर अक्षरित वृत्त से इस अंश का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह काव्य है और काव्य के सौष्ठव के लिए कल्पना का विशेष अधिकार कवि के अधिकार क्षेत्र में स्वतः निहित है। इसलिए इतिहास के अक्षरित वृत्त को कवि के विशेषाधिकार की परिधि का उल्लंघन करने का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए—यह हमारा सविनय अनुरोध है।

संस्कृतभाषा के साहित्य के लक्षणग्रन्थों के निर्माता आचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप का निर्णय करते समय यह निश्चय किया है, कि किसी धीर उदात्त नायक को लेकर सर्गों में बँधा हुआ प्रबन्ध होना चाहिए। इसलिए मुनिश्रीजी ने अपने आद्य सम्प्रदाय के आचार्य श्रीअमरसिंह मुनिमहाराज का चयन किया है। साथ ही सर्गों की संख्या और आकार की भी निर्धृति की गई है। इससे ऐसा लगता है कि मुनिश्रीजी ने साहित्याचार्यों के निश्चय का यथासम्भव पालन कर काव्य के स्वरूप को उचित दिशा में सँवारने का प्रयत्न किया है। यह बात दूसरी है कि सर्गों के आकार-प्रकार में अन्तर है।

एक विचार है कि यदि कोई खटकती हुई भी बात हो, किन्तु विवशता-विशेष से उसको सह्य मानकर विवेकी साहित्य के आचार्य उस कृति का भी मान करने लगे तो कितना उत्तम हो ! ऐसा लगता है कि संस्कृत के साहित्याचार्यों की अनुदारता के कारण संस्कृत के काव्य की मन्दाकिनी का प्रवाह रुका ही नहीं सूख भी गया है। किन्तु समय की माँग है कि संस्कृत के कवियों को मुनिश्रीजी के समान निर्भीक होकर काव्य के प्रवाह को कम से कम सूखने तो नहीं देना चाहिए। प्रवाह अन्वर्थ बन सके तब तो कहना ही क्या है ! सम्भवतः ऐसी ही बातों को देखकर किसी नीतिकार ने कहा है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति साधवः ।।

'गोपुच्छसमानाकार' की भावना के अनुसार काव्य का आकार वास्तव में उचित है। क्योंकि पूँछ का आदि भाग मोटा होता है और क्रम से नीचे को पतला होता जाता है। सो वैसा ही आकार इस काव्य का है। क्योंकि पूर्व के सर्गों में मोटे-मोटे छन्द हैं और फिर क्रम से पतले से पतले होते चले गए हैं। और यदि पूँछ के बालों वाले भाग से आकार का सम्बन्ध है, तो भी कोई काव्य के आकार में अन्तर नहीं आता। अभिप्राय यह है कि काव्य का आकार भी निश्चय के अनुसार ही है।

किन्तु कुछ भी हो, एक बात तो माननी पड़ेगी, कि वर्ण्य विषय के अनुसार मुनिश्री जी ने अपने कर्तव्य का निर्वाह बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इस काव्य को महाकाव्य की श्रेणी में स्थिर किया जा सकता है, कि नहीं, इसमें भले ही विवाद हो, यह हो सकता है, किन्तु काव्य की प्रतिष्ठा को एक कवि के रूप में मुनिश्री जी ने जिस योग्यता से निभाया है, यह कुछ कम प्रशंसा की बात नहीं है। आज के समय में एक संस्कृत के काव्य की रचना स्वयं में भी कुछ कम स्तुत्य नहीं है।

जहाँ तक काव्य के छन्दों का प्रश्न है, वहाँ तक उत्तर में कहा जा सकता है, कि मुनिश्री जी निरपवाद हैं। छन्दों के नियमों के निर्वाह में परम नैपुण्य की झलक

कौंधती-सी जान पड़ती है। इसका प्रमाण है कि काव्य के आदि से अन्त तक देखने पर यतिभङ्ग ढूंढने-से भी नहीं मिलता, गण-दोष की बात तो बहुत दूर की है।

वर्णन के लिए किसी छन्द विशेष की प्रियता स्थिर करना कठिन है। क्योंकि काव्य में उन्होंने यत्र-तत्र इस बात को स्पष्ट कर दिया हैं, कि किसी भी छन्द में अपने भाव को व्यक्त किया जा सकता है। फिर भी वंशस्थ वृत्त और उपेन्द्रवज्रा वृत्त तो आपके सधे हुए-से लगते हैं।

महाकवियों के समान, छन्दःपूर्त्ति के लिए 'तु, हि, च, स्म, खलु, वै' का प्रयोग मुनिश्री जी की प्रवृत्ति में है ही नहीं। अपितु और अर्थ के लिए 'च' का अध्याहार करना पड़ता है, जहाँ परम आवश्यकता ने ही बाधित कर दिया हो, तभी 'च' शब्द का उपयोग किया हो, यह बात कोई और है।

मुनिश्री जी की भाषा सीमित और सरल है, किन्तु वह व्याकरण-सम्मत अवश्य है। साहित्य की विधा से कुछ यह अखरती-सी बात लगती है, किन्तु अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ही तो व्यक्ति शब्द-योजना कर पाता है। इसलिए भाषा का सीमित विशेषण युक्तियुक्त प्रतीत होता है। संस्कृत के काव्यसाहित्य में इसलिए महाकवि माघ के लिए प्रशंसा के प्रकरण में **'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।'** कहा जाता है। हमारी कल्पना में यहाँ काकूक्ति है। जैसे कि **नवसर्गगते माघे** अर्थात् **माघरचिते काव्ये नवशब्दः** अर्थात् **नवीनः शब्द न विद्यते इति न, अपितु विद्यते एव।**

इतने पर भी दुरूहार्थता का नाम नहीं लिया जा सकता, यह मुनिश्री जी की एक विशेषता है। साथ ही दूरान्वयिता अवश्य है, इस बात का प्रतिवाद भी नहीं किया सकता। किंतु सहृदय कविजन –

'एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' के न्याय से इसको सह सकेंगे, ऐसा विश्वास हम कर सकते हैं।

पुनरपि संस्कृत के व्याकरण के नियम बड़े जटिल हैं। इनसे यशस्वी महाकवि भी उलझे बिना नहीं रहे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझ लेना चाहिए, कि उन्होंने जान-बूझ कर व्याकरण के नियम की उपेक्षा की, किन्तु स्वाभाविक रूप में उपेक्षा बन गई। इसके साथ व्याकरण ऐसा उपकारक भी है कि उनके समाधान का उपाय भी बता देता है। इतने पर भी एक महाकवि के प्राशस्त्य में व्याकरण के नियम का निर्वाह भी संगृहीत। इस दृष्टि से देखें तो यह काव्य स्तरगत है, ऐसा प्रतीत होता है। 'किन्तु, किन्तु' की कुटिलता से कौन बचा है और बच सकता है!

अत एव गण-व्यतिरेक और पद की प्रतिष्ठा नहीं बच सकी। तथापि प्रजातन्त्र के समान कवितन्त्र में बहुमत का आदर होता है। इसलिए जो एक बार चुन लिया गया, वह चुन गया। तदनुसार गण और पद एवं इट् और अनिट् जहाँ चिन

गये, चिन गये। यह हो सकता है कि वे मन्त्रि-मण्डल में सम्मिलित न किये जाएँ, तो भी वे गण और पद के हित में चुने हुए सदस्य उपकारक तो हैं ही। इस प्रकार वे भी अपना महत्व रखते हैं। क्योंकि ये काव्य में चिन गये हैं। व्याकरणरूप जनता ने इस प्रकार के निर्वाचन में अपने समाधान का मत व्यक्त कर दिया है।

भाव अधिक स्पष्ट हैं। इसलिए पढ़ने के साथ आगे क्या है ? इसके जानने की इच्छा होती है। अर्थ में परिज्ञान में किसी प्रकार के बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता। क्योंकि सरस, सरल और प्रयुक्त शब्दों के वाक्यों की रचना सर्वाधिक है। किन्तु वर्णन के साथ व्यंग्य अर्थ स्वतः अभिव्यक्त होता है, यह बात तो इस काव्य के लिए सुवर्ण में सुगन्ध का कार्य करती है। अत एव प्रसाद गुण की विशेषता है। शान्त रस प्रधान हैं, किन्तु प्रसंगात् अन्य रस भी सहकारी बने हुए हैं। इस बात को हम काव्य के उद्धरण के साथ प्रस्तुत करें, यह हम उचित नहीं समझते। क्योंकि हम को आपकी योग्यता पर अपनी योग्यता से अधिक विश्वास है। दूसरे वह समीक्षा के क्षेत्र के अधिकार की बात है। सम्पादक के क्षेत्र के अधिकार को अतिक्रमण करने का व्यर्थ में साहस क्यों करना चाहिए ?

अलङ्कारों के समावेश की मुनिश्रीजी को कोई चिन्ता नहीं है। तथापि अनेक अलङ्कार शब्द और अर्थ की प्रधानता के साथ वर्णन से आकृष्ट होकर प्रविष्ट हो गए हैं। सम्भवतः हमारे इस कथन पर सहसा विश्वास न भी हो, भले ही न हो, किन्तु काव्य में अर्थान्तरन्यास तो बलात् प्रवेश प्राप्त कर ही रहा है, क्या कोई इस काव्य को देखकर निषेध कर सकता है ? यहाँ पर भी हम उद्धरण प्रस्तुत नहीं करेंगे। क्योंकि काव्य आपके सम्मुख है। सम्भवतः इन सब बातों को लेकर ही महाकवि जगन्नाथ पाण्डितराज ने कहा है कि—

'न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।'

सम्प्रति सबके अन्त में सम्पादन का भार मुझ जैसे अनाधिकारी व्यक्ति पर रखकर पूज्य मुनिश्रीजी ने अनाधिकारी को अधिकारी होने का आशीर्वाद दिया है। मुनिश्रीजी महाराज गुरुदेव भी हैं, उपाध्याय भी हैं, अध्यात्मयोगी भी हैं और सर्वाधिक ध्यानतपोऽधिराज हैं, इसलिए—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

जैसा दृश्य उत्पन्न हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ! किन्तु अल्पज्ञ होने के कारण हृदय में थोड़ा-बहुत संकोच तो है ही।

परन्तु वास्तविक प्रेरक एवं विशेषोत्साहक श्रीयुत देवेन्द्र मुनिजी महाराज हैं। आप श्री स्वयं विशिष्ट साहित्य मनीषी, जैन साहित्य, दर्शन, आगम और शास्त्रों के

तो प्रतिभावान् अधिकारी लेखक हैं ही, किन्तु प्रकारान्तर से हिन्दी साहित्य की मूक सेवा के भी उपासक हैं, सो इन मुनि महाराज ने, जो गुरुदेव के प्रधान शिष्य हैं, संकेत दिया कि गुरुदेव जिस काव्य की यथास्थिति रचना करते जा रहे हैं, आप उसको देखकर संकलित करते चलिए।

इस प्रकार सम्पादन का कार्य रायचूर (कर्णाटक) में वर्षावास पर पूर्ण हुआ। मुनिजन पदविहार के समय सभी बातों का ध्यान रखते हैं और विभिन्न प्रकार के परीषह धारण करते हैं, यह आजनवेद्य विषय है। इन परिस्थितियों के रहते हुए भी गुरुदेवश्री की काव्यसाधना, उनके संस्कृत भाषा के अनुराग का एक उदाहरण है।

भविष्य में भी एक महाकाव्य की रूपरेखा का बिखरा हुआ चित्र गुरुदेवश्री के मानस-पटल पर छाया हुआ है, उसे मूर्तरूप देने के लिए धीरे-धीरे प्रयत्न चल रहा है। आशा ही नहीं, विश्वास है, कि वह प्रयत्न संस्कृत-काव्य-भंडार की श्री वृद्धि में सहायक होगा और धार्मिक जनता के स्वाध्याय का अवलम्बन होगा।

किमधिकं विद्वत्सु—

दीपावली
वर्षावास
बेंगलूर

रमाशंकर शास्त्री

[सम्पादक]

उदार-अर्थ सहयोगी

श्री धनराजजी चुन्नीलालजी बाठिया : एक परिचय

भारतीय संस्कृति के मननशील मनीषियों ने जीवन के सम्बन्ध में गहराई से चिन्तन करते हुए कहा है 'जीवन खिले हुए फूल की तरह सुगन्धित होना चाहिए, जो अपनी मधुर सौरभ से दिग्दिगन्त को सुवासित करता रहे। तप, जप, ध्यान, दान, शील भाव आदि सद्गुणों से जीवन महकता रहे।

प्रस्तुत कसौटी पर जब हम धर्मप्रेमी सुश्रावक धनराज जी बांठिया के जीवन पर चिन्तन करते हैं तो उनका जीवन एक परम यशस्वी जीवन प्रतीत होता है।

आपका जन्म पूना जिले के औंध नामक ग्राम में दिनाङ्क २ मार्च १९२२ में हुआ। आपका अध्ययन हाईस्कूल तक हुआ। उसके पश्चात् 'टैलरिंग कोर्स' में विशेष योग्यता प्राप्त की और आपने सन् १९६० में रेडिमेड कपड़े बनाने के लिए कार्य प्रारम्भ किया। आज आपकी फर्म में सौ से भी अधिक व्यक्ति कार्य करते हैं। फर्म का नाम है के० जी० बांठिया ब्रादर्स, ८९।१ भवानी पेठ, पुणे (महाराष्ट्र) ४११००२। आप बिन्नी मिल्स (मद्रास) के होलसेल वितरक भी हैं। आपने अपने प्रबल पुरुषार्थ से व्यापार में चार चाँद लगाए हैं। आपका स्वभाव बहुत ही मिलनसार, मधुर है। साथ ही आप सच्च-रित्रनिष्ठ व्यक्ति हैं। जैन धर्म के प्रति आपकी गहरी निष्ठा है और अन्य धर्म सम्प्रदायों के प्रति भी आपके मन में सहानुभूति है। अनेक सामाजिक, धार्मिक कार्यों के प्रति आपकी रुचि है और यथाशक्ति आप सहयोग भी प्रदान करते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम झमकाबाई है, जो अत्यन्त भद्र प्रकृति की धर्म परायणा महिला है। आपको सदा धार्मिक कार्यों के लिए सहयोग और प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं। आपके तीन सुपुत्र हैं, गुलाबचन्द जी, फूलचन्द जी, और सुहासचन्द जी। ये तीनों भाई त्रिमूर्ति की तरह हैं। आपका सम्पूर्ण परिवार परम श्रद्धेय सदगुरुवर्य प्रसिद्धवक्ता राजस्थान केसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है।

श्री अमरसूरि काव्यं ग्रन्थ रत्न के प्रकाशनार्थ आपका हार्दिक अर्थ सहयोग हमें संप्राप्त हुआ है तदर्थ हम संस्था की ओर से आपका आभार मानते हैं। पूर्व भी आपका सहयोग सदा मिलता रहा है और भविष्य में भी सदा मिलता रहेगा, इसी मंगल आशा के साथ पुनः आभार मानता हूँ।

—चुन्नीलाल धर्मावत

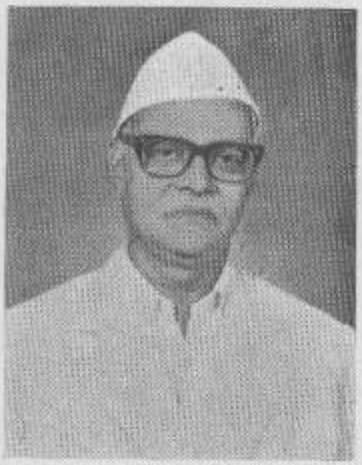

गुरुभक्त, उदारचेता, धर्मप्रेमी, सुश्रावक

श्रीमान धनराज जी चुन्नीलाल जी बांठिया

[पूना]

श्रद्धा के दो बोल

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजीम० स्थानकवासी जैन समाज के एक जगमगाते नक्षत्र हैं। वे जीवन के अमर कलाकार हैं। वे पारस पुरुष हैं, उनके सम्पर्क में आते ही जीवन में पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है और पुण्य की पावन प्रभा जगमगाने लगती है।

सन् १९७५ के पूना वर्षावास के सुहावने अवसर पर मैं सद्गुरुवर्य के निकट सम्पर्क में आया। उसके पूर्व भी उनके दर्शन किये थे पर सेवा का लाभ नहीं ले सका था। जब से मैं और मेरा परिवार सद्गुरु देव श्री के सम्पर्क में आया तब से हमारे जीवन में एक अभिनव परिवर्तन हो गया है। धर्म के प्रति सहज लगाव हो गया है। महापुरुषों के जीवन की यह महान विशेषता है कि उनके जीवन का कण-कण और अणु-अणु प्रेरणा प्रदान करता है। सद्गुरु श्री का जीवन प्रेरणा का पावन स्रोत है।

श्रद्धेय सद्गुरु देव के विराट् काय अभिनन्दन ग्रन्थ में मैं अपनी अनन्त श्रद्धा सद्गुरुवर्य के पावन चरणों में समर्पित करना चाहता था पर ग्रन्थ छप चुका था इसलिए चाहते हुए भी मैं अपने विचार-पुष्प समर्पित न कर सका, किन्तु आपश्री की असीम कृपा से प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन में 'पत्रं पुष्प' के रूप में अर्थ सहयोग प्रदान करने का सुनहरा अवसर मुझे सम्प्राप्त हुआ एतदर्थ मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

सद्गुरुदेव की असीम कृपा मेरे पर और मेरे परिवार पर रही है। जिसके फल स्वरूप हम प्रतिपल प्रतिक्षण प्रगति के पथ पर निरन्तर बढ़ रहे हैं। उनकी अपार छत्रच्छाया हमारे पर सदा बनी रहे यही मेरी उनके श्रीचरणों में सविनय प्रार्थना है।

—धनराज चुन्नीलाल बांठिया, पूना

अनुक्रमणिका

१	प्रथमः सर्गः	३
२	द्वितीयः सर्गः	२१
३	तृतीयः सर्गः	४६
४	चतुर्थः सर्गः	६३
५	पंचमः सर्गः	७१
६	षष्ठः सर्गः	९६
७	सप्तमः सर्गः	११४
८	अष्टमः सर्गः	१२६
९	नवमः सर्गः	१३८
१०	दशमः सर्गः	१५९
११	एकादशः सर्गः	१८०
१२	द्वादशः सर्गः	२००
१३	त्रयोदशः सर्गः	२१२

श्रीमद् अमरसूरि काव्यम्

काव्यम्

इदं पुरा कल्पितमेवमासीद्,
अवाप्तकाले रचना-विशेषम् ।
कृतेऽपि काव्ये पुनरेव काव्यम्,
रचेयमेवं मनसोऽनुकूलम् ॥

पुनर्मयैतद् रचितं सुकाव्यम्,
शुभेषु मासेषु चतुर्षु वृष्टेः ।
न्यवासि कर्णाटक-राज्यकान्तर्-
गते पुरे सम्प्रति रायचूरे ॥

अतो मया वर्णितमेतदेवम्,
मनःप्रसादाय पुनर्मुनीनाम् ।
विपश्चितां चित्तमुपासितुं वा,
निरेनसो मे मनसस्तृषायै ॥

न नाम सामर्थ्यमिहेदमाप्तम्,
कवेश्चमत्कारिकृतेर्मयाहो !
तथापि कांचिन्मम शब्दसृष्टिर्-
भवेदमीषां विदुषां समाजे ॥

समर्प्यतेऽन्तःकरणेन तेन,
प्रकृष्टभावेन मया नतेन ।
गुरोः प्रभोर्मे तपसो विधातुः,
पदाब्जयोस्तारकचन्द्रनाम्नः ॥

—पुष्करमुनिना

प्रथमः सर्गः[1]

(१)

रागद्वेषौ विषमविषयौ शत्रुरूपौ विजित्य ,
ज्ञाता जातः सकलजगतो वस्तुजातस्य पूज्यः ।
शक्रादीनामपि दिविषदां भारतीनामधीशः ,
तीर्थेशस्तं भुवनविदितं त्रैशलेयं नमामि ॥

अन्वयः—(यो) भारतीनामधीशः शक्रादीनां दिविषदां देवानां पूज्यः, तीर्थङ्करो भगवान् शत्रुरूपौ विषमविषयौ रागद्वेषौ विजित्य सकल-जगतो वस्तुजातस्य ज्ञाता जातः, तमेतादृशं भुवनविदितं त्रैशलेयं त्रिशलाया अपत्यं पुमांसं वर्द्धमानं पुष्करमुनिरहं नमामि ।

अर्थ—जो वाणियों के स्वामी, इन्द्र आदि देवताओं के पूज्य तीर्थङ्कर भगवान् शत्रु जैसे विषम विषय वाले राग और द्वेष को जीत कर समस्त संसार की वस्तुओं के ज्ञाता बने, ऐसे विश्वविख्यात त्रिशला माता के पुत्र उन वर्द्धमान को, मैं पुष्करमुनि प्रणाम करता हूँ ।

(२)

सत्सु श्रेष्ठं श्रुतिमतियुतं ज्ञानिगुण्येषु वन्द्यम् ,
लक्ष्मीवन्तं प्रथितसमिति सिद्धगुप्ति प्रसिद्धम् ।
नत्वाचार्यं श्रमणममरं सिंहमेवाभिधानम् ,
तस्यैवैतच्चरितमतुलं तायते वित्तवृत्तम् ॥

अन्वयः—श्रुतिमतियुत ज्ञानिगुण्येषु वन्द्यं प्रथितसमिति सिद्धगुप्ति प्रसिद्धं सत्सु श्रेष्ठम् आचार्यम् अमरसिंहाभिधानं नत्वा, पुष्करमुनिना मया तस्य एव एतद् वित्तवृत्तम् अतुलं चरितं तायते ।

अर्थ—श्रुति और मति से युक्त, ज्ञानियों के गुणियों में वन्दनीय, समितियों के पालक, गुप्तियों के साधक, प्रसिद्ध सन्तवर आचार्य अमरसिंहमुनि महाराज को प्रणाम कर, मुझ पुष्करमुनि के द्वारा उन आचार्य महाराज का ही यह जाना हुआ अनुपम चरित विस्तृत किया जा रहा है ।

---

१. सर्गेऽस्मिन् 'मन्दाक्रान्ता म्भौ न्तौ त्गौ ग् समुद्रर्तुस्वराः' श्रीपिङ्गलाचार्यस्य च्छन्दःशास्त्रात् सूत्रमेतत् ।

(३)

मध्ये द्वीपं ललितरचनं सर्व सौविध्यलीलम् ,
दिल्लीत्याख्यं प्रथितधरिणीपालभालेतिवृत्तम् ।
विश्वख्यातं नगरमतिभं राजते भारतीयम् ,
इन्द्रप्रस्थं व्यलसदिह वा साम्प्रतं लोकतन्त्रम् ॥

अन्वयः– प्रथितधरिणीपालभालेतिवृत्तं सर्वसौविध्यलीलं ललितरचनं मध्येद्वीपं विश्वविख्यातम् अतिभं नगरम् अस्ति । अस्ति भवन्तीत्यपरप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति न्यायात् । इह वा कदापि इन्द्रप्रस्थं व्यलसत्, साम्प्रतं भारतीयं लोकतन्त्रं राजते ।

अर्थ – जिसमें प्रसिद्ध राजाओं के मस्तकों का इतिहास है, एवं सब सुविधाओं की लीला है, जिसकी सुन्दर रचना है, ऐसा द्वीप के मध्य में संसार का जाना-माना चमकता हुआ दिल्ली नाम का नगर है। यहाँ पर कभी इन्द्रप्रस्थ शोभित था। आज यहाँ भारतीय लोकराज्य प्रतिष्ठित है।

(४)

दिल्लीत्याख्ये विततनगरे लब्धकीर्त्तौ सुवंशे ,
ओसावाले प्रसितमहिमावाप्तधीर्देवसिंहः ।
जातस्तस्य प्रथितयशसि द्योतयन्त्यां सुपत्न्याम् ,
लोके ख्यातोऽमरशिशुरयं सूनुरत्नं श्रियां सः ॥

अन्वयः– दिल्लीत्याख्ये विततनगरे लब्धकीर्त्तौ, ओसावाले सुवंशे प्रसितमहिमावाप्तधीः, देवसिंहो जातः। तस्य द्योतयन्त्यां प्रथितयशसि सुपत्न्यां श्रियाम् अयं जातः, स सूनुरत्नं लोके, अमरशिशुः ख्यातः (अभवत्)।

अर्थ– दिल्ली नामक विशाल नगर में प्रसिद्ध ओसवाल वंश में सदातन के महत्त्व से प्राप्त बुद्धि वाले सेठ देवसिंहजी उत्पन्न हुए थे। उनकी झलकती हुई कीर्त्तिमती धर्मपत्नी कमलादेवी (लक्ष्मीबाई) की कुक्षि से जो पुत्ररत्न हुआ, वह यह अमर शिशु है, यही अमरसिंहमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(५)

प्राप्योत्पत्तिं सघनविपिने सिंहशावोऽप्यधीरः ,
पारे कृत्यं सृजति सहसा भीमकाये गजेन्द्रे ।
तद्वद् बालोऽमरशिशुरयं युक्तिमद्भिर्वचोभिः ,
चामत्कृत्यं नयति विदुषां मण्डलं रञ्जनाय ॥

अन्वयः—सघनविपिने उत्पत्तिं प्राप्य अपि अधीरः सिंहशावो भीमकाये गजेन्द्रे सहसा पारेकृत्यं सृजति, तद्वद् अमरशिशुः अयं बालः युक्तिमद्भिः वचोभिः विदुषां मण्डलं रञ्जनाय चामत्कृत्यं नयति ।

अर्थ—जैसे कि सघन वन में उत्पन्न होकर सिंह का चञ्चल बच्चा भीम जैसे शरीर के हाथी पर एक साथ आक्रमण कर ठिकाने लगा देता है, उसीप्रकार अमरसिंह छोटे बालक होते हुए भी युक्तियुक्त वचनों से विद्वत्समाज को प्रसन्न रखने के लिए चमत्कार दिखाते थे ।

(६)

विद्यां प्राप्तो भवति सतताभ्यस्तपाठो मनुष्यः ,
विद्योद्योगः फलति न सदा कर्मबद्धस्य तस्य ।
दृष्टो जन्यैः कतिपयदिनैर्लब्धविद्योऽमरोऽयम् ,
भव्यो जीवो जनयति मुदं पूर्वपुण्याप्तजन्मा ॥

अन्वयः—सतताभ्यस्तपाठः मनुष्यः विद्यां प्राप्तो भवति, (किन्तु) कर्मबद्धस्य तस्य सदा विद्योद्योगः न फलति । (किन्तु) जन्यैः दृष्टः, (यत्) अयम् अमरः कतिपय दिनैः लब्धविद्यः (अभवत्) । (यतः) पूर्वपुण्याप्तजन्मा भव्यः जीवः मुदं जनयति ।

अर्थ—निरन्तर पढ़े हुए का अभ्यास करने वाला मनुष्य विद्या प्राप्त करता है अर्थात पढ़-लिखकर विद्वान् हो जाता है । किन्तु सभी इस प्रकार पढ़-लिखकर विद्वान् नहीं हो पाते, क्योंकि कर्मों से बँधा हुआ मनुष्य विद्या के उद्योग में सदा सफल हो, यह नहीं हो पाता । किन्तु लोगों ने देखा कि यह अमरसिंह कुछ ही दिनों में पढ़कर विद्वान् हो गया । देखा गया है कि पूर्वपुण्य से जन्म लेकर ही भव्य प्राणी हर्ष पैदा करता है, किन्तु प्रत्येक ऐसा नहीं कर सकता ।

(७)

पारं लब्ध्वा मुनिवर गुणग्रन्थियुक्तस्य शीघ्रम् ,
क्षोद क्षेमं मनसि जनयन् शास्त्रतत्त्वस्य राशेः ।
भ्रामं भ्रामं कृतमतिरसौ संयमे बद्धदृष्टिः ,
जातस्तं तु प्रभवति तदा कर्मवाहो विवाहः ॥

अन्वयः—मुनिवरगुणग्रन्थियुक्तस्य शास्त्रतत्त्वस्य राशेः पारं शीघ्रं लब्ध्वा मनसि क्षोद-क्षेमं जनयन् भ्रामं भ्रामं कृतमतिः असौ भवति, तदा संयमे बद्धदृष्टिः जातः । किन्तु तं कर्मवाहः विवाहः प्रभवति ।

अर्थ—मुनिवरों के गुणों की गाँठ से युक्त शास्त्रों के तत्त्व के समूह के पार को शीघ्र पाकर मन में क्या छोड़ना और क्या रखना इसको विचारता हुआ घूम-घूमकर पक्का हो जाता है, तो फिर वह अमरसिंह संयम के विषय में ही विचार को दृढ़ कर लेता है । किन्तु तब उस पर कर्मों को ढोने वाला विवाह प्रभाव डालने लगता है ।

(८)

पित्रोराज्ञां शिरसि कुरुते प्राकृतः पूरुषोऽपि ,
प्राप्तादेशो विनयमनुगः कर्त्तुमन्यत्कथं स्यात् ।
भव्याकारो गुणगणतनुः कामलेयोऽमरोऽयम्[1] ,
हेतोस्तस्मात्परिणयममुं धर्त्तुमेवं प्रवृत्तः ॥

अन्वयः—प्राकृतः पूरुषोऽपि यदा पित्रोः आज्ञां शिरसि कुरुते, तदा विनयम् अनुगः प्राप्तादेशः अन्यत् कर्त्तुम् कथं स्यात् ! तस्मात् हेतोः गुण-गणतनुः भव्याकारः कामलेयः अयम् अमरसिंहः एवम् अमुम् परिणयं धर्त्तुं प्रवृत्तः (अभवत्) ।

अर्थ—साधारण मनुष्य भी जब अपने माता-पिता के आदेश को शिर पर धारण करता है, तब विनयी आज्ञाकारी अमरसिंह भला किस प्रकार टाल सकते थे । इसी कारण से अत्यन्तगुणी सुन्दर शरीर कमला माता के पुत्र ये अमरसिंह इस विवाह को अङ्गीकार करने के लिए प्रवृत्त हुए ।

---

१ कमलापुत्रः

(९)

कर्मोत्पन्नं प्रभवति जनं कर्त्तुमेवोच्चनीचम् ,
तच्चैवेमं रचयति परं सार्वभौमप्रवाहम् ।
तस्मादन्यत् किमपि न तथा सारभूतं समर्थम् ;
तेना–बद्धोऽमर उदवहद् श्रीमतीं धर्मपत्नीम् ॥

अन्वयः—कर्म (कर्त्तुं) उत्पन्नं जनम् उच्च-नीचं कर्तुं प्रभवति। तत् कर्म च इमम् परम् सार्वभौमप्रवाहं रचयति। तस्मात् अन्यत् किम् अपि तथा सारभूतं समर्थं न (अस्ति)। तेन आबद्धः अमरसिंहः श्रीमतीं-धर्म-पत्नीम् उदवहत्।

अर्थ—कर्म उत्पन्न हुए मनुष्य को ऊँच-नीच बनाने के लिये प्रभाव डालता है, और वही कर्म इस 'दूसरे सर्वप्रभुत्व सम्पन्न प्रवाह की रचना करता है। इससे अन्य कोई भी मूल के समान समर्थ नहीं है। अतः उस कर्म से घिरे हुए अमरसिंह ने शोभाशालिनी कन्या से विवाह किया।

(१०)

भुक्त्वा भोगान् नियमितरतीन् याति लोको विरक्तिम् ,
विश्वस्येमं प्रकटनियमं कोऽतिगन्तुं सुशक्तः ।
अस्तीत्येवं कथमपि तथाप्यन्यथा कर्त्तुमेतम् ,
आश्चर्यं मे पुनरपि नरो भोगवृत्तिं तनोति ॥

अन्वयः—लोकः नियमितरतीन् भोगान् भुक्त्वा विरक्तिं याति, इमम् प्रकटनियमं कः अतिगन्तुं सुशक्तः (अस्ति)? अर्थात् न कोऽपि सुशक्तोऽस्ति। एवम् अस्ति इति, तथापि एतं नियमम् अन्यथा कर्त्तुं नरः भोगवृत्तिं तनोति अतो मे आश्चर्यम् (अस्ति)।

अर्थ—मनुष्य नियमित दाम्पत्यादि प्रेम के भोगों को भोगकर विरक्त हो जाता है, अर्थात् संसार के ये रागरंग उसको सब नीरस जान पड़ते हैं। यह संसार का अटल नियम है, तो भी कुछ मनुष्य संसार के अटल नियम को टालने में लगे हुए हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी कोई अटल नियम को बदल सकता है? अर्थात् नहीं बदल सकता। इतने पर भी मनुष्य नियम बदलने के लिये भोगवृत्ति को बढ़ाता ही जा रहा है, यह मुझे आश्चर्य लगता है।

(११)

अन्ह्येकस्मिन् स्वयमयमहो चिन्तितो यातयामः ;
प्रातर्वक्तुं प्रभवति सदा मानसं दुःखमेतद् ।
पित्रोरग्रे कथितमपि तद् किन्तु वैराग्यमेवम् ;
मन्तुं तस्य व्यथितमनसस्तौ समर्थौ न जातौ ॥

अन्वयः—अहो एकस्मिन् अह्नि स्वयम् अयं चिन्तितः यातयामः (आसीत्) तदा प्रातः पितोःअग्रे मानसं दुःखं वक्तुं प्रभवति, एतत् कथितम् अपि तद् तस्य व्यथितमनसः दुःखं वैराग्यम् (अस्ति) एवं मन्तुं तौ समर्थौ न जातौ ।

अर्थ—अरे एक दिन स्वयं यह अमरसिंह चिन्तित हो रात्रि को व्यतीत कर प्रातः माता-पिता के सामने जब मन के दुःख को कहने लगता है तो इस कहने पर वह, उस दुःखी का दुःख वैराग्य है, इस प्रकार मानने के लिये वे दोनों माता-पिता समर्थ नहीं हो पाए ।

(१२)

श्रावं श्रावं त्वमरविरतेर्वृत्तमेतत्प्रवृत्तम् ,
पित्रोश्चित्तं सृजति सरणिं कामसङ्गानुवृत्तेः ।
दृष्ट्वा सर्वं विरतहृदयो ज्ञाततत्त्वोऽमरोऽसौ ,
जानात्येतत् सहजमतिकृद्-प्रेम पाशस्य कृत्यम् ॥

अन्वयः—अमरविरतेः एतत् प्रवृत्तम् वृत्तं श्रावं श्रावं पित्रोः चित्तम् कामसङ्गानुवृत्तेः सरिणम् सृजति । एतत् सर्वं दृष्ट्वा ज्ञाततत्त्वः असौ अमरः सहजमतिकृत्-प्रेमपाशस्य कृत्यं जानाति ।

अर्थ—अमरसिंह की उदासीनता के फैले हुए इस समाचार को बार-बार सुनकर उसके माता-पिता का हृदय कामवासना के धन्धे के मार्ग को रचने लगता है, अर्थात् इस अमरसिंह को संसार मोह-जाल में फँसा देना चाहिए । जिससे कि इसकी उदासीनता नष्ट हो । किन्तु इस सबको देखकर वह अनुभवी अमरसिंह स्वाभाविक बुद्धि के द्वारा रचे गये प्रेम के फन्दे के कृत्य को समझ लेता है कि यह सब किसलिये क्यों किया जा रहा है ।

(१३)

श्रुत्वा माता वचनमभितः शोशुचाना निदानम् ,
पुत्रं प्राह व्यथनकदनं केन किञ्चित् किमुक्तम् ।
किं वा दुःखं यदितिसदने कारणं वा तदन्यत् ,
यस्माज् जातं मनसि सरले तत्त्वमेतद् विचित्रम् ॥

अन्वयः—अभितः वचनं श्रुत्वा निदानं शोशुचाना माता पुत्रं प्राह, (यत्) केन किञ्चित् व्यथनकदनं उक्तं किम् ? वा इह सदने दुःखं किम् ? वा अन्यत् कारणम् ? यस्मात् सरले मनसि एतत् विचित्रं तत्त्वं जातम् ।

अर्थ इधर-उधर की बात को सुनकर मूलकारण को सोचती हुई माता ने पुत्र से कहा, कि क्या कभी किसी ने व्यथा एवं अपमानजनक कुछ कह दिया है ? अथवा अपने इस घर में कोई कष्ट है ? या कोई दूसरा कारण है ? जिससे कि तेरे सरल मन में यह अनोखी विरक्ति की बात समा गई है ।

(१४)

गार्हस्थ्यं ते परमसुखदं स्वर्गसौन्दर्ययुक्तम् ,
यस्मै देवा विहितविधयो रोरुचन्तीति नित्यम् ।
सिद्ध्यन्त्येवं गृहवसतयः साधवो धर्मदेहाः ,
किं वैचित्र्यं श्रमणशरणे शासने मारमारे ॥

अन्वयः—परमसुखदं स्वर्गसौन्दर्ययुक्तं ते गार्हस्थ्यम् (अस्ति, यस्मै (गार्हस्थ्याय) विहितविधयः देवा अपि नित्यं रोरुचन्ति इति । एवं तु गृहवसतयः धर्मदेहाः साधवः अपि सिद्ध्यन्ति । (अतः) मारमारे श्रमणशरणे शासने वैचित्र्यं किम् ?

अर्थ—परम आनन्ददायक स्वर्ग के सौन्दर्य से युक्त तेरा यह गार्हस्थ्य जीवन है । जिस गार्हस्थ्य के आनन्द के लिये अनेक उपाय करनेवाले देवता भी बार-बार इच्छा प्रकट करते हैं । मैं ऐसा मानती हूँ कि घर में रहने वाले भी धर्मप्राण साधुजन सफल होते हैं, तब फिर काम को जीतने वाले साधु रक्षक हैं जिसके ऐसे जैनशासन में ही कौन-सी विशेषता है ? जिसके लिये तू इतना लालायित है ।

(१५)

सौभाग्यं मे यदिह भवने यादृशो रूपवांस्त्वम् ,
पौत्रोऽपि स्यान्नयनशयनस्तादृशः शोभनीयः ।
लक्ष्मीरम्या तव सुगृहिणी चन्द्रिकेवाभिरामा ,
आशातन्तुः परमसुगमो जीवमात्रं रुणद्धि ॥

अन्वयः—(यतः) तव लक्ष्मीरम्या चन्द्रिका इव अभिरामा सुगृहिणी (अस्ति) । यत् इह भवने यादृशः रूपवान् त्वम् (अस्ति), तादृशः नयनशयनः शोभनीयः पौत्रः अपि स्यात्, तदा मे सौभाग्यं (भवेत्) । (यतः संसारे) आशातन्तुः परमसुगमः (अस्ति) (तस्माद् अयम्) जीवमात्रं रुणद्धि ।

अर्थ—क्योंकि तेरी लक्ष्मी के समान सुन्दर और चन्द्रिका के समान रूपवती पत्नी है, इसलिये इस घर में जैसा तू रूपवान है, वैसा ही अत्यन्त रूपवान् पौत्र भी हो जाए तो मैं अपना सौभाग्य समझूं । क्योंकि संसार में आशा का डोरा अधिक सुगम है, उससे यह डोरा जीवमात्र को बाँधता रहता है । (अतः यदि मैं ऐसी आशा करूँ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि मैं भी उसी आशा से बँधी हुई हूँ ।)

(१६)

सौविध्यं ते परमशुभगं सर्वसौभाग्यशीलम् ,
साधव्यं स्यान्निखिल सुखकृत् कैश्यसंहारकारि ।
दौढ्यं[1] शीलं यदपि परमं वन्दनीयं शिरोभिः ,
लालाटिक्यं[2] कथमपि न ते शोभते रोचते मे ॥

अन्वयः—माताहि स्वतो विवृणोति यत् ते कैश्यसंहारकारि साधव्यं-सर्वं सौभाग्यशीलं परमशुभगं निखिलसुखकृत् सौविध्यं स्यात् (एतदहं मन्तुं शक्नोमि) । तदपि (च) दौढ्यं शीलं शिरोभिः परमं वन्दनीयं (स्यात्) (एतदपि बोद्धुमहं शक्नोमि), (इदं) लालाटिक्यं ते शोभते (शोभताम्), किन्तु मे कथमपि न रोचते ।

अर्थ—माता ही स्वतः विवरण करती है कि—यह तेरा केशों को उखाड़-फेंकने वाला साधुत्व सर्वसौभाग्यवाला उत्तम सौविध्य हो, (हो सकता है, यह मैं मान लेती हूँ, और) जो भी दुःख के साथ ध्यानसाधना का कर्म है, वह भी हो, (यह भी मैं समझ सकती हूँ ।) यह भिक्षाकारित्व तुझे शोभता हो तो भले ही शोभे, किन्तु मुझे कैसे भी नहीं रुचता ।

१—जैनसाधुत्वम्, २—भिक्षाकारित्वम् ।

(१७)

तैरस्कार्यं यदि तव तया धर्मपत्न्या कृतं स्यात् ,
ननम्यन्ते शुभगगतयः शोभनाः शीलवत्यः ।
नार्योऽनेकाः परिणयशतं दूरतश्चार्थयन्ते ,
ईषद्धास्यं तव यदि भवेत् स्वीकृतेरेव चिह्नम् ॥

अन्वयः—पुनरप्यग्रे माता कथयति—यदि तव तया धर्मपत्न्या तैरस्कार्यं कृतं स्यात्, (तदा कापि चिन्ता न कार्या)। यतः शुभगगतयः शोभनाः शीलवत्यः अनेका नार्यः ननम्यन्ते । दूरतः च (अनेकाः नार्यः) परिणयशतम् अर्थयन्ते । तव यदि ईषत् हास्यं भवेत् –(तर्हि अहं तव) स्वीकृतेः चिह्नं (मन्ये) किन्तु विरक्तिरियं हातव्येत्यर्थः ।

अर्थ—आगे फिर भी माता कहती है कि—यदि तेरा तेरी उस पत्नी ने तिरस्कार किया हो (तो भी कोई चिन्ता नहीं की जानी चाहिये)। क्योंकि शुभगति वाली सुन्दर शीलवती अनेक स्त्रियाँ झुक-झुक नमन करती हैं और दूर से ही अनेक स्त्रियाँ सैकड़ों विवाह चाहती हैं। तेरा यदि थोड़ा मुस्कराना ही हो—(तब मैं तेरी) स्वीकृति का संकेत (मान लूंगी)। किन्तु तुझे यह विरक्ति छोड़ देनी चाहिये।

(१८)

तत्कर्त्तुं स्यां भवति सुखदं यत्परैरप्यलभ्यम् ,
सौकर्यं ते भवतु परमं कामभोग्यं सदाहम् ।
किन्तूत्सर्गं कथमपि कृथा मेतिकारं गृहस्य ,
भाग्यङ्कारं तदिति जननी देहबन्धं रुरोद ॥

अन्वयः– पुनरपि माता कथयति—यत् परैः अपि अलभ्यम् (अस्ति), तत् ते परमं सुखदं कामभोग्यं सौकर्यं भवतु—(इति) अहम् सदा कर्त्तुं स्याम्, किन्तु गृहस्य उत्सर्गम् इतिकारं मा कृथाः। (अन्ते, जननी तदिति भाग्यङ्कारं देहबन्धं रुरोद।

अर्थ—फिर भी माता कहती है कि—जो दूसरों से भी अलभ्य है, ऐसी वस्तु तेरे लिये अधिक आनन्ददायक इच्छानुसार सुलभ हो सकती है– ऐसा मैं सदा करने को तत्पर हूँ, किन्तु घर का परित्याग सदा के लिये नहीं कर। इतना कहने पर अमरसिंह की माता भाग्य का नाम ले लेकर अमरसिंह को छाती से लगा कर रोने लगी।

(१९)

मातः सत्यं यदपि गदितं किन्तु तथ्यं न चैतत् ,
भाग्ये नाप्तं भवति सकलं जीवनं मानवीयम् ।
रूपं लब्धं तदपि सफलं गीयते यस्य पुण्यम् ,
पारे पुण्यं यदतिपरमं मोक्षरूपं प्रशस्तम् ॥

अन्वयः पुत्रो मातरं सान्त्वयति—मातः ! यदपि गदितं सत्यम् (अस्ति) किन्तु एतद् च न तथ्यम् (अस्ति) मानवीयं सकलं जीवनं भाग्येन आप्तं भवति । यस्य पुण्यं गीयते, (तस्य) तदपि सफलं रूपम् जातम् (अस्ति) इति (कथ्यते) (किन्तु) पारे पुण्यं यद् (अस्ति) (तत्) अतिपरमं प्रशस्तं मोक्ष-रूपम् (अस्ति) अतोऽहं तु मोक्षमिच्छामि नान्यदित्यर्थः ।

अर्थ—पुत्र माता को सान्त्वना देता है कि -अरी माँ ! तूने जो कुछ कहा, वह सत्य है, किन्तु फिर भी वह जैसा चाहिये, वैसा नहीं है । यह तो सभी मानते हैं कि मानव सम्बन्धी जीवन भाग्य से मिलता है, किन्तु उसमें भी पुण्य का गीत गाया जाता है कि जो पुण्यवान् है, वह उस सफल रूप को पाता है । और कहने वाले यहाँ तक कहते हैं कि पुण्य से भी परे सर्व महान् प्रशस्त मोक्षरूप है । इसलिये मैं तो मोक्ष चाहता हूँ और दूसरा कुछ नहीं—इसका यह अर्थ है ।

(२०)

सम्पच्चक्रं जगति विदितं वर्त्तते पापमूलम् ,
पापादेवं भवति विषमो जीवहन्ता जनानाम् ।
तद्रूपा प्ते रति परिचयाज्जायतेऽसत्यदृष्टिः ,
दृष्ट्यभ्यस्तो नृभवमपि तत्स्वर्गमेवं स वेद ॥

अन्वयः—पुत्र एव पुनर्मातरं कथयति—जगति सम्पच्चक्रं विदितं पापमूलं वर्त्तते । एवं पापात् विषमो जीवहन्ता भवति । अतिपरिचयात् तद्रूपाप्तेः एका दृष्टिः जायते, दृष्ट्यभ्यस्तः स नरभवम् अपि स्वर्गं वेद ।

अर्थ—पुत्र ही फिर माता को कहता है कि—जगत् में सम्पत्तियों का चक्र जाना हुआ पाप का कारण है । और इसी प्रकार पाप से मनुष्य मनुष्यों का दुर्दान्त प्राणिघातक बनता है । अत्यन्त संसर्ग से उस प्राणिघातकता से एक दृष्टि उत्पन्न होती है, उस दृष्टि का अभ्यस्त वह मनुष्य, मनुष्य-जन्म को भी स्वर्ग जानता है ।

(२१)

श्रुत्वा तथ्यं समुचितमिदं तस्य माता प्रसन्ना ,
प्रत्यासन्नं जनसमुदयं व्याहरन्तीत्यशोचत् ।
द्रष्टव्यं यत्किमिव हृदयं जातमस्यामरस्य ,
जैनं ज्ञानं प्रभवति जनं त्यागिनं तं विधातुम् ॥

अन्वयः—इदं समुचितं तथ्यं श्रुत्वा 'द्रष्टव्यम्, अस्य अमरस्य हृदयं किम् इव जातम्, इति' प्रत्यासन्नं जनसमुदयं व्याहरन्ती तस्य प्रसन्ना माता अशोचत्—यत् जैनं ज्ञानं तं जनं त्यागिनंविधातुं प्रभवति ।

अर्थ—इस समुचित तथ्य को सुनकर, 'देखिये, इस अमरसिंह का हृदय कैसा क्या हो गया है' ऐसा पास में खड़े हुए जनसमूह को—कहती हुई उसकी प्रसन्न माता सोचने लगी कि जिन भगवान् का ज्ञान मनुष्य को त्यागी बनाने के लिए प्रभाव रखता है ।

(२२)

पित्रा चोक्तं न किमपि धृतं तत्त्वमस्तीति जैने ,
ज्ञाने सत्यं किमपि यदि यद् वर्त्तते सास्त्यहिंसा ।
आहिंस्यं किं भवति तु तदोल्लङ्घ्यते शासनं मे ,
स्पष्टं ज्ञानं त्वयि यदिभवेच्छासनं लङ्घयेस्त्वम् ॥

अन्वयः—मातुः कथनान्तरं-पित्रा च उक्तं (यत्) जैने ज्ञाने किम् अपि तत्त्वं धृतं नास्ति, यदि किमपि (तस्मिन्) यद् सत्यं वर्त्तते सा अहिंसा अस्ति । यदि त्वयि (अहिंसायाः) स्पष्टं ज्ञानं भवेत् (तदा) त्वं किं (मदीयं) शासनं लङ्घयेः ? यदा मे शासनम् उल्लङ्घ्यते, तदा किम् आहिंस्यं भवति ? अर्थात् मदीयस्य शासनस्योल्लङ्घनात् हिंसा भवति-इत्यर्थः ।

अर्थ—माता के कहने के पीछे—पिता ने और कहा कि जैन ज्ञान में कुछ तत्त्व धरा हुआ नहीं है, यदि कुछ (उसमें) सत्य जो है, वह अहिंसा है । यदि तुझ में (अहिंसा का) स्पष्ट ज्ञान होता, (तब) तू क्या (मेरे शासन को लाँघता ? (अर्थात् नहीं) (जब) मेरा शासन लाँघा जाता है तो क्या अहिंसा होती है ? अर्थात् मेरे शासन के उल्लघन से हिंसा होती है—यह इसका अर्थ है ।

(२३)

शास्त्रे प्रोक्तस्तनुज इति यः पितृदेवोऽस्ति चासौ ,
आदिष्टः संश्चरति सदसत् कर्म वाऽलं विधातुम् ।
सत्पुत्रस्त्वं कुरु मम यथादेशमेवं तथेति ,
सेवा पित्रोर्भवति सततं सर्वथा वन्दनीया ॥

अन्वयः—पुनरप्यन्ते पिता कथयति-यः शास्त्रे तनुजः पितृदेव इति उक्तः (अस्ति), असौ आदिष्टः सन् सत् वा असत् कर्म विधातुम् अलं चरति (सः) सत्पुत्रः अस्ति । मम च त्वं सत्पुत्रः (असि), इति एवं यथादेशं तथा कुरु । (यतो हि) पित्रोः सेवा सततं वन्दनीया (भवति) ।

अर्थ—फिर भी अन्त में कहता है कि शास्त्र में पुत्र को पितृदेव ऐसा बताया गया है, और वह आदेश प्राप्त कर सत् अथवा असत् कर्म करने के लिए तत्पर रहता है, सत्पुत्र कहा जाता है । और तू मेरा सत्पुत्र है, इसलिये मैं जैसा आदेश करूँ, वैसा ही कर । (क्योंकि) माता-पिता की सेवा सदा वन्दनीय होती है ।

(२४)

तत्त्वं सर्वं निखिलमिति तद् पितृपादैर्यदुक्तम् ,
ज्ञातं मन्येऽशरणशरणं सारभूतं न जातु ।
अन्तर्भूतं मुनिजनवरैस्तत्त्वविद्भिर्यदुक्तम् ,
बाह्यं दृश्यं न किमपि तथा यादृशः शुद्ध आत्मा ॥

अन्वयः—पितृपादैः यद् उक्तम्, निखिलंतत्त्वं ज्ञातम् इति, तत् (अहम्) अशरणशरणं मन्ये, (किन्तु) जातु सर्वं सारभूतं न (अस्ति) तत्त्वविद्भिः मुनिजनवरैः यद् उक्तम्, तत्अन्तर्भूतम् अस्ति, किन्तु तत् किमपि बाह्यं दृश्यं न (अस्ति) । यादृशः शुद्धः आत्मा अस्ति, तथा (अन्यः कोऽपि नास्तीत्यर्थः । (अत आत्मज्ञानमेष्टव्यमित्यस्यायमर्थः) ।

अर्थ—पिताजी ने जो कहा—आद्यु पान्त तत्त्व समझा—ऐसा मानिये, उसको मैं अगतिकगति मानता हूँ, (किन्तु) कदाचित् सब सारभूत नही है । तत्त्ववेत्ता मुनिजनवरों ने जो बताया, वह सब इसके भीतर है । किन्तु वह कुछ भी बाह्य दृश्य नहीं है । जैसा कि शुद्ध आत्मा होता है, वैसा (अन्य कोई नहीं है । (अतः आत्मज्ञान चाहिये—इसका यह अर्थ है ।)

(२५)

कोऽपि प्राणी परिजनवृतः कर्मभिः प्राप्तहर्षः ,
धन्यंमन्यश्चलति पथि यो व्योमदृष्टिः सदर्पः ।
याते काले तुदति सततं भेषजाधार एषः ,
सोऽयं प्राणी निजकृतिवशान् कर्मभोगान् भुनक्ति ॥

अन्वयः—अमरसिंहः कथयति—दृश्यते—कः अपि परिजनवृतः कर्मभिः प्राप्तहर्षः प्राणी धन्यंमन्यः अस्ति, यः पथि व्योमदृष्टिः सदर्पःचलति, (किन्तु) काले याते स एव भेषजाधारः सन् सततं तुदति । (एतेन ज्ञायते)—अयं प्राणी निजकृतिवशान् कर्मभोगान् भुनक्ति ।

अर्थ—अमरसिंह कहता है कि देखा गया है—कोई परिजनों से घिरा हुआ कर्मों से आनन्दित मनुष्य अपने आपको धन्य मानता है, जो मार्ग में आकाश की ओर दृष्टि रखता हुआ घमण्ड से चलता है । किन्तु समय व्यतीत होने पर वही मनुष्य औषधों के सहारे रहकर निरन्तर कष्ट उठाता है । (इससे समझा जाता है कि) यह प्राणी अपनी करनी के अधीन कर्मों के भोग भोग रहा है ।

(२६)

ज्ञानं धृत्वा विरतिसुदृढं भुक्तभोगो मनुष्यः ,
तच्चेत्येतद् विषयनिचितेर्बद्धमूलं विकर्म ।
यो जानीते नरकसदृशं पापजन्यं हि विश्वम् ,
भव्यात्मासौ विविधविषयां भोगवृत्तिं जहाति ॥

अन्वय—एतद् विषयनिचितेः बद्धमूलं विकर्म (अस्ति) इति तत्, विरतिसुदृढं ज्ञानं च धृत्वा यः हि भुक्तभोगः मनुष्यः पापजन्यं नरक सदृशं विश्वं जानीते, असौ भव्यात्मा विविधविषयां भोगवृत्तिं जहाति ।

अर्थ—यह विषयों से बद्धमूल विकर्म है, ऐसा इसको और विरतिसुदृढ़ ज्ञान को धारण कर जो भोगी मनुष्य पापों से उत्पन्न नरक के समान संसार को जानने लगता है, तब वही भव्यात्मा विविध विषयों के भोग की वृत्ति को छोड़ देता है ।

(२७)

तस्मात्तुच्छं जगदिदमहं त्यक्तुमेवं प्रवृत्तः ,
आज्ञां दत्वा हितविलसितां तारयेतामतो माम् ।
आनन्दोऽयं भवति भवतोर्दीक्षितोऽहं भवेयम् ,
सन्तो योगं ददति परमं कर्मसिन्धुं तरीतुम् ॥

अन्वयः—तस्माद् अहम् इदम् जगत् त्यक्तुम् एवं प्रवृत्तः (अस्मि)। अतः हितविलसिताम् आज्ञां दत्वा (भवन्तौ) मां तारयेताम्। (यदि) भवतोः (पुत्रः) अहं दीक्षितः भवेयम्, (तदा) अयम् आनन्दः भवति। (यतो हि) सन्तः कर्मसिन्धुं तरीतुं परमं योगं ददति।

अर्थ—इससे मैं इस तुच्छ जगत् को परित्याग करने के लिए ही प्रवृत्त हूँ। इसलिए हितविलसित आज्ञा को देकर (आप-दोनों) मुझको तार दीजिए। (यदि) आप दोनों का (पुत्र) मैं दीक्षित होता हूँ, तो यह आनन्द ही है। (क्योंकि) सन्त कर्मों के समुद्र को तैरने के लिए बहुत योग देते हैं।

(२८)

प्रार्थ्यं श्रुत्वा विनयसहितं दुःखमाप्तौ तदा तौ ,
जिज्ञासायाः प्रणयमभितः कारणं बोधयन्तौ ।
लक्ष्मीदेवौ सदयहृदयौ भाषमाणौ भवेताम् ,
वैराग्यं ते भवतु फलदं किन्तु पश्यानुवेलम् ॥

अन्वयः—विनयसहितं प्रार्थ्यं श्रुत्वा तौ दुःखम् आप्तौ (अभवताम्) प्रणयम् अभितः जिज्ञासायाः कारणं बोधयन्तौ सदयहृदयौ लक्ष्मीदेवौ—ते वैराग्यं फलदं भवतु—भाषमाणौ भवेताम्। किन्तु (त्वम्) अनुवेलम् पश्य।

अर्थ—तब विनय सहित निवेदन को सुनकर वे दोनों दुःखी हुए। प्रेम पुरस्सर जिज्ञासा के कारण को बताते हुए दयालु कमलादेवी और देवसिंह—तेरे लिए वैराग्य फलद हो—कहने लगे। किन्तु पर्याप्त सोच ले।

(२९)

पत्नीं धर्म्यां प्रणयमनुगां त्वं परित्यज्य यासि ,
क्लेशं तस्या विरहजनितं कोऽस्ति सोढुं समर्थः ।
तस्माज्जातं विवशमपरं मानसं चास्मदीयम् ,
के ते शक्ता व्यथितमनसः कष्टमन्यस्य नंष्टुम् ॥

अन्वयः—त्वं प्रणयमनुगां धर्म्यां पत्नीं परित्यज्य यासि, किन्तु तस्याः विरहजनितं क्लेशं सोढुं कः समर्थः अस्ति । अर्थात् कोऽपि नास्ति । तस्मात् च अस्मदीयं मानसम् अपरं विवशं जातम् (अस्ति) । यतो हि अन्यस्य व्यथितमनसः कष्टं नंष्टुं शक्ताः ते के ? न केऽपि सन्तीत्यर्थः ।

अर्थ—तू प्रेमवती धार्मिक पत्नी को छोड़कर जा रहा है, (सो तो ठीक है) किन्तु उसके विरह-जनित क्लेश को सहने के लिए कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नही है । और इससे हमारा मानस अधिक विवश हो गया है । क्योंकि किसी दुःखिया के दुःख को नष्ट करने के लिए वे कौन हैं जो समर्थ हैं ? कोई भी नहीं हैं—यह इसका अर्थ है ।

(३०)

भावं धृत्वा पतिसुखयुतं भव्यदेहं दधाना ,
नामग्राहं विभवसुषमं ते गृहं प्राप्नुवन्ती ।
नित्यं पत्नी यदि तुदति सा किं न दुःखं भवेत्तत् ,
तत्ते कृत्यं समुचितमिदं कोऽपि युक्तं वदेत्किम् ॥

अन्वयः—पतिसुखयुतं भावं नामग्राहं धृत्वा विभवसुषमं गृहम् प्राप्नुवन्ती भव्यदेहं दधाना ते पत्नी यदि नित्यं तुदति, तत् किं दुःखं न भवेत् ? (अपि तु अवश्यं भवेत्) । तत् इदं युक्तं कृत्यम् कोऽपि समुचितं वदेत् ? (न कोऽपि वदेदित्यर्थः ।

अर्थ—पति के सुख से मिलित भाव को नाम ले-ले कर सोचकर सम्पत्ति है परम शोभा जिसकी, ऐसे घर पर आई हुई सुन्दरी तेरी पत्नी यदि सदा कष्ट पाती रहे, तो क्या तुझे दुःख न होगा ? (अपितु अवश्य दुःख होगा), तब इस युक्त कृत्य को कोई भी समुचित कहेगा ? (कोई भी नहीं कहेगा—यह इसका अर्थ है ।

(३१)

तस्मात्त्वं मेऽनुसर वचनं याहि माङ्गल्यमूलम् ,
सद्यो धर्म्यं गृहमतिसुखं भुङ्ग्धि भोगान् गृहस्य ।
सामर्थ्यं ते घटय सुरतं कामरूपं प्रियायाः ,
गार्हस्थ्यश्रीरमर सदनं नामशेषं विधत्ते ॥

अन्वयः—तस्मात् त्वं मे वचनम् अनुसर, सद्यः माङ्गल्यमूलमूअति-सुखं धर्म्यं गृह याहि, गृहस्य भोगान् भुङ्ग्धि, ते प्रियायाः कामरूपं सुरतं सामर्थ्यं घटय । (यतोहि) गार्हस्थ्यश्रीः अमर सदनंनामशेषं विधत्ते ।

अर्थ—उक्त कारण से तू मेरे वचन का अनुसरण कर, शीघ्र ही माङ्गल्यमूल सुख को अतिक्रान्त करने वाले धर्मयुक्त घर को जा, घर के भोगों का सेवन कर (और) तेरी प्रिया की इच्छानुसार कामक्रीडा सामर्थ्य को चरितार्थ कर (क्योंकि) गार्हस्थ्य की शोभा स्वर्ग को नाममात्र बना देती है ।

(३२)

सर्वं सत्यं यदपि भवता मे हितायैव चोक्तम् ,
नैतच्चिन्त्यं विसृज मयि तत्काममिच्छानुरूपम् ।
पत्नी देवी भवति नियतिर्जन्मजन्मान्तरस्य ,
तस्मान्मन्ये परमदयिता मह्यमाज्ञां तु दद्यात् ॥

अन्वयः—पुत्रः पितरं कथयति—भवता यदपि च मे हिताय उक्तं सर्वं सत्यम् एव (अस्ति) । (तदपि) एतद् चिन्त्यं न (अस्ति) । तत् इच्छा-नुरूपं मयि कामं विसृज । (यतो हि) पत्नी देवी जन्मजन्मान्तरस्य नियतिः भवति । तस्माद् (अहं) मन्ये, (यत्) परमदयिता (पत्नी) मह्यं तु (दीक्षायै) आज्ञां दद्यात् ।

अर्थ—पुत्र पिता को कहता है कि—आपने और जो भी मेरे हित के लिए कहा, सब ठीक ही है । (तो भी) यह चिन्ता के योग्य नहीं है । वह इच्छानुरूप मुझपर सब छोड़िये । (क्योंकि) पत्नी देवी जन्मजन्मान्तर का भाग्य है । इससे मैं मानता हूँ कि अत्यन्त दयालु पत्नी मुझे तो (दीक्षाग्रहण के लिए) आज्ञा दे सकेगी ।

(३३)

एवं विरक्तिं समवाप्य सर्वथा,
युवाऽपि संसारसुखं जिहासितुम् ।
धृतप्रयत्नोऽमरसिंह एषकः,
स्वयं गतः प्रत्यभिपत्नि सस्मितम् ॥

अन्वयः—एवं सर्वथा विरक्तिं समवाप्य युवापि संसारसुखं--जिहासितुं धृतप्रयत्नः एषकः अमरसिंहः प्रत्यभिपत्नि सस्मितं स्वयं गतः ।

अर्थ—इस प्रकार सर्वथा विरक्ति को प्राप्त कर युवक होते हुए भी संसार-सुख को छोड़ने की इच्छा के लिये प्रयत्नशील यह अमरसिंह पत्नी के सामने मुस्कराते हुए स्वयं पहुँचा ।

(३४)

यतोऽन्यदीयं समवेक्ष्य वर्णनम् ,
विभक्तुमिच्छामि कथा प्रसङ्गतः ।
ततो द्वितीयं ननु सर्गमग्रिमम् ,
वृणोमि वृत्तेन समेत शोभनम् ॥

अन्वयः—यतः अन्यदीयं वर्णनं समवेक्ष्य कथाप्रसङ्गतः विभक्तुम् इच्छामि । ततः अग्रिमम् द्वितीयं सर्गम् समेन वृत्तेन ननु शोभनं वृणोमि ।

अर्थ—यहाँ से दूसरा वर्णन देखकर कथा के प्रसंग से विभाग किया चाहता हूँ । तदनन्तर अग्रिम द्वितीय सर्ग को एक से ही वृत्त से अच्छा लगे ऐसा वर्णन कर रहा हूँ ।

(३५)

कवित्वमस्तीति न वा मयि स्वयं ,
विचारसङ्कोचमथाञ्चितोऽभवम् ।
कलङ्कमङ्कायितचारुचन्द्रकं ,
निरीक्ष्य सन्तोषरसं पिबाम्यहम् ॥

अन्वयः— मयि कवित्वं अस्ति न वा इति स्वयं विचार-सङ्कोचं अथ अञ्चितः अभवम्, कलङ्कं अङ्कायित चारुचन्द्रकं निरीक्ष्य अहं सन्तोष रसं पिबामि ।

अर्थ – मेरे में कवित्वशक्ति है अथवा नहीं, इस प्रकार के विचार से मैं स्वयं संकोच में पड़ गया हूँ, जिस प्रकार चन्द्रमा सकलङ्क होता हुआ भी सुन्दर दिखाई देता है, उसे देखकर मैं सन्तोष रस का पान करता हूँ उसी प्रकार कवित्व शक्ति के बिना जो रचना कर रहा हूँ उससे भी मुझे सन्तोष होगा ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
प्रथमः सर्गः

❀

द्वितीयः सर्गः

(१)

लब्ध्वा लक्ष्यं श्रमपरिगतं मानवो जातहर्षः ,
तद्वज्जातो भवति परमो युक्तिवीरोऽमरोऽयम् ।
पत्नीं दृष्ट्वा कथयति परं भाग्यभोग्यं सदैतत् ,
वैराग्यं मे फलति यदि तत् कारणं स्यास्त्वमेका ॥

अन्वयः—श्रमपरिगतं लक्ष्यं लब्ध्वा मानवः जातहर्षः भवति, तद्वत् परमः युक्तिवीरः अयम् अमरः जातः । (स) पत्नीम् दृष्ट्वा कथयति—सदा एतद् परं भाग्यभोग्यं (वर्त्तते) यदि मे वैराग्यं फलति, (तदा) तत्कारणं त्वम् एका स्याः । (अर्थादहं तव कारणाद् भाग्यवानस्मि ।)

अर्थ—श्रम से मिलने वाले लक्ष्य को पाकर मनुष्य प्रसन्न होता है, उसी के समान परम युक्तिवीर यह अमरसिंह प्रसन्न हो उठता है । और पत्नी को देखकर कहने लगता है कि सदा यह सब भाग्य से प्राप्तव्य है । यदि मेरा वैराग्य सफल होता है तो उसका कारण एक तू ही हो सकेगी । (अर्थात् मैं तेरे कारण से भाग्यवान् हूँ ।)

(२)

हेतुं मन्ये सदयहृदयां त्वामनूनाप्तपुण्याम् ,
धन्यामेकां सफलयति या भाग्यमत्रैवपत्युः ।
तस्या भाग्यं प्रथयति परं स्वर्गभूपोऽमरेशः, ,
तस्मात्सिद्धं भवति भुवने भारतीयं चरित्रम् ॥

अन्वयः—या अत्र एव पत्युः भाग्यं सफलयति, (ताम्) अनूनाप्तपुण्यां धन्याम् एकां त्वाम् (अहं) हेतुं मन्ये । (एतादृश्याः) तस्याः भाग्यं स्वर्गभूपः अमरेशः (अपि) परं प्रथयति । तस्मात् भुवने भारतीयं चरित्रं सिद्धं भवति ।

अर्थ—जो इस संसार में ही पति के भाग्य को सफल बना देती है, उस पूर्ण पुण्यों वाली धन्य एक तुझको मैं कारण समझता हूँ । ऐसी उस स्त्री के भाग्य की स्वर्गाधिप देवेन्द्र भी पर्याप्त प्रशंसा करता है । इसी से विश्व में भारतीय चरित्र प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित है ।

अत्रापि 'मन्दाक्रान्ता' एव । लक्षण पूर्वोक्तमेव ।

(३)

आज्ञप्तोऽहं यदि सफलतामात्मनीनां लभेय ,
साफल्यं ते भवति परमं जीवनस्याति तथ्यम् ।
आधिव्याध्योः प्रभवमपरं शान्तिमप्येति दुःखम् ।
संसारेऽन्ते मृतिसृतिगताः प्राणिनो यान्ति नित्यम् ॥

अन्वयः—यदि आज्ञप्तः (सन्) अहम् आत्मनीनां सफलतां लभेय, (इदम्) परमं तथ्यम् (अस्ति), तदा ते जीवनस्य अपि साफल्यम् भवति। (यतोहि गृहस्थः सांसारिकं कष्टमनुभवत्येव।) (अतः) अपरम् आधिव्याध्योः प्रभवं दुःखम् अपि शान्तिम् एति। (एवन्तु) अन्ते प्राणिनः संसारे नित्यं मृतिसृतिगता यान्ति

अर्थ—यदि आज्ञप्त होकर मैं अपनी सफलता प्राप्त कर सका, तो यह पूर्ण तथ्य है कि उसमें तेरे जीवन का भी साफल्य है। (क्योंकि गृहस्थ सांसारिक कष्ट उठाते ही हैं, वे नहीं उठाने पड़ेंगे।) दूसरा मानसिक और शारीरिक व्यथाओं से उत्पन्न दुःख भी शान्त हो जाता है। वैसे तो अन्त में प्राणी संसार में सदा मृत्यु के मार्ग पर चलते ही रहते हैं।

(४)

पत्युर्वश्यं भवति सुखदं जीवितं सर्वभद्रम् ,
पातिव्रत्यं श्रयति परमां भारतस्यास्य शोभाम् ।
इत्येतस्मादहमपि शुभां जीवितस्यापि मूल्यात् ,
जैनीं दीक्षां परमपदगां प्रापयेयं भवन्तम् ,

अन्वयः—पत्नी समुत्तरति यत्—पत्युः वश्यं सुखदं सर्वभद्रं जीवितं भवति। पातिव्रत्यम् अस्य भारतस्य परमाम् शोभां श्रयति इति, एतस्मात् अहम् अपि जीवितस्य मूल्यात् अपि भवन्तम् शुभां परमपदगां जैनीं दीक्षाम् प्रापयेयम्।

अर्थ—पत्नी उचित उत्तर देती है कि—पति के अधीन सुखदायक मङ्गलमय जीवन रहता है। पातिव्रत्य इस भारत की विशिष्ट शोभा है—ऐसा है। अतएव मैं भी आपको जीवन का मूल्य देकर भी पवित्र मोक्ष तक पहुँचने वाली जैनसम्बन्धिनी दीक्षा प्राप्त करा सकती हूँ।

(५)

तस्माद्धेतोरहमपि सदा भावमाश्रित्य श्रेष्ठम् ,
साहाय्यं ते शिथिलितसुखा धर्मपत्नी तवैवम् ।
दीक्षाऽऽदाने निहितदयया स्वाज्ञया स्थापयेयम् ,
पुण्ये कृत्ये विमलमतयो योगमायोजयन्ति ॥

अन्वयः– तस्मात् हेतोः शिथिलितसुखा तव धर्मपत्नी (अस्मि), अतः अहम् अपि ते दीक्षाऽऽदाने निहितदयया स्वाज्ञया एवम् साहाय्यम् स्थापयेयम् । (यतोहि) विमलमतयः (मनुष्याः) पुण्ये कृत्ये सदा योगम् आयोजयन्ति ।

अर्थ—इस हेतु से सुख की उपेक्षा करने वाली तेरी धर्मपत्नी हूँ । (अतः) मैं भी तेरे लिये दीक्षादान में दयापेक्षित अपनी आज्ञा से इस प्रकार साहाय्य स्थापित कर सकती हूँ । क्योंकि निष्पाप मनुष्य पुण्य कृत्य में सदा भाग लिया करते हैं ।

(६)

उद्युक्तोऽयं सपदि पदिको निस्सहायोऽप्यगच्छत् ।
जाताज्ञोऽसौ विनयसहितः सर्वमावेद्यमानौ ।
कारुण्याप्तौ व्यथितपितरौ जातवृत्तं विवक्तुम् ,
कोऽसौ लोके विधिविलसितं लेखमन्यं विधातुम् ॥

अन्वयः—असौ विनयसहितः जाताज्ञः (अस्ति-इति) सर्वं जातवृत्तम् निवेद्यमानौ कारुण्याप्तौ व्यथितपितरौ, विवक्तुम् अयम् निस्सहायः अपि उद्युक्तः (अमरसिंहः) पदिकः अगच्छत् । (यतोहि) लोके असौ कः (यः) विधिविलसितं लेखम् अन्यं विधातुम् (अस्ति) ? (न कोऽप्यस्तीति–अर्थः ।)

अर्थ—वह विनयी आज्ञा प्राप्त कर चुका है, ऐसा सब घटित वृत्त—निवेद्यमान दयालु दुःखी माता-पिता को, कहने के लिये अकेला ही लगन का धनी ((अमरसिंह) पैदल चल दिया । क्योंकि संसार में वह कौन है जो भाग्य के अङ्कित लेख को बदलने के लिये समर्थ हो ? (कोई भी नहीं है—ऐसा यह अर्थ है ।)

(७)

जिज्ञासूभौ गदितपितरौ हृष्यमाणौ तदास्ताम् ,
शैघ्र्यं मा गाः कुरु सुरुचिरां चित्तवृत्तिं प्रशस्ताम् ,
हृद्यं कार्यं कथमपि जनो निन्दितुं न क्षमेत ,
सत्याशस्त्वं विशदहृदयो बाल एवं ब्रुवन्तौ ॥

अन्वयः—त्वं प्रशस्तां चित्तवृत्तिं सुरुचिरां कुरु शैघ्र्यं च मा गाः, (यतः) विशदहृदयः सत्याशः बालः (असि) एवं ब्रुवन्तौ उभौ जिज्ञासू गदितपितरौ तदा हृष्यमाणौ आस्ताम् । (संसारस्यायं नियमः) - जनः हृद्यं कार्यं निन्दितुं कथम् अपि न क्षमेत ।

अर्थ—तू अपनी प्रशस्त चित्तवृत्ति अधिक प्रिय बना ले, और जल्दी मत कर, (क्योंकि) तू स्वच्छ हृदय धुन का पक्का बालक है, इस प्रकार कहते हुए दोनों जानने की इच्छावाले उक्त माता-पिता तब प्रसन्न हुए लगते थे । (संसार का यह नियम है ।) कि कोई भी मनुष्य प्रिय कार्य की निन्दा करने को कैसे भी नहीं सह सकता ।

(८)

श्रीसिंहेऽस्मिन्नटति भवनात्तावदायाति कश्चित् ,
श्रोतृव्यूहे प्रथयति बहिर्लालचन्द्रं मुनीन्द्रम् ।
व्याख्यानेन व्यथितमनसश्चित्तमत्युग्रभावम् ,
कुर्वन्तं तं च जनविमतव्याहृतं निष्प्रभावम् ॥

अन्वयः—भवनाद् बहिः अस्मिन् श्रीसिंहे अटति सति कश्चित् श्रोतृव्यूहे आयाति । (स एव) व्यथितमनसः उग्रभावं चित्तम् जनविमत-व्याहृतं च निष्प्रभावं कुर्वन्तं तं मुनीन्द्रं लालचन्द्रं प्रथयति ।

अर्थ—घर से बाहिर इस श्रीसिंह (अमरसिंह) के चलते हुए कोई श्रोताओं के झुण्ड में आ जाता है और वही किसी दु.खी के उग्रभाव वाले चित्त को और मनुष्यों के सिद्धान्तहीन कथन को निष्प्रभाव करते हुए उस मुनि श्रेष्ठ लालचन्द्र को अधिक बढ़-चढ़कर बताता है ।

(९)

आकर्ण्याऽहं गतमतिगतिर्ज्ञापयामीति सन्तम् ,
श्रुत्वोदन्तं विमलयशसो लालचन्द्रस्य साधोः ।
मुग्धो भूत्वा व्रजति च मुनेः श्रोतुमिच्छन् सभायाम्,
व्याख्यानं यः सरति सरसं प्रत्यहं सोऽमरोऽयम् ॥

अन्वयः—कश्चिदेवासौ सन्दर्भयति—सन्तम् आकर्ण्य गतमति गतिः (सन्) अहं ज्ञापयामि-इति विमलयशसः साधोः—लालचन्द्रस्य उदन्तं श्रुत्वा मुग्धश्च भूत्वा मुनेः सभायाम् सरसं व्याख्यानं श्रोतुम् इच्छन् यः प्रत्यहं सरति सः अयम् अमरः (अमरसिंहः) अस्ति ।

अर्थ—वही कोई सम्बन्ध जोड़ता है कि—ऐसे उस सन्त को सुनकर आश्चर्य स्तब्ध हो मैं यह सब बता रहा हूँ । सुप्रसिद्ध साधु लालचन्द्रजी के वृत्तान्त को सुनकर और मुग्ध होकर मुनि की सभा में सरस व्याख्यान को सुनने के लिए चाह रखता हुआ जो प्रतिदिन जाता है, वह यह अमरसिंह है ।

(१०)

कर्मारण्यं जटिल-कुटिलं भ्रान्तजीवानुबद्धम् ।
सम्यक् छेत्तुं प्रयतति मुनिस्त्रीणि रत्नानि योक्तुम् ।
सत्यं किञ्चिन्नपरमपरं तत्त्वभूतं त्रिलोक्याम् ,
सन्देष्टुं तज् जगति जयिनःस्वामिनस्ते भ्रमन्ति ॥

अन्वयः—अधिसभं मुनिरसौ भाषते—मुनिः भ्रान्तजीवानुबद्धं जटिल-कुटिलं कर्मारण्यं सम्यक् छेत्तुं त्रीणि रत्नानि योक्तुंप्रयतति । त्रिलोक्याम् परं तत्त्वभूतम् अपरं किञ्चित् सत्यं न (अस्ति) ! जगति ते जयिनः स्वामिनः तद् सन्देष्टुम् भ्रमन्ति ।

अर्थ—वही मुनि सभा में भाषण देता है कि—मुनि भ्रान्त जीवों से अनुबद्ध सघन कर्मों के जंगल को अच्छी तरह से काटने के लिए तीन रत्नों को जोड़ने की भरसक कोशिश करता है । त्रिलोकी में सबसे बड़े तत्त्व के सदृश दूसरा कोई सत्य नहीं है । संसार में वे जितेन्द्रिय मुनिजन इस बात को बताने के लिए सदा घूमते रहते हैं ।

(११)

श्रावं श्रावं विशदविषयं तत्त्वमेतद् विशिष्टम् ,
तस्य श्रद्धा प्रभवति परा त्यागमूलप्रवृत्तौ ।
त्यक्तुं सर्वं विभवनिचयं कर्मजन्य प्रमादम् ,
मत्त्वां ज्ञानं प्रतिपदमयं सङ्ग्रहीतुं प्रवृत्तः ॥

अन्वयः—विशदविषयम् एतद् विशिष्टं तत्त्वं श्रावं श्रावं त्यागमूल-प्रवृत्तौ तस्य परा श्रद्धा प्रभवति । (अत एव) अयम् (अमरसिंहः) सर्वं विभव-निचयम् कर्मजन्यप्रमादं मत्वा त्यक्तुम्, ज्ञानं (च) प्रतिपदम् सङ्ग्रहीतुम् प्रवृत्तः (अस्ति) ।

अर्थ— स्पष्ट है, विषय जिसके ऐसे उस विशिष्ट तत्त्व को सुन-सुन कर उसकी त्यागमूल की प्रवृत्ति में प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो उठती है । (अत एव) यह (अमरसिंह) सम्पूर्ण विभवों के समूह को कर्मों से उत्पन्न प्रमाद मानकर, त्यागने के लिए (और) तत्त्व को स्थान-स्थान पर संग्रहीत करने के लिए प्रवृत्त हुआ है ।

(१२)

वैराग्येण त्यजति गृहिणीं रूपभूयिष्ठमृद्वीम् ,
कामाधानां परमचतुरा सर्वहेतुप्रतिष्ठाम् ।
तस्या अन्यत् किमतिशयितं वस्तुतत्त्वं भवेत्तत् ,
वैराग्यात्मा गणयति जगत् छद्म-सद्म-प्रवृद्धम् ॥

अन्वयः—अयम् वैराग्येण कामाधानां रूपभूयिष्ठमृद्वीं सर्वहेतुप्रतिष्ठां परमचतुरां गृहिणीं त्यजति । (अस्मिन् जगति) तस्याः अन्यत् अतिशयितं तत् वस्तुतत्त्वं किम् भवेत् ? (न भवेदन्यदित्यर्थः) । (किन्तु पुनरपि) वैरा-ग्यात्मा (मनुष्यः) जगत् छद्म-सद्म-प्रदीपम् गणयति ।

अर्थ—यह वैराग्य के हेतु से काम की भूमि अतिशय रूपवती कोमला सब हेतुओं की प्रतिष्ठा परमचतुरा पत्नी को त्याग रहा है । (इस संसार में) इससे दूसरा अतिशयित वह वस्तुतत्त्व कौन हो सकेगा ? (जो इससे बढ़-चढ़ कर हो—अर्थात् इससे अन्य नहीं हो सकता) । किन्तु विरक्त जगत् को छल के घर का प्रदीप गिनता है ।

(१३)

दुःखी वर्त्ते जगति मनसो धर्म इत्येव वाहम् ,
कोऽसौ धर्मः सृजति सततं मङ्गलं पुण्यमूलम् ।
आत्मा कोऽयं स्वयमहमहो कोऽस्मि कस्याहमस्मि ,
शङ्काग्रस्तः स्वमनसि ततं प्रश्नवृन्दस्य सूते ॥

अन्वयः—'जगति अहं दुःखी वर्ते' इति मनसः धर्मः एव वा (अन्यः कोऽपि) ? असौ धर्मकः ? यः सततं पुण्यमूलं मङ्गलं सृजति । अयम् आत्मा कः ? अहो अहं स्वयं कः अस्मि ? कस्य अहम् अस्मि ? (एवम्) शङ्काग्रस्तः (अमरसिंहः) स्वमनसि प्रश्नवृन्दस्य ततं सूते ।

अर्थ—'संसार में मैं दुःखी हूँ' ऐसा यह मन का धर्म है अथवा (कोई दूसरा है) ? वह धर्म कौन है ? (जो) सततं पुण्यमूल मङ्गल को रचता है ? यह आत्मा कौन है ? अहो मैं स्वयं कौन हूँ ? किसका मैं हूँ ? (इस प्रकार) शङ्कित अमरसिंह अपने मन में प्रश्नवृन्द के समूह को उत्पन्न करता है ।

(२४)

प्रश्नानेतान् जटिल कुटिलान् शङ्कमानोऽमरोऽयम् ,
तान् सन्धातुं हितमतिधरान् सज्जनान् याति प्रष्टुम् ।
ते शङ्कन्ते मनसि बहुशस्तं जनं क्षिप्तबुद्धिम् ,
जानन्तोऽमुं कथमपि शुभं शान्तमूर्त्तिं हसन्ति ॥

अन्वयः—जटिल कुटिलान् एतान् प्रश्नान् शङ्कमानः अयम् अमरः (अमरसिंहः) (यदा) तान् सन्धातुं हितमतिधरान् सज्जनान् प्रष्टुं याति, (तदा) बहुशः ते मनसि तं क्षिप्तबुद्धिम् जनं शङ्कन्ते, (पुनरपि) अमुम् शुभं शान्त-मूर्त्तिं जानन्तः कथमपि हसन्ति ।

अर्थ—उलझे हुए इन प्रश्नों पर शङ्का करता हुआ यह अमरसिंह (जब) उन पर समाधान प्राप्त करने के लिए हितैषी सज्जनों से पूछता है, (तब) बहुत से तो वे अपने मन में उस को क्षिप्तबुद्धि मनुष्य सोचने लगते हैं, (फिर भी) इसको शुभ शान्त जानते हुए कुछ-कुछ हँसते हैं ।

(१५)

दृष्टप्रायो विषय इति मे यो ह्यबुद्धः स्वयन्तु ,
अन्यान् बुद्धान् हसति सुतरां तानबुद्धान् विधातुम् ।
कुर्वन्नेवं यदपि यतते किन्तु सत्यं तु सत्यम् ,
कृत्ये ज्ञाते पुनरयमहो हस्यते बुद्धिमद्भिः ॥

अन्वयः—इति अयम् विषयः मे दृष्टप्रायः (अस्ति), हि यः स्वयं तु अबुद्धः (अस्ति), किन्तु अन्यान् बुद्धान्, तान् अबुद्धान् विधातुम् सुतरां हसति एवम् कुर्वन् (स) यदपि यतते, किन्तु सत्यं तु सत्यम् (भवति)। (अतः) कृत्ये ज्ञाते (यथा मूर्खः सन् बुद्धान् जनान् हसति कियानयं मूर्खः इति) पुनः बुद्धिमद्भिः (जनैः) अहो अयं (मूर्खः) हस्यते।

अर्थ—ऐसा यह विषय मेरा देखा हुआ है कि—जो स्वयं तो मूर्ख है, किन्तु अन्य समझदारों, को, बुद्धू बनाने के लिए (वह) काफी हँसी उड़ाता है। ऐसा करता हुआ जो भी कुछ प्रयत्न करता है सो करता ही है, किन्तु सत्य, सत्य ही होता है। इसलिए करतूत के जान लेने पर बुद्धिमानों के द्वारा 'अरे यह है' 'वह मूर्ख' ऐसी हँसी की जाती है।

(१५)

हित्वा शङ्काः शतमपरतः शोशुचानोऽमरोऽसौ ,
त्यक्त्वा लोकान् गमयति दिनं क्वापि संस्थायवासे।
स्वीयं चेतः स्थिरयति ततो निश्चयं नेतुमन्ते ,
धीरो जन्युर्दृढयति मनस्तत्वमेकं वरीतुम् ॥

अन्वयः—अपरतः शङ्काः शतं हित्वा शोशुचानः अमरः—(अमरसिंहः) अन्ते क्व अपि वासे संस्थाय लोकान् त्यक्त्वा निश्चयं नेतु दिनं गमयति। ततः असौ स्वीयं चेतः स्थिरयति। (यतो हि) धीरः जन्युः एकं तत्त्वं वरीतुं मनः दृढयति।

अर्थ—एक ओर से सैकड़ों शङ्काओं को छोड़ बार-बार विचारता हुआ अमरसिंह, अन्त में किसी भी स्थान पर बैठ कर लोगों से दूर हो, निश्चय प्राप्त करने के लिए दिन बिताने लगता है। तदनन्तर वह अपने हृदय को स्थिर कर लेता है। क्योंकि धैर्यवान प्राणी किसी एक तत्त्व को स्वीकार करने के लिए मन को दृढ़ कर लेता है।

(१७)

तस्मादन्ते विमलहृदयो मुख्यमूलं विरक्तेः ,
निश्चित्यैवं प्रथयति पुरो ब्रह्मचर्यव्रतं सः ।
रक्षित्त्वैनं परमपददं जीवनं यापयेयम् ,
प्रत्याख्यातुं गृहसुखमयं याति साधोः समीपम् ॥

अन्वयः– तस्मात् अन्ते विमलहृदयः स विरक्तेः मुख्यमूलं ब्रह्मचर्य-व्रतम् एवं निश्चित्य प्रथयति । (अहं) पुरः परमपददम् एनं रक्षित्वा जीवनं यापयेयम् । (अतः) अयम् (अमरसिंहः) गृहसुखं प्रत्याख्यातुं साधोः समीपं याति ।

अर्थ उसके बाद पवित्रान्तःकरण वह (अमरसिंह) विरक्ति का प्रमुखतत्त्व ब्रह्मचर्य व्रत को ही निश्चय कर घोषित करता है कि मैं सर्वप्रथम परमपद दिलाने वाले इस ब्रह्मचर्य व्रत को रखकर जीवन व्यतीत करूँगा । इसलिये अब यह (अमरसिंह गृहसुख के प्रत्याख्यान के लिये मुनि (श्री लालचन्द्र जी) के पास पहुँचता है ।

(१८)

जाता वंश्या मथितहृदया ब्रह्मचर्यव्रतेन ,
तत्सम्बद्धाः सरसमतयश्चास्य दृप्ता अभूवन् ।
मित्राण्यासन् गदितुमनसः किंब्रुवा एव तस्य,
जाते कार्ये हितपरवशा एवमेवं वदन्ति ॥

अन्वयः– ब्रह्मचर्यव्रतेन वंश्याः मथितहृदया जाताः । अस्य च तत्सम्बद्धा सरसमतयः दृप्ताः अभूवन् । तस्य मित्राणि गदितुमनसः किंब्रुवाः आसन् । (यतोहि) कार्ये जाते हित परवशाः एवम्-एवम् वदन्ति ।

अर्थ—ब्रह्मचर्य व्रत के कारण वंश के व्यक्ति-व्यक्ति दुःखी हो उठे । और इस (अमरसिंह) के सम्बन्धी प्रेमी क्रुद्ध हुये । उसके सभी मित्र कहने-करने वाले कुछ का कुछ कहने लगे । क्योंकि कार्य हो जाने पर हितैषी लोग ऐसा हुआ—वैसा हुआ बहुधा कहते ही हैं ।

(१९)

वृत्तं श्रोतुं सहजमतयः संगिरन्तेऽनुवृत्तम्
चित्रं चित्रं किमिति किमिति व्याहरन्त्येव नार्य्यः ।
किन्त्द्वृत्तं प्रतिविपणिगं केऽपि मिथ्या वदन्ति
संसारेऽस्मिन् विविधरुचयो मानुषा उद्भवन्ति ॥

अन्वयः—सहजमतयः वृत्तं श्रोतुम् अनुवृत्तं संगिरन्ते । नार्यः चित्रं चित्रं किमिति किमिति एव व्याहरन्ति । किन्तु केऽपि प्रति विपणिगं उद्वृत्तं मिथ्या वदन्ति । (यतोहि) अस्मिन् संसारे विविधरुचयः मानुषाः उद्भवन्ति ।

अर्थ—सामान्य बुद्धिवाले मनुष्य बात को सुनने के लिये अनुवृत्त को बताने लगते हैं । स्त्रियाँ आश्चर्य है, आश्चर्य है, क्या हुआ, क्या हुआ परस्पर में कह उठती हैं । किन्तु कुछ तो ऐसे हैं कि प्रत्येक बाजार की गली में पहुँची हुई इस खबर को ही झूठी बताते हैं । क्योंकि इस संसार में अनेक रुचि वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

(२०)

अन्ह्येकस्मिन् पुनरधिसभं कोऽपि योगी समेयात्
दृष्ट्वा लोकान् कथयति मया दिव्यदेहोऽमरोऽयम् ।
दृष्टो लोके रचयति परां भव्यदृष्टिं स्वकीयाम्
यो मन्येऽहं जगदतितरां प्राप्तमोक्षं विदध्यात् ॥

अन्वयः—पुनः एकस्मिन् अह्नि कः अपि योगी अधिसभम् समेयात् । (सः) लोकान् दृष्ट्वा कथयति (यत्)—मया अयं अमरः (अमरसिंहः) दिव्यदेहः दृष्टः (अस्ति), यः लोके स्वकीयां परां भव्यदृष्टिं रचयति । (अतः) अहं मन्ये (यत्) (अयम्) अतितरां प्राप्तमोक्षं जगत् विदध्यात् ।

अर्थ—फिर एक दिन कोई एक योगी सभा में आ पहुँचा, वह जनता को देखकर कहने लगा कि मैंने यह अमरसिंह दिव्यदेह देखा है, जो जगत् में अपनी विशिष्ट भव्यदृष्टि बना रहा है । अतः मैं समझता हूँ कि यह पूर्णरूपेण प्राप्त कर लिया है मोक्ष जिसने ऐसे इस संसार को बना देगा ।

(२१)

आकर्ण्यैतत्कथनमपरं योगिनस्तप्तचित्ताः ,
सभ्याः सर्वे स्मितनतमुखाआत्मकृत्यं स्मरन्ति ।
किञ्चा स्माभिः कृतमिति ततो लज्जया ते व्यथन्ते ,
ज्ञात्वानर्थं स्वरचितमदः सज्जना उत्तपन्ते ॥

अन्वयः—योगिनः एतद् अपरं कथनम् आकर्ण्य सर्वे तप्तचित्ताः स्मितनतमुखाः सभ्याः आत्मकृत्यं स्मरन्ति । किम् च अस्माभिः कृतम् इति ततः ते लज्जया व्यथन्ते । (यतोहि) अदः स्वरचितम् अनर्थं ज्ञात्वा सज्जना उत्तपन्ते ।

अर्थ—योगी के इस अन्य कथन को सुनकर सन्तप्तचित्त मुस्कराते मुँह झुकाये हुए सभ्य अपनी करतूत याद करने लगे । और हमने यह क्या किया ? इससे मारे लज्जा के वे दुःखी हो उठे । क्योंकि यह अपना किया हुआ अनर्थ है, ऐसा जानकर सज्जन तिलमिला जाते हैं ।

(२२)

वृत्तो वर्णी भुवनविजयावासकीर्त्तेः प्रशास्तुः ,
स प्रज्ञप्तं विहितसरणेर्मूलधर्मं ग्रहीतुम् ।
सत्यासक्ति प्रमथितगुणप्राप्तचारित्रहेतुम् ,
संसाराब्धि प्रभवभुवन[1]-ग्रन्थिमुक्तैर्नु[2] सेतुम् ॥

अन्वयः—सः वर्णी विहितसरणेः भुवनविजयावाप्तकीर्त्तेः प्रशास्तुः प्रज्ञप्तं सत्यासक्ति प्रमथितगुणप्राप्तचारित्रहेतुम् नु संसाराब्धिप्रभवभुवन-ग्रन्थिमुक्तेः सेतुं मूलधर्मं ग्रहीतुं वृत्तः ।

अर्थ—वह ब्रह्मचारी (अमरसिंह) मार्ग बनाने वाले संसार के विजय से कीर्त्ति प्राप्त करने वाले श्रमण भगवान् वर्धमान के प्रज्ञप्त, सत्य की आसक्ति से मथे हुए गुणों से प्राप्त चारित्र हेतु वाले वास्तविक धर्म को अथवा संसार समुद्र की जल-ग्रन्थि अर्थात् भँवर से छूटने के पुल वास्तविक धर्म को ग्रहण करने के लिये तत्पर हुआ ।

१—भुवनम्=जलम् । २—नु विकल्पेऽव्ययम्।

(२३)

शिक्षाः पञ्चः स्वयमतितरां पालनीया भवन्ति ,
हेतोस्तस्मादयमनुदिनं पालने संनिमग्नः ।
शिक्षास्त्वेताः परमविकटाः सङ्कटादुद्धरन्ति ,
काठिन्यात्ता अतिविकटतां धारयन्त्येवमुक्तम् ॥

अन्वयः—पञ्च शिक्षाः स्वयम् अतितरां पालनीयाः भवन्ति । तस्माद् हेतोः अयम् (तासां शिक्षाणां) पालने संनिमग्नः (अस्ति) किन्तु एताः परमविकटाः (सत्यः अपि) शिक्षाः (पालयितारं) सङ्कटात् उद्धरन्ति । (पालनस्य) काठिन्यात् ताः (शिक्षाः) अतिविकटताम् धारयन्ति, (अतः) एवम् उक्तम् (अस्ति) ।

अर्थ—पाँच शिक्षाएँ स्वयं सर्वाधिक पालनीय होती हैं । इस हेतु से यह (अमरसिंह) उन शिक्षाओं के रक्षण में संनिमग्न है । किन्तु ये परमविकट होती हुई भी शिक्षाएँ पालन करने वाले को सङ्कट से बचाती हैं । (इन शिक्षाओं के) पालन की कठिनता को देखकर वे शिक्षाएँ अतिविकटता को धारण कर रही हैं—अतः ऐसा कहा गया है ।

(२४)

दीक्षाऽऽदानात् प्रभवति जनो दीक्षितं स्वं प्रवक्तुम् ,
दीक्षा सेयं धरति हृदये पञ्चशिक्षीं स्वतो याम् ।
शिक्षाश्चैताः प्रथयति मुनिः पञ्च रत्नानि वृत्तौ ,
तस्मादासां प्रभवति परं नामधन्यं महत्त्वम् ॥

अन्वयः—दीक्षाऽऽदानात् जनः स्वं दीक्षितं प्रवक्तुं प्रभवति । इयं सा दीक्षा (अस्ति), (जनः) स्वतः यां पञ्चशिक्षीं हृदयेधरति । वृत्तौ च मुनिः एताः शिक्षाः पञ्च रत्नानि प्रथयति । तस्मात् आसां (शिक्षाणां) नामधन्यं परं महत्त्वम् (अस्ति) ।

अर्थ—दीक्षा के आदान अर्थात् ग्रहण से व्यक्ति अपने को दीक्षित कहने के लिये अधिकृत होता है । यह वह दीक्षा है, जब व्यक्ति अपने आप जिन समाहृत पाँच महाव्रतों को हृदय में रख लेता है । और व्यवहार में मुनि, इन महाव्रतों को ही पाँच रत्न बतलाता है । इससे इन शिक्षाओं का नामधन्य अधिक महत्त्व है ।

(२५)

सर्वे जीवाः किमपि सततं कर्म कर्त्तुं प्रवृत्ताः ,
भोगं भुक्त्वा स्वकृतिनिरताः कालमेवं वहन्ति ।
प्रीणन्त्येते सरसमपरं स्वक्रियाभिर्मनुष्यान् ,
हिंसन्त्येतानुदरमवितुं सन्त्यवश्यं कृतघ्नाः ॥

अन्वयः—सर्वे जीवाः सततं किमपि कर्म कर्त्तुं प्रवृत्ताः (सन्ति), स्वकृतिनिरताः (ते) भोगं भुक्त्वा एवम् कालं वहन्ति । अपरम् एते स्वक्रियाभिः मनुष्यान् सरसं प्रीणन्ति । किन्तु (ते मनुष्याः) एतान् (जीवान्) उदरम् अवितुं हिंसन्ति । (अतः ते) अवश्यं कृतघ्नाः सन्ति ।

अर्थ—सब जीवधारी निरन्तर किसी न किसी कर्म के करने के लिये तत्पर हैं । अपने कर्त्तव्य में लगे हुए वे जीवधारी खा-पीकर इस प्रकार समय को गुजार देते हैं । (किन्तु किसी को कष्ट नहीं देते) इसके अतिरिक्त वे जीवधारी अपनी क्रियाओं से मनुष्यों को खूब प्रसन्न रखते हैं । किन्तु वे मनुष्य इन जीवधारियों को उदर भरने के लिये मारते हैं । इसलिये वे अवश्य कृतघ्न हैं ।

(२६)

मर्त्त्या मृत्युं जनिमुपगताः क्लेशशेषं सहन्ते ,
नेच्छन्त्येते विषयविरतिं लेशतश्चाधिकर्त्तुम् ।
अस्त्येतत्तत् किमु समुचितं हिंसनं जीवराशेः ,
तस्मादेषा परमजननी साधनीया ह्यहिंसा ॥

अन्वयः—जनिम् उपगताः मर्त्त्याः क्लेशशेषं मृत्युं सहन्ते । एते च (मर्त्त्याः) लेशतः विषयविरतिम् अधिकर्त्तुं न इच्छन्ति । तत् जीवराशेः हिंसनं किमु एतत् समुचितम् अस्ति ? अर्थात् समुचितं नास्ति । तस्मात् हि एषा परमजननी अहिंसा (सर्वथा) साधनीया (अस्ति) ।

अर्थ—जन्म प्राप्त किये हुऐ मनुष्य कष्टमात्र मृत्यु को सहते हैं । और ये मनुष्य थोड़े समय के लिये विषयों के विराम को अधिकृत करने के लिये चाह नहीं रखते । तब फिर जीवधारियों का मारना क्या यह समुचित है ? अर्थात् समुचित नहीं है । अतएव निश्चयपूर्वक यह परममाता अहिंसा सब प्रकार से साधनी चाहिये ।

(२७)

सत्यं नित्यं समुचितमतः सर्वथा रक्षणीयम् ,
प्राणैरेभिः किमिति यदितत् सत्यमेतद् विनष्टम् ।
तस्मात् प्राणी कठिनसमयेऽप्येनदेवं विहातुम् ;
शक्तो नायं त्यजति च पुनः प्राणतुल्यं स्वराज्यम् ॥

अन्वयः—सत्यं नित्यं समुचितम् (अस्ति,) अतः (सत्यम्) सर्वथा रक्षणीयम् (आस्ते)। यदि एतत् सत्यं विनष्टम्, तत् एभिः प्राणैः किम् इति तस्मात् प्राणी (सत्यनिष्ठः) सन् कठिनसमये अपि एनत् (सत्यम्) एवं विहातुं शक्तः न (भवति), अयं च पुनः प्राणतुल्यं स्वराज्यं त्यजति। (अतः सत्यमावश्यकमस्ति, ततो रक्षणीयम्)।

अर्थ—सत्य सदा समुचित है, अतः सत्य सर्वथा रक्षा के योग्य है। यदि यह सत्य नष्ट हो गया, तब फिर इन प्राणों से क्या अर्थ सिद्ध होगा, ऐसा मानना चाहिए। अतएव प्राणी सत्यनिष्ठ होकर कठिन समय में भी इस सत्य को इस प्रकार छोड़ने के लिए समर्थ नहीं होता। और यह फिर प्राणतुल्य अपने राज्य को छोड़ बैठता है। इसलिए सत्य आवश्यक है, इस कारण से रक्षा के योग्य है।

(२८)

सत्यासक्तः स्थितिमनुसरन् सत्यसंरक्षणाय ,
सर्वं कष्टं तदनुभवति स्वस्य कर्त्तव्यपक्षात् ।
किन्तु प्राणानपि पणयितुं सत्यभक्तौ स्थितोऽसौ ,
सर्वं सोढुं प्रभवति पुनर्नैव सत्यं जहाति ॥

अन्वयः—कर्त्तव्यपक्षात् सत्यसंरक्षणाय स्वस्य स्थितिम् अनुसरन् सत्यासक्तः (जनः) सर्वं कष्टम् अनुभवति। तत् सत्यभक्तौ प्राणान् पणयितुं स्थितः सन् असौ सर्वं सोढुं प्रभवति, किन्तु पुनः अपि सत्यं न एव जहाति।

अर्थ—कर्त्तव्य पक्ष को लेकर सत्य के संरक्षण के लिए अपनी स्थिति का अनुसरण करता हुआ सत्यानुरागी पुरुष सब कष्ट भोगता है। अतः सत्य की सेवा में प्राणों का सौदा करने के लिए खड़ा होकर वह सब सहने को तत्पर होता है, किन्तु सत्यवान् सत्य को नहीं छोड़ता।

(२९)

आज्ञां नीत्वा किमपि निहितं वस्तु यो निग्रहीतुम् ,
स्वीयां वृत्तिं कपटरहितां लाभलोभांशशून्याम् ।
स्वान्ते कृत्वाऽऽचरति सजनोऽस्तेयचित्तः प्रशस्तः ,
ह्यस्तेयात्मा विहरति सदा निर्भयो निर्विशङ्कः ॥

अन्वयः—यः स्वान्ते कपटरहितां लाभलोभांशशून्यां स्वीयां वृत्तिं कृत्वा निहितं किम् अपि वस्तु आज्ञां नीत्वा निग्रहीतुम् आचरति सः प्रशस्तः अस्तेयचित्तः जनः (अस्ति)। यतो हि अस्तेयात्मा निर्भयः निर्विशङ्कः विहरति।

अर्थ—जो, हृदय में निष्कपट लाभ और लोभ के प्रभाव से रहित अपने व्यवहार को बनाकर, रखे हुए किसी भी पदार्थ को आज्ञा लेकर, काबू पाने का आचरण करता है, वह प्रशस्त अस्तेयचित्त मनुष्य होता है। क्योंकि अस्तेयात्मा पुरुष सदा निर्भीक एवं निश्शङ्क घूमता है।

(३०)

तेऽपि स्तेना भवितुमिह ये शक्नुवन्त्येव लोके ,
वित्तं लब्ध्वा विदधति निधौ सङ्ग्रहायैव यत्नम् ।
किन्तूत्पत्तौ सकलविभवस्यास्य योगोऽस्ति येषाम् ,
एवं तेभ्यो ददति न जना वित्तमन्ते कदाचित् ॥

अन्वयः—इह लोके ये वित्तं लब्ध्वा निधौ एव सङ्ग्रहाय यत्नं विदधति, किन्तु अस्य सकलविभवस्य उत्पत्तौ येषां (जनानां) योगः अस्ति, तेभ्यः (जनेभ्यः) अन्ते वित्तं न ददति, एवं कदाचित् ते अपि जनाः स्तेनाः भवितुं शक्नुवन्ति।

अर्थ—इस संसार में जो धन प्राप्तकर कोष में ही जमा करने के लिए यत्न करते रहते हैं, किन्तु इस समस्त धन की उत्पत्ति में जिन मनुष्यों का योग है, उन मनुष्यों को अन्त में धन नहीं देते, ऐसे कदाचित् वे भी मनुष्य चोर हो सकते हैं।

(३१)

अस्तेयं यत् स्वयमधिगतं द्रव्यमन्यस्य हेतोः ,
दातारो ये हितमिति भवेदस्यकिञ्चित् कथञ्चित् ।
ते सर्वेऽमी सदयहृदयाः सन्ति पुण्यप्रभावाः ,
धन्यात्मानो जगति जयिनो दानिनोऽस्तेयचित्ताः ॥

अन्वयः—'अस्य अन्यस्य कथञ्चित् किञ्चित् हितं भवेत् इति हेतोः ये दातारः यत् स्वयम् अधिगतम् अस्तेयं द्रव्यं ससुखं ददति, अमी सर्वे ते पुण्यप्रभावाः धन्यात्मानः अस्तेयचित्ताः जयिनः दानिनः सन्तिः ।

अर्थ—'इस दूसरे का किसी प्रकार कुछ भला हो' इस हेतु से जो दाता जिस स्वयं प्राप्त अस्तेय द्रव्य को सुविधानुसार देते हैं, ये सभी वे पुण्यवान् धन्य अस्तेय चित्त यशस्वी हैं, जो दानी कहे जा सकते हैं ।

(३२)

रूपोत्कृष्टां श्लथितवसनां कामिनीं कामदग्धाम् ,
सम्यक् दृष्ट्वा चलति न मनश्चञ्चलं यस्य धीरम् ।
अत्यासक्तामपि सुवदनामुत्तरं यो न दद्यात् ,
छायां तस्याः स्पृशति न करो यस्य स ब्रह्मचारी ॥

अन्वयः—रूपोत्कृष्टां श्लथितवसनां कामदग्धां कामिनीं सम्यक् दृष्ट्वा यस्य चञ्चलं मनः धीरं सत् न चलति, यः अत्यासक्ताम् सुवदनाम् अपि उत्तरं न दद्यात्, यस्य करः तस्याः (कामिन्याः) छाया न स्पृशति, स ब्रह्मचारी (भवति) ।

अर्थ—रूप से उत्कृष्ट खिसले हुए वस्त्रों वाली कामार्ता कामिनी को भली प्रकार से देखकर जिसका चञ्चल मन धीर होकर विचलित नहीं होता, जो अत्यासक्त सुवदना कामिनी को उत्तर तक नहीं देता, जिसका हाथ उस कामिनी की छाया तक को नहीं छूता, वह ब्रह्मचारी होता है ।

(३३)

ब्रह्माश्चर्यं जगति तनुते ब्रह्मचर्यं प्रशस्तम्
यस्योत्कर्षं भुवनविदितं कोऽपि वक्तुं न शक्तः ।
रम्यं रूपं स्पृशति तृणकं लज्जमानं परन्तु
स्वस्यास्तित्वं कथमपि धरन् नृत्यतीदं तदग्रे ॥

अन्वयः—जगति प्रशस्तं ब्रह्मचर्यं ब्रह्माश्चर्यं तनुते। यस्य (ब्रह्मचर्यस्य) भुवनविदितम् उत्कर्षं कः अपि वक्तुं शक्तः न (अस्ति)। रम्यं रूपं (कर्तृ) लज्जमानं सत् तृणकं स्पृशति, परन्तु इदं (रम्यं रूपं) स्वस्य अस्तित्वं कथमपि धरत् तदग्रे नृत्यति, अर्थात् ब्रह्मचर्यं सर्वातिशायि वर्त्तते।

अर्थ—संसार में प्रशस्त ब्रह्मचर्य ने महान् आश्चर्य फैला रखा है। जिस ब्रह्मचर्य के विश्वविख्यात वैशिष्ट्य को कोई भी कहने के लिए समर्थ नहीं हो सका है। यहाँ तक कि यह रमणीय रूप भी लज्जित होकर तिनके तोड़ने लगता है, किन्तु यह अपने अस्तित्व को किसी प्रकार रखकर उस ब्रह्मचर्य के सामने में नाचता रहता है, अर्थात् यह ब्रह्मचर्य जगदुत्तर है।

(३४)

इच्छाबद्धो विकृतहृदयश्चिन्तया पीडितोऽयम्
श्रेष्ठं वस्तु प्रभवति सदा स्वात्मने निग्रहीतुम् ।
सर्वस्वं मे भवतु निखिलं सर्वथैवं विचिन्वन्
स्वार्थी जीवो ग्रहणनिरतो जायते दुःखदग्धः ॥

अन्वयः—अयं विकृतहृदयः (मनुष्यः) इच्छाबद्धः चिन्तया पीडितः सन् सदा स्वात्मने श्रेष्ठं वस्तु निग्रहीतुं प्रभवति। सर्वथा विचिन्वन् 'निखिलं सर्वस्वं मे भवतु' एवम् इच्छति। (यतो हि) ग्रहणनिरतः स्वार्थी जीवः दुःखदग्धः जायते।

अर्थ—यह विकृत हृदय वाला मनुष्य इच्छाओं से घिरा हुआ चिन्ता से पीड़ित होकर सदा अपने लिए श्रेष्ठ वस्तु को पाने के लिए प्रभाव डालता है। सब प्रकार से संग्रह करता हुआ 'सम्पूर्ण सर्वस्व मेरा हो' ऐसा चाहता है। क्योंकि आपाधापी में संलग्न स्वार्थी प्राणी बेचैन बन जाता है।

(३५)

पारिग्रह्या[1] ग्रहणविषया दुःखमूला प्रवृत्तिः ,
त्यक्तव्येयं विशदहृदयैः सर्वथा दुष्प्रवृत्तिः ।
अस्यास्त्यागाद् भवति च पुन र्मोक्षमार्गाधिकारी,
तस्मादन्ते जयति जगतीं जागरूकोजनोऽसौ ।

अन्वयः—ग्रहणविषया दुःखमूला प्रवृत्तिः पारिग्रह्या (अस्ति) विशद-हृदयैः (साधकैः) इयं दुष्प्रवृत्तिः सर्वथा त्यक्तव्या (वर्त्तते)। अस्याश्च (दुष्प्रवृत्तेः) त्यागात् पुनः (साधकः) मोक्षमार्गाधिकारी भवति। तस्मात् मोक्षमार्गाधिकारात् अन्ते असौ (साधकः) जनः जागरूकः सन् जगतीं जयति।

अर्थ—ग्रहणविषयवाली दुःखमूल की प्रवृत्ति पारिग्रह्या है। स्वच्छान्तःकरण साधकों के द्वारा यह दुष्प्रवृत्ति सर्वथा छोड़ने के योग्य है। और इस दुष्प्रवृत्ति के परित्याग से फिर साधक मोक्ष के मार्ग का अधिकारी बनता है। उस मोक्ष के मार्ग के अधिकार के बाद वह साधक पुरुष निरन्तर जगकर संसार को जीतता है।

(३६)

एताः शिक्षाः कृतपरिचयाः स्वात्मनैवाधिगत्य ,
सश्रद्धोऽयं भ्रमति परितो निर्भ्रमः सन्नुदस्तः ।
स्वीयान् भावान् हृदयनिहितान् बोधयन्नात्मनीनान्,
क्षन्तुं लोकान् नमति निपुणं वा क्षमां चाधिगन्तुम् ॥

अन्वयः—स्वात्मना एव एताः कृतपरिचयाः शिक्षा अधिगत्य अयं सश्रद्धः निर्भ्रमः च उदस्तः सन् परितः भ्रमति। स्वीयान् हृदयनिहितान् भावान् आत्मनीनान् बोधयन् लोकान् क्षन्तुं वा क्षमाम् अधिगन्तुम् निपुणं नमति।

अर्थ—अपने आप ही इन पूर्वपरिचित शिक्षाओं को अधिगत कर यह श्रद्धालु और सावहित उदासीन होकर उधर-इधर घूमता-फिरता है। और अपने हृदयस्थ विचारों को अपने ही हितेच्छुओं को समझाता हुआ (अमरसिंह) मनुष्यों को क्षमा करने के लिये अथवा उनसे क्षमा प्राप्त करने के लिये कुशलतापूर्वक नमस्कार करता है।

---

१. परिग्रह एव पारिग्रह्यम्, स्वार्थेष्यत्र। ततो मत्वर्थीयः 'अर्शआद्यच्' इत्यच् प्रवृत्तेर्विशेषणत्वेन स्त्रीत्वम्।

(३७)

भावापन्नं प्रभवति ततः प्रेमसम्पृक्तचित्तम् ।
लोकं दृष्ट्वा मधुरवचनैश्चापि संक्षिप्तवृत्तैः ।
शान्तं कर्त्तुं प्रतिदिनमयं धर्मबालोष्णरश्मिः ,
पुण्यश्लोकः सरसवचसा तर्पयत्येव जन्यून् ॥

अन्वयः– ततः अयं धर्मबालोष्णरश्मिः (अमरसिंहः) प्रेम-सम्पृक्तचित्तं भावापन्नं लोकं दृष्ट्वा मधुरवचनैः च संक्षिप्तवृत्तैः शान्तम् कर्त्तुं प्रतिदिनं प्रभवति । (यतो हि) पुण्यश्लोकः (पुरुषः) एव सरस वचसा जन्यून् तर्पयति ।

अर्थ—तदनन्तर यह धर्म का उदायमान सूर्य अमरसिंह प्रेम से सम्पृक्त चित्त वाले भावुक मनुष्य को देखकर मीठे वचनों से और इधर-उधर की बातों से शान्त करने के लिये प्रतिदिन प्रभावित करते थे । क्योंकि सत्पुरुष ही सरस वचन से मनुष्यों को अघा देते है, अर्थात् प्रसन्न रखते हैं ।

(३८)

प्रीणन्त्यन्ये चयितविभवा भुक्तभोगप्रपञ्चाः ,
धन्यंमन्याः स्वकृतिविवशाः पापकृत्यानि भर्त्तुम् ।
सन्त्येकेऽमी विरतहृदया मृत्युजन्मैकचिन्ताः ,
संसारोऽयं विविधविषयव्याप्तचित्तोऽन्धहस्ती ॥

अन्वयः—(अस्मिन् संसारे एकतः) भुक्तभोगप्रपञ्चाः धन्यंमन्याः चयितविभवाः स्वकृतिविवशाः पापकृत्यानिभर्त्तुं प्रीणन्ति, (किन्तु) अन्ये मृत्युजन्मैकचिन्ताः विरतहृदयाः एके अमी (अपि) सन्ति, अर्थात् संसारोऽयं विलक्षण एवास्ति । (अतः) अयं संसारः विविधविषयव्याप्तचित्तः अन्धहस्ती अस्ति ।

अर्थ—(इस संसार में एक ओर) विभिन्न भोगों को भोगने वाले अपने आपको धन्य समझते हुए धनसम्पत्तिशाली स्वकर्माधीन होकर पापों के कृत्यों को पोषण देने के लिये प्रसन्न हो रहे हैं । (किन्तु) (दूसरी ओर) मृत्यु और जन्म की प्रमुख चिन्तावाले उदासीन दूसरे ये भी हैं, अर्थात् यह संसार अनोखा ही है । इसलिये यह संसार विविध विषयों से भरे हुए चित्त का एक अन्धा हाथी है—ऐसा कहा जा सकता है ।

(३९)

सिंहः सोऽयं तृणमयचयं मन्यते शूलमूलम् ,
सर्वश्रेष्ठं विभवभरितं मन्दिरं स्वर्गकल्पम् ।
अभ्रस्पर्शि प्रतिकृतिसमं भव्यकर्मप्रतीकम् ,
मोहोत्पन्नं गणयति सदा वीतरागोऽनुरागम् ॥

अन्वयः—(किन्तु विरक्तः) स अभ्रस्पर्शि भव्यकर्मप्रतीकम् प्रतिकृतिसमं विभवभरितं स्वर्गकल्पं सर्वश्रेष्ठं मन्दिरम् अयम् सिंहः (अमरसिंहः) शूलमूलं तृणमयचयं मन्यते। (यतोहि) सदा वीतरागः (जनः) अनुरागं मोहोत्पन्नं गणयति।

अर्थ—किन्तु विरक्त होकर वह—गगनचुम्बी, भव्यकर्म का प्रतीक, नमूने के समान, धन-धान्य से पूर्ण स्वर्ग से कुछ कम आलीशान मकान को यह सिंह अमरसिंह कष्टों की जडकाघास-फूंस का ढेर समझता है। क्योंकि सदा वीतराग पुरुष अनुराग को मोह से उत्पन्न हुआ ही गिनता है।

(४०)

आज्ञां लब्ध्वा धृतमतिरयं पूज्यपादात् पितुश्च ;
मातुर्मत्वा शुभमतिशयं भव्यभावोदयस्य ।
दीक्षाऽऽदानं विमलमतिकाल्लालचन्द्रान्मुनीन्द्रात् ,
प्राप्तुं रत्नं यतति नियतं पञ्चशिक्ष्या व्रतस्य ॥

अन्वयः—अयं धृतमतिः (अमरसिंहः) मातुः पूज्यपादात् पितुः च आज्ञां लब्ध्वा भव्यभावोदयस्य शुभम् अतिशयं पञ्चशिक्ष्याः व्रतस्य रत्नम् दीक्षाऽदानं मत्वा विमलमतिकात् मुनीन्द्रात् लालचन्द्रात् प्राप्तुम् नियतं यतति।

अर्थ—यह निश्चयी अमरसिंह माता और पूज्यपाद पिता की आज्ञा लेकर भव्य भावों के उदय का मङ्गलमय आधिक्य, समाहृत पाँचों शिक्षाओं के व्रत के रत्न दीक्षाऽदान को मानकर विद्वान् श्रीलालचन्द्र मुनिराज से उक्त रत्न को प्राप्त करने के लिये नियमपूर्वक यत्न करता है।

(४१)

हेतोस्तस्मात्प्रतिदिनमयं याति दीक्षां जिघृक्षुः ,
ध्याने मग्ना विहितविधयः श्रावका यत्र सन्ति ।
तत्रैवासो निजविधिरतो लालचन्द्रो मुनीन्द्रः ,
स्थाने वासी धवलवसनो राजते वक्त्रवस्त्रः ॥

अन्वयः—तस्मात् हेतोः अयम् (अमरसिंहः) दीक्षाम् जिघृक्षुः प्रतिदिनं याति, यत्र विहितविधयः ध्याने मग्नाः श्रावकाः सन्ति। तत्र एव असौ स्थाने वासी वक्त्रवस्त्रः निजविधिरतः मुनीन्द्रः लालचन्द्रः राजते।

अर्थ— इस कारण से यह दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा रखने वाला अमरसिंह प्रतिदिन पहुँचता है, जहाँ पर सामायिकादि क्रिया करने वाले ध्यानस्थ श्रावक है, वहाँ पर ही वे स्थानकवासी मुख पर वस्त्रधारण किये हुए निज क्रियाओं में लीन मुनिराज श्री लालचन्द्र जी विराजते हैं।

(४२)

सोऽयं श्रद्धाविनतवदनः सत्रिकृत्वोऽभिवन्द्य ,
गुप्तेर्ज्ञानं समिति सहितं चाधिगत्योपभिक्षु: ।
स्तोकव्यूहं स्मरति सततं शास्त्रसारस्वरूपम् ,
येनाऽहं स्यां परमकृपया मे गुरोः प्रीतिपात्रम् ।

अन्वयः—सः अयम् श्रद्धाविनतवदनः सत्रिकृत्वः अभिवन्द्य उपभिक्षु स समिति सहितं गुप्तेः ज्ञानम् अधिगत्य शास्त्रसारस्वरूपं स्तोकव्यूहं सततं स्मरति। येन अहम् मे गुरोः परमकृपया प्रीतिपात्रं स्याम्।

अर्थ—अब यह श्रद्धा से नतमुख हो तीन बार वन्दन कर और मुनिजन के समीप में समिति सहित गुप्ति के ज्ञान को प्राप्त कर शास्त्रों के सारस्वरूप थोकड़ों को निरन्तर गिनता रहता है। जिससे कि मैं अपने गुरु की परमकृपा से प्रीतिपात्र बन जाऊँ।

(४३)

सश्रद्धोऽयं विधिमुपगतोऽभ्यस्तशास्त्रोप्युदस्तः ,
दीक्षार्थी सन् प्रणतनयनो भावमात्रप्रवीणः ।
ब्रूते यत्किं कथयतु भवानस्मि दीक्षां ग्रहीतुम् ,
योग्योऽवोचत्स इति सहसा यद्यहं स्यां गुरुस्ते ॥

अन्वयः—विधिम् उपगतः, भावमात्रप्रवीणः, अभ्यस्त-शास्त्रः अपि उदस्तः सश्रद्धः प्रणतनयनः दीक्षार्थी सन् अयं ब्रूते यत् भवान् कथयतु, किम् (अहं) दीक्षां ग्रहीतुं योग्यः अस्मि इति, स (मुनिराजः) (श्रीलालचन्द्रः) सहसा अवोचत्—यदि अहम् ते गुरुः स्याम्—(तदा त्वं योग्यः असि, अन्यथा त्वं योग्योनासीत्यर्थः) ।

अर्थ—क्रियावान् भावुक विद्वान् होकर भी उदासीन श्रद्धालु झुके हुए नेत्रों वाला दीक्षा की चाह रखकर कहता है कि आप बताइये, क्या मैं दीक्षा ग्रहण करने के लिये योग्य हूँ ? ऐसा वे मुनिराज श्री लालचन्द्रजी एक साथ कहने लगे कि यदि मैं तेरा गुरु होता हूँ तो तू योग्य है, अन्यथा तू योग्य नहीं है—यह इसका अर्थ है ।

(४४)

स्वीकारोक्तिं स्वयमधिकृतां प्रेमपूर्वां मुनेस्तु ,
श्रुत्वा हर्षं जनयति परं देवसिंहात्मजोऽयम् ।
चर्चेयं तु प्रचलति तदा धर्मवृद्धेष्वहो किम् ,
सन्तोऽप्येवं धृतिमुपगताः शिष्यतां घोषयन्ति ॥

अन्वयः—मुनेः स्वयम् अधिकृतां प्रेमपूर्वां स्वीकारोक्तिम् श्रुत्वा अयं देवसिंहात्मजः (अमरसिंहः) तु परं हर्षं जनयति । (किन्तु) इयं चर्चा धर्म-वृद्धेषु प्रचलति—अहो एवं किम् धृतिम् उपगताः सन्तः सन् अपि शिष्यतां घोषयन्ति ।

अर्थ—मुनिराजश्री की स्वाधिकृत प्रिय स्वीकृति के वचन सुनकर श्री देवसिंह जी के पुत्र अमरसिंह तो मारे हर्ष के फूले नहीं समाये । किन्तु यह चर्चा धार्मिक पुरुषों में चलने लगती है कि देखो—धीर सन्त होकर भी शिष्यता की घोषणा करते हैं ।

(४५)

सुकृतं कृतमस्ति वा न वा, यदि शङ्का तव मानसे ननु ।
कथमेति तु चास्य निश्चयः, तदनु प्राप्नुहि काव्य-कौशलम् ॥

अन्वयः—कविरिह कविं स्तौति—त्वया सुकृतं कृतं न वा कृतम् यदि (एतादृशी) शङ्का ननु तव मानसे (अस्ति)। अस्य (प्रश्नस्य) च निश्चयः कथम् एति ? इति प्रश्ने तु—कवेः काव्यकृतिं तदा पश्य, इत्युत्तरमस्ति। एतेन ज्ञायते-सुकृतवानेव कविर्भवति। यस्य सम्यक् कृतं नास्ति, न कोऽपि तं प्रशंसते एवं स कविरपि नास्ति। अतो नाहं कविरस्मीत्यर्थः।

अर्थ—यहाँ कवि कवि की स्तुति करता है—तू ने सुकृत किया है कि नहीं—यदि ऐसी शङ्का तेरे मन में है तो फिर इस प्रश्न का निश्चय कैसे हो ? इस प्रश्न पर उत्तर मिलता है कि कवि की काव्यकृति को देख। इससे ज्ञात होता है—सुकृतवान् अर्थात् पुण्यवान् ही कवि होता है। जिसका अच्छा किया नहीं है, उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता। इस प्रकार वह कवि भी नहीं है।

(४६)

अथ कविर्विशिनष्टि विशेषितम् ,
नरवरं सुगुणैः सकलैर्यथा ।
कुसुम सौरभपत्रसमुच्छ्रितम् ;
तरुमलङ्कुरुते कृतिमालिकः ॥

अन्वयः—अथ कविः विशेषितं नरवरं सकलैः सुगुणैः विशिनष्टि, यथा कृतिमालिकः कुसुमसौरभपत्रसमुच्छ्रितं तरुम् अलङ्कुरुते।

अर्थ—कवि विशेषित मनुष्य श्रेष्ठ को सभी सुगुणों से उपलक्षित विशेषण देकर वर्णन करता है, जैसे चतुर माली पुष्पों की गन्ध और पत्तों से बढ़े-चढ़े वृक्ष को अच्छा लगे ऐसा सँवारता रहता है।

(४७)

तदनुरूपमहं गुणशालिनम् ,
अमरसिंह भविष्णुमुनिं गुरुम् ।
प्रविशिनड्मि शुभैः पदभूषणैः ,
पददरिद्रकविः कविकिङ्करः ॥

अन्वयः—तदनुरूपम् अहं पददरिद्रकविः कविकिङ्करः गुणशालिनं गुरुम् अमरसिंहभविष्णुमुनिं शुभैः पदभूषणैः प्रविशिनड्मि ।

अर्थ—तदनुरूप मैं शब्दों के अभाव से ग्रस्त कवि, कविओं का वशवर्त्ती गुणशाली गुरु अमरसिंह भविष्णु मुनि को माङ्गलिक शब्द रूप भूषणों से उपलक्षित विशेषण देकर वर्णन कर रहा हूँ ।

(४८)

अहन्तु मन्ये परमेव दुष्करम् ,
सुवर्णनं तत् प्रतिभाविलासिभिः ।
सुशब्द धारारसरीत्यलङ्कृतम् ,
विधीयते यत् कविभिर्महाशयैः ॥

अन्वयः—महाशयैः प्रतिभाविलासिभिः कविभिः यत् सुशब्दधारारसरीत्यलङ्कृतं सुवर्णनं विधीयते, तत् परम दुष्करम् एव (अस्ति) । इति तु अहं मन्ये । (तथापि मया वर्ण्यते विवक्षयेत्यर्थः) ।

अर्थ—महान् आशय वाले प्रतिभाधारी कविओं के द्वारा जो सुन्दर वर्णन किया जाता है, वह बहुत कठिन ही है, ऐसा तो मैं मानता हूँ । तो भी मेरे द्वारा यह वर्णन किया जा रहा है, वह सब कहने की इच्छा से ही है—यह ऐसा इसका अर्थ है ।

(४९)

दीक्षायां यदपेक्षितं विवरणं संवर्ण्य शक्तेः परम् ,
दीक्षामेवमहं पुनर्विवरितुं वाञ्छामि सेच्छं ततम् ।
येनायं मुनिरेव कीर्त्तिविमलो जायेत सिंहोऽमरः ;
प्रख्यातः स्वगुणैर्महानपि पुनर्वर्ण्येत सर्गेऽग्रिमे ॥

अन्वयः—(मम) शक्तेः परं यत् अपेक्षितं विवरणं दीक्षायाम् (आसीत्) तत् संवर्ण्य अहम् एवं सेच्छं ततं पुनः विवरितुम् वाञ्छामि, येन स्वगुणैः प्रख्यातः अपि कीर्त्तिविमलः सिंहः मुनिः अमरः (अमरसिंहः) महान् एव जायेत । अतः (मया) पुनः अयम् अग्रिमे सर्गे वर्ण्येत ।

अर्थ—मेरे सामर्थ्य से अधिक जो अपेक्षित विवरण दीक्षा के विषय में था, उसको भली प्रकार वर्णित कर मैं अब इच्छा के साथ विस्तृत विवरण को एक बार फिर वर्णित किया चाहता हूँ, कि जिससे अपने गुणों से प्रख्यात होने पर भी प्रशस्त सिंह सदृश मुनि अमरसिंह महान् ही बने रहें । इसीलिए मेरे द्वारा फिर यह (अमरसिंह) आगे के सर्ग में वर्णित किया जायेगा ।

इति श्रीमता राजस्थान केसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
द्वितीयः सर्गः

❀

तृतीयः सर्गः

(१)

जैनं शासनमेव नाम शरणं यस्यास्ति घोरव्रतम्
तं सन्तं प्रणमन्ति धर्मनिरताः पुण्यार्जिताः सज्जनाः ।
ये स्वं ते विततं तयाप्यतिकथं किञ्चित्करं मन्वते
तस्याग्रे कथनं सदा विकथनं पुण्याय मन्यामहे ॥

अन्वयः—यस्य जैनं शासनम् नाम, घोरव्रतं शरणम् अस्ति, तं सन्तं ते धर्मनिरताः पुण्यार्जिताः सज्जनाः प्रणमन्ति, ये विततम् अतिकथं स्वं तथापि किञ्चित्करम् मन्वते । तस्य अग्रे कथनम्, सदा विकथनम् (अस्ति), पुनः तस्य कथनं कुतः क्रियते ? तत्कथनं वयं पुण्याय मन्यामहे अतस्तत् कथनमस्ति—इत्यर्थः ।

अर्थ—जिसका जैन शासन ही एक रक्षक है, ऐसा घोर व्रत था—अर्थात् आजीवन जिसका पालन और प्रचार किया, ऐसे उस घोरव्रती को, वे धार्मिक पुण्यवान् सज्जन प्रणाम करते हैं, जिन्होंने अपार वर्णनातीत सम्पत्ति को तुच्छ समझा है या मानते हैं । ऐसे उस सन्त के सामने कहना, सदा न कहने के समान ही है । फिर उसका कथन किसलिये करते हो ? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि कोई न कोई तो पुण्य होगा ही । अतः हम उस सन्त की प्रशंसा करते हैं ।

(२)

नक्षत्रे विमले विधाय घटिते पञ्चाङ्गसिद्धे शुभे
श्रीसंघानुमते विशुद्धसमये ख्याते मुहूर्त्ते विधिम् ।
दीक्षार्थी परमादृतोऽपि विनयी शिष्टेष्वपीष्टोऽमरः
धर्माप्तां महतीं सुबोधजननीं दीक्षां स्वतः प्रेक्षते ॥

अन्वयः—श्रीसङ्घानुमते पचाङ्गसिद्धे निर्दोषे शुभे नक्षत्रे विशुद्धसमये ख्याते मुहूर्त्ते घटिते विधिं विधाय परमादृतोऽपि विनयी शिष्टेष्वपि इष्टः दीक्षार्थी अमरसिंहः धर्माप्तां महतीं सुबोधजननीं दीक्षां स्वतः प्रेक्षते ।

अर्थ—श्री संघ से अनुमत, पंचांग से सिद्ध, निर्दोष शुभ नक्षत्र के रहते हुए विशुद्ध समय के प्रसिद्ध मुहूर्त्त के घटित होने पर, विधि को सम्पादित कर, अधिक आदर किये जाने पर भी विनीत, एवं शिष्टजनों में भी अभिमत दीक्षार्थी अमरसिंह, धर्म से प्राप्त महत्त्वपूर्ण, सुबोध को उत्पन्न करनेवाली दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगता है ।

---

१ सर्गेऽस्मिन् 'शार्दूलविक्रीडितं म्सौ जसौ तौ गादित्यऋषयः ।

(३)

दीक्षां भागवतीं ददातु भगवन् कारुण्यवारां निधे !
आधिव्याधिकथाकराय विमलामज्ञाय जीवाय मे ।
रुद्धोऽहं भवजन्ममृत्युगतिभिः संसारदुःखार्णवम् ,
येन स्यां त्वरितं समर्थशरणः पोतस्तरीतुं यथा ॥

अन्वयः—हे कारुण्यवारां निधे ! भगवन् ! आधिव्याधिकथाकराय अज्ञाय जीवाय मे विमलां भागवतीं दीक्षां ददातु । (यतो हि) अहं भवजन्म-मृत्युगतिभिः रुद्धः (अस्मि) । येन (यद्यहं दीक्षितो भवामि तदा) समर्थशरणः सन् संसारदुःखार्णवम् त्वरितं तरीतुं पोतः यथा स्याम् ।

अर्थ—हे कारुण्यरूप जल के निधि भगवन् ! आधि और व्याधि की कहानियों की खान जैसे अबोध प्राणी मुझको पवित्र भागवती-दीक्षा प्रदान कीजिये । क्योंकि मैं संसार के जन्म और मृत्यु की स्थितियों से अवरुद्ध हूँ । जिससे (यदि दीक्षित होता हूँ तो) समर्थशरण होकर संसार के दुःख रूप समुद्र को शीघ्र तैर कर पार पाने के लिये, जहाज के समान हो जाऊँ ।

(४)

श्रुत्वा तस्य वचः स्वभावकरुणो दीक्षाप्रदाता मुनिः ;
ब्रूते तं विनयानतं सकरुणं दीक्षा व्रत प्रार्थिनम् ।
आभारव्यथितं मनोहरमिदं हर्षप्रकर्षं वचः ,
दीक्षां दातुमनास्तथापि तदहं याचे किमप्युत्तरम् ॥

अन्वयः—स्वभावकरुणः दीक्षाप्रदाता मुनिः (श्रीलालचन्द्र महाराजः) तस्य वचः श्रुत्वा तम् आभारव्यथितं विनयानतं दीक्षाव्रतप्रार्थिनम् (अमरसिंहं) सकरुणं हर्षप्रकर्षमनोहरम् इदं वचः ब्रूते, (यद्यपि) अहम् दीक्षां-दातुमनाः (अस्मि) । तथापि किम् अपि तद् उत्तरं याचे ।

अर्थ—परमदयालु दीक्षा देनेवाले मुनि श्रीलालचन्द्रजी महाराज ने उसकी प्रार्थना सुनकर, उस आभार व्यथित विनय से नम्र दीक्षाव्रत के प्रार्थी अमरसिंह को दया के साथ हर्षाधिक्यवाले चित्ताकर्षक वचन कहने लगे कि यद्यपि मैं दीक्षा देने के लिये तत्पर हूँ, तथापि कुछ उत्तर चाहता हूँ ।

(५)

दीक्षायै यतसे परन्तु सततं जानीहि तथ्यं परम् ,
काठिन्यं नितरा तथापि सुयमां तेषां कृते विद्यते ।
सद्ज्ञानाभिरता विरक्तहृदयास्त्यक्तानुरागाक्रियाः ,
ये सन्ति प्रथमे समे सकरुणाः स्वेषां परेषां समाः ॥

अन्वयः—(यद्यपि) त्वं दीक्षायै यतसे (एतत्तु सत्यम्) परन्तु दीक्षायाम् त्वं परं तथ्यं जानीहि, यत्तत्र सततं नितरां काठिन्यं (वर्त्तते)। तथापि इयं दीक्षा तेषां कृते सुगमा विद्यते, ये समे प्रथमे सत्तत्वाभिरताः विरक्त हृदयाः त्यक्तानुरागक्रियाः स्वेषां परेषां च समाः सन्ति ।

अर्थ—यद्यपि तुम दीक्षा लेने के लिये यत्न कर रहे हो, यह तो ठीक है, किन्तु दीक्षा के विषय में एक बड़ा तथ्य तुम को जान लेना चाहिये कि इसमें निरन्तर महान् काठिन्य है। तथापि यह दीक्षा उनके लिये सुगम है, जो सभी पहले सत्तत्व में लीन हैं, विरक्त हृदय के हैं, अनुराग की क्रियाओं को छोड़े हुए हैं, आत्मीय और अन्यदीय के निर्धारण के समान हैं ।

(६)

चोलं किं प्रथसे विशिष्टमपरं केशस्य लोचं पुनः ,
वान्यद् मुण्डनमात्रमेव मनुषे चिह्नं विरक्तेरितः ।
यद्वा त्वं तनुषे स्वतन्त्रमपि तद् वक्तुं किमन्यत्स्वतः ,
येनस्यादभितः स्फुटं यदिह ते स्पष्टं त्वभीष्टं मतम् ॥

अन्वयः—किं त्वं विरक्तेः विशिष्टं चिह्नं चोलं प्रथसे ? अपरं वा केशस्य लोचं प्रथसे ? अन्यद् वा मुण्डनमात्रम् एव मनुषे ? यद्वा स्वतः अपि अन्यत् स्वतन्त्रम् तद् वक्तुं तनुषे किम् ? येन अभितः स्फुटं ते यदिह अभीष्टं मतं स्पष्टं स्यात् ।

अर्थ—क्या तुम विरक्ति का विशिष्ट चिन्ह चोलवस्त्र कहते हो ? अथवा केश के लोच को बताते हो ? अथवा मुण्डन को ही विरक्ति का चिह्न मानते हो ? अथवा इस विरक्ति के विषय में तुम्हारा कोई स्वतन्त्र चिह्न है जिसको तुम विस्तृत किया चाहते हो ? जिससे कि सब ओर से स्फुट तुम्हारे अभीष्ट सिद्धान्त का स्वरूप ज्ञात हो सके ।

(७)

प्रश्नैरेव यदस्ति मेऽपि भवतां ज्ञातव्यमस्त्युत्तरम् ,
तेषामाशय एव मे परिचयं सम्प्राप्तुमिच्छन्ति तत् ।
श्रीमन्तो मनसो दृढं समुचितं तस्योत्तरं वर्त्तते ;
संक्षिप्तं परिहाय चोत्तरमिदं भक्तोऽस्म्यहं श्रद्धया ॥

अन्वयः—भवताम् एवं प्रश्नैः यत् ज्ञातव्यम् अस्ति, (तस्य) मे अपि उत्तरम् अस्ति । (किन्तु) तेषाम् (प्रश्नानाम्) आशयः एव अस्ति-यत् श्रीमन्तः मे मनसः दृढं परिचयं सम्प्राप्तुम् इच्छन्ति । तस्य च समुचितम् उत्तरम् वर्त्तते । (तथापि) तत् परिहाय (मम) संक्षिप्तम् उत्तरम् अस्ति—(यद् भवताम्) अहं श्रद्धया भक्तः अस्मि ।

अर्थ—आपके ही प्रश्नों से जो समझा गया है, उसका मेरा भी उत्तर है। किन्तु उन प्रश्नों का अभिप्राय ही यह है कि श्रीमान् मेरे हृदय के वास्तविक परिचय को अच्छी तरह से प्राप्त किया चाहते हैं। और उसका समुचित उत्तर भी है। तथापि उसको छोड़कर मेरा संक्षिप्त उत्तर यही है कि आपका मैं श्रद्धा से भक्त हूँ।

(८)

चोलस्यास्य स्वरूपकथनाद् मूल्यं न किञ्चित्परम् ,
मूल्यञ्चास्य तदैव जीवनमिदं सद्भावपूर्णं भवेत् ।
मूल्यं किं शिरसः सुकेशमभितो लोचान्वितं यत्कृतम् ,
मूल्यं तद् यदि मुण्डनस्य शिरसःकर्मक्षयोऽयं भवेत् ॥

अन्वयः—अथापि निर्दिशत्युत्तरम्—अस्य चोलस्य चोलपट्टस्य वा (साधुरयमिति) स्वरूपकथनात् परं किञ्चित् मूल्यं नास्ति । (अस्य च) मूल्यं तदा एव (सम्भवेत्) यत् इदं जीवनं सद्भावपूर्णं भवेत् । शिरसः यत् अभितः सुकेशं लोचान्वितं कृतं (तस्य) मूल्यं (विरक्तोऽयमिति) कथनात् अधिकं मूल्यं नास्ति । शिरसः मुण्डनस्य यदि मूल्यं (सम्भवेत्) तत्—(शिरसि प्रसृतानां) कर्मणां क्षयः भवेत् ।

अर्थ—इस चोल या चोलपट्ट का (यह साधु है) इस स्वरूप-कथन के अतिरिक्त कोई मूल्य नहीं है। और इसका मूल्य तो तब ही हो सकेगा जब यह जीवन सद्भावपूर्ण हो या बने। शिर के सुन्दर केश का लोच करने का भी (यह विरक्त है) इससे अधिक क्या मूल्य हो सकता है ? शिर के मुण्डन का यदि कोई मूल्य हो सकता है तो वह यही है कि शिर पर छाये हुए कर्मों का क्षय हो।

(९)

तस्मान्मे समताधुनापि हृदये स्वाभाविकी राजते ,
धर्मं कर्त्तुमिहैव मङ्गलमयं श्रेष्ठां च वृत्तिं श्रये ।
अस्याः कारणतो मदीयपितरौ सद्भावपूतात्मकौ ,
गृह्णीतो दययानुभावमतुलं माङ्गल्यमूलं मयि ॥

अन्वयः– तस्मात् मे हृदये अधुना अपि स्वाभाविकी समता राजते। मङ्गलमयं धर्मं कर्त्तुं श्रेष्ठां च वृत्तिं श्रये। अस्याः (समतायाः) कारणतः सद्भावपूतात्मकौ मदीयपितरौ मयि दयया अतुलं माङ्गल्यमूलम् अनुभावम् गृह्णीतः।

अर्थ—इससे मेरे हृदय में आज भी स्वाभाविक समता विद्यमान है। मङ्गलमय धर्म के आचरण के लिए श्रेष्ठ वृत्ति का आश्रय ले रहा हूँ। इस समता के कारण से ही पवित्र मेरे माता-पिता मुझ पर दया के साथ अनोखा मंगलहेतु अनुभाव ग्रहण कर रहे हैं।

(१०)

आशासे भगवन् ! विहाय कारुणाक्रान्तेन मह्यं हृदा ,
सन्देहानपरान् सहर्षमधुना दीक्षाव्रतं दास्यसि ।
येनाहं त्वरितं दधानि सुकृतं स्वात्मानमुद्द्योतिम् ,
धर्मार्थं प्रयतैतरां च निरतं संशोद्धुमन्तर्मनः ॥

अन्वयः—हे भगवन् ! अधुना अहम् आशासे, (यत्) त्वम् अपरान् सन्देहान् विहाय करुणाक्रान्तेन हृदा मह्यं दीक्षाव्रतं सहर्षं दास्यसि। येन स्वात्मानम् उद्द्योतितुं सुकृतं त्वरितं दधानि, अन्तर्मनः च संशोद्धं धर्मार्थं निरतं प्रयतैतराम्।

अर्थ—हे भगवन् ! अब मैं आशा करता हूँ कि आप दूसरे सन्देहों को छोड़कर मुझे दीक्षा का व्रत सहर्ष देंगे। जिससे कि मैं अपनी आत्मा को द्योतित करने के लिए सुकृत शीघ्र करूँ और अन्तर्मन को संशुद्ध करने के लिए धर्मार्थ निरन्तर प्रयत्न करता रहूँ।

(११)

श्रुत्वा तद्वचनं वरं नियमितः सन्तः समेऽतूतुषन् ,
नेतारश्च परे सुमेधस इमां दीक्षां शुभामीक्षितुम् ।
ते सर्वे समवादिषुश्च समयुर्भावीत्ययं दृश्यते ;
येनाद्यानुनयेन वा सुवचसा क्षुब्धा वयं हर्षिताः ॥

अन्वयः—तद्वचनं वरं श्रुत्वा समे नियमिनः सन्तः परे च सुमेधसः नेतारः इमां शुभां दीक्षाम् ईक्षितुं समयुः, ते सर्वे अतूतुषन् च समवादिषु 'अयं भावी दृश्यते' इति। येन अद्य क्षुब्धाः (अपि) वयं सुवचसा वा अनुनयेन हर्षिताः (स्मः)।

अर्थ—उस (अमरसिंह) के वचन अच्छी तरह सुनकर सभी संयमी सन्त और दूसरे बुद्धिमान् अग्रणी पुरुष जो इस शुभ दीक्षा को देखने के लिए एकत्र हुए थे, वे सब खूब खुश हुए और कहने लगे कि 'यह कोई होनहार दिखता है।' जिसने घबड़ाए हम सबको मीठे वचन से अथवा अनुनय से खुश कर दिया है।

(१२)

केऽप्यन्ये कथयन्ति तं नवमुनिं प्रव्यक्तवाचां स्वतः ,
शुक्रं वापि बृहस्पतिं दिविषदां रक्षोगणानां गुरुम् ।
हेतुश्चास्य न कोऽपि वक्तुमशकद् दक्षो विलक्षोभवन् ,
संसारे पुरुषोत्तमान् क्क विबुधा वक्तुं न शक्ता वयम् ॥

अन्वयः—अन्ये केऽपि स्वतः तं नवमुनिम् (अमरसिंहम्) प्रव्यक्त वाचां रक्षोगणानां गुरुं शुक्रं वा दिविषदां गुरुं बृहस्पतिम् कथयन्ति। (किन्तु) कश्च दक्षः अपि विलक्षः भवन् अस्य हेतुं वक्तुं न अशकत्! (यतोहि) संसारे विबुधाः पुरुषोत्तमान् वक्तुं न शक्ताः (भवन्ति), (तर्हि) वयं शक्ताः क्व भवेम!

अर्थ—दूसरे कोई भी अपने आप उस नवीन मुनि (अमरसिंह महाराज) को स्पष्टवाक् राक्षसों के गुरु शुक्र अथवा देवताओं के गुरु बृहस्पति कहने लगते हैं। किन्तु कोई निपुण भी आश्चर्यचकित होकर इसका हेतु न बता सका, कि ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि संसार में देवता भी पुरुषोत्तमों को नहीं बता सकते तो फिर हम कहाँ बता सकेंगे!

(१३)

नत्वाऽयं श्रमणव्रजं चवितनां शास्त्रोक्तगाथास्तुतिम् ,
कुर्वन्तं निखिलैर्जनैरधिगतं व्यावृत्तचित्तैः शुभम् ।
मन्वन्तं क्षणभंगुरं विकृतचिद्व्याप्तेन्द्रियं जन्तुकम् ,
आभारं मनुते स्थितेमुनिवर व्रातस्य सिंहोऽमरः ॥

अन्वयः—अयं सिंहः अमरः (अमरसिंहः) व्यावृत्तचित्तैः निखिलैः जनैः अधिगतं क्षणभङ्गुरं विकृतचिद् व्याप्तेन्द्रियं जन्तुकमपि शुभम् मन्वन्तं च वितनां शास्त्रोक्तगाथास्तुति कुर्वन्तं श्रमणव्रजं नत्वा मुनिवरव्रातस्य स्थितेः आभारं मनुते ।

अर्थ—यह अमरसिंह समाहित हृदय वाले सभी मनुष्यों से स्वीकृत आशु-विनाशी विकृत चैतन्य प्राप्त के भोक्ता जीव को भी शुभ मानते हुए और विस्तृत शास्त्रोक्त गाथाओं से स्तुति करते हुए श्रमणगण को नमनकर मुनिवर समुदाय के पधारने का आभार मानने लगा ।

(१४)

नार्य्योऽपि प्रमथप्रभावमनिशं दीव्यन्तमंसांशुकम् ,
व्यक्ताभं विलसत्प्रभासमुदयव्याकीर्णवक्त्राम्बुजम् ।
आयान्तं सुमनोऽधिपेन्द्र सुतनुव्यक्ताकृति मानुषम् ,
सिंहान्ताद्यमरं स्तुवन्ति निरतं दीक्षाव्रतायामरम् ॥

अन्वयः—नार्य्यः अपि प्रमथप्रभावं व्यक्ताभं अंसाशुकम् अनिशम् दीव्यन्तम् विलसत्प्रभासमुदयव्याकीर्णवक्त्राम्बुजं सुमनोऽधिपेन्द्र-सुतनुव्यक्ता-कृतिम् आयान्तं सिंहान्ताद्यमरं मानुषम् अमरं दीक्षाव्रताय निरतं स्तुवन्ति ।

अर्थ—महिलाएँ भी काम-सुन्दर चमकीले कन्धे के दुपट्टे को निरन्तर झल-काते हुए, छिटकती किरणों से घिरे हुए मुख-कमल वाले, देवताओं के स्वामी इन्द्र के सुन्दर शरीर के समान है आकृति जिसकी ऐसे अमरसिंह नाम के मनुष्य-देव की दीक्षाव्रत के लेने के लिए उठकर प्रशंसा करने लगीं ।

(१५)

सर्वैस्तैर्मुनिभिः समर्थितगुणः शान्तस्वभावैरयम् ,
दीक्षायायनुमोदितो निरलसः प्रव्यक्तचित्तोऽमरः ।
दीक्षामभ्यधिगन्तुमेव यतते श्रीलालचन्द्रान्मुनेः ,
लोकेऽस्मिल्लभते फलं प्रतिपदं गाढप्रयत्नोजनः ॥

अन्वयः- तैः सर्वैः शान्तस्वभावैः मुनिभिः अयम् निरलसः प्रव्यक्तचित्तः समर्थितगुणः दीक्षायै अनुमोदितः अमरः (अमरसिंहः) श्रीलालचन्द्रात् मुनेः एव दीक्षाम् अभ्यधिगन्तुं यतते । (यतो हि) अस्मिन् लोके गाढप्रयत्नः जनः प्रतिपदं फलं लभते ।

अर्थ—उन सभी शान्तस्वभाव मुनियों के द्वारा, यह प्रयत्नशील, सरल, उपयुक्त, दीक्षा के लेने के अनुमोदित अमरसिंह श्रीलालचन्द्रजी मुनिराज से ही दीक्षा प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। क्योंकि लगन का पक्का मनुष्य इस संसार में स्थान-स्थान पर सफल होता है ।

(१६)

प्रत्यक्षं मुनिरेवमस्त्विति परां प्रव्यक्तवाचं वदन् ,
सर्वज्ञप्रथितागम प्रवचनप्राचुर्ययुक्तं वचः ।
ऊचे तं सकलार्थतत्त्वमहितं दीक्षार्थिकण्ठीरवम् ,
श्रीमन्तं करुणार्द्रचित्तममरं श्रेयसा शंसिनम् ॥

अन्वयः—दीक्षाप्रार्थनोत्तरम्—'एवम् अस्तु' इति परां प्रव्यक्तवाचं वदन् मुनिः तं श्रीमन्तं करुणार्द्रचित्तं श्रेयसाशंसिनं दीक्षार्थिकण्ठीरवम् अमरम् (अमरसिंहम्) सर्वज्ञ-प्रथितागम-प्रवचन-प्राचुर्ययुक्तं सकलार्थतत्त्वमहितं वचः प्रत्यक्षम् ऊचे ।

अर्थ—दीक्षा के लिए प्रार्थना के पीछे 'ऐसा हो' ऐसी विशिष्ट स्पष्ट वाणी का उच्चारण करते हुए मुनि महाराज ने उस श्रीयुक्त दयावान् आत्मकल्याणार्थी दीक्षार्थी-सिंह अमरसिंह को केवली भगवान के कहे हुए आगमों के प्रवचनों के आधिक्य से युक्त सम्पूर्ण अर्थतत्त्व से सम्मानित वचन प्रत्यक्ष में कहा ।

(१७)

आयातान् स्वजनान् मुनीन् सुहृदयान् सम्बोध्य प्रान्तर्मनाः ,
निष्णातश्च मुनिक्रियासु भवताद् दीक्षाधरंमेऽमरः ।
इत्येवं वदितुं यदैव यतते श्रीलालचन्द्रो मुनिः ,
आलोकं कुसुमानि भूमिमभितो वर्षन्ति गन्धावहम् ॥

अन्वयः—प्रान्तर्मनाः मुनिः श्रीलालचन्द्रः सुहृदयान् स्वजनान् च मुनीन् सम्बोध्य 'मे दीक्षाधरः अमरः मुनि-क्रियासु निष्णातः भवतात्' इति एवं वदितुं यदा एव यतते, (तदा एव) आलोकम् भूमिम् अभितः कुसुमानि गन्धावहं वर्षन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त गम्भीर मुनि श्रीलालचन्द्रजी महाराज सुहृदय आत्मीय पुरुषों को और मुनिराजों को सम्बोधन कर 'मेरा यह दीक्षित अमरसिंह मुनिक्रियाओं में प्रवीण बने' ऐसा कहने के लिए जभी प्रयत्न करते हैं, तभी संसार में भूमि के सब ओर केसर-कण महँकते हुए बरसने लगते हैं ।

(१८)

आकाशे न हि केवलं दिविषदो नृत्यन्ति कत्थत्कलम् ,
मन्दाक्षं परतो विहाय प्रमदाश्चर्चन्ति प्रत्यङ्गणम् ।
मर्यादां परिहाय यौवतमहो प्रत्यक्षमालिङ्गते ,
हर्षोऽयं प्रमदा-प्रमाद-परिधिं निर्व्याजमुल्लंघते ॥

अन्वयः—दीक्षानन्तरं हर्षमुद्दिश्य—आकाशे न हि केवलं दिविषदः कत्थत्कलम् नृत्यन्ति, (अपितु) परतः प्रमदाः (स्त्रियोऽपि) मन्दाक्षं विहाय प्रत्यङ्गणम् चर्चन्ति । अहो (युवतीनां समूहो) यौवतं मर्यादां परिहाय (परस्परम्) प्रत्यक्षम् आलिङ्गते । अयं हर्षः प्रमदाप्रमादपरिधिं निर्व्याजम् उल्लंघते ।

अर्थ—दीक्षानन्तर हर्ष को लेकर आकाश में न केवल देवता ही कत्थत्कल नृत्य करते हैं, अपितु दूसरी ओर से प्रमदा स्त्रियाँ भी लज्जा को छोड़कर आँगन-आँगन में चर्चाएँ करती हैं । यहाँ तक कि युवतियों का समूह मर्यादा को छोड़कर परस्पर में प्रत्यक्ष भेंट भर लेता है । यह हर्ष स्त्रियों के प्रमाद की परिधि को बिना किसी हिचक के लाँघता चला जा रहा है ।

(१९)

अन्योऽन्यं कथयन्ति वृत्तमपरे त्यागस्य दाक्षार्थिनः ,
लज्जन्ते नगरे जनाः सुकमना दीक्षां निरीक्ष्य स्वतः ।
आश्चर्यं खलु मन्वते विषयिणः केश्यस्य चोन्मूलने ,
केऽप्यन्ये नगराधिवासिन इमे शङ्काङ्कुरं तन्वते ॥

अन्वयः—संसारिणो विभिन्नरुचयः सन्ति (अतः) अपरे जनाः दीक्षार्थिनः त्यागस्य वृत्तम् अन्योन्यं कथयन्ति । नगरे दीक्षां निरीक्ष्य सुकमनाः जनाः स्वतः लज्जन्ते । विषयिणश्च खलु केश्यस्य उन्मूलने आश्चर्यं मन्वते । केऽपि अन्ये नगराधिवासिनः इमे (सन्ति), ये शङ्काङ्कुरं तन्वते ।

अर्थ—संसार के लोग विभिन्न रुचि के होते हैं। इसलिए दूसरे मनुष्य दीक्षार्थी के त्याग के वृत्त को एक-दूसरे को बताते हैं। कुछ कामी पुरुष नगर में ऐसे भी हैं, जो दीक्षा को देखकर स्वयं लज्जित हो रहे हैं। तो कुछ विषयी ऐसे भी हैं जो केशों के उखाड़-फेंकने के विषय पर अचम्भा मानते हैं। कुछ दूसरे नागरिक वे हैं, जो शङ्काओं के पौधे को फैलाते चलते हैं।

(२०)

कालुष्यं परिहाय कोऽप्यकथयच्चित्तस्य कष्टं महत् ,
यद्येवं सततं भवेद् विघटितं किं वाचरेद् यौवतम् ।
या जाता ललनाः कटाक्ष-विशिखाघातव्यथाभूमयः ,
तासां का गणना भवेदिति कथा चित्तव्यथां थेपते ॥

अन्वयः—दीक्षाग्रहणात् कोऽप्यसमीक्ष्यकारी शोचते—कोऽपि (अविचारी) कालुष्यं परिहाय चित्तस्य महत् कष्टम् अकथयत् (यत्) यदि एवं विघटितं सततं भवेत् (तदा पुनः) यौवतं किम् आचरेत् वा याः कटाक्षविशिखाघातव्यथाभूमयः ललनाः जाताः (सन्ति), का गणना भवेत् ; इति—कथा चित्तव्यथां थेपते ।

अर्थ—दीक्षाग्रहण के कारण कोई बिना सोचे-विचारे काम करने वाला शोक प्रकट करता है—कोई कलुषभाव को छोड़कर अपने चित्त के गम्भीर कष्ट को कहने लगा कि यदि इसी प्रकार का बिगाड़-खाता चलता रहा, तो फिर युवतियों का समूह क्या करेगा धरेगा ! अथवा जो कटाक्ष-बाण के आघात की पीड़ा की भूमि-स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, उनकी क्या गिनती होगी ! इस प्रकार की कहानी चित्त की व्यथा बढ़ाने लगी ।

(२१)

दीक्षादानपुरस्सरातिशयितं वीक्ष्योत्सवं सुन्दरी ,
प्रीणीते हृदयं शुभाशुभमयं शङ्काप्रशङ्काङ्कुरम् ।
चिन्तार्त्ता व्यथते च मे प्रियधवस्यासक्तिशून्यं मनः ,
जायेत प्रसभं यदीदृशमतो दीक्षोत्सवं क्रोशते ॥

अन्वयः—काऽपि संसारिणी सुन्दरी दीक्षादानपुरस्सरातिशयितम् उत्सवं वीक्ष्य शुभाशुभमयं हृदयं शङ्का-प्रशङ्कांकुरं प्रीणीते । अतश्च चिन्तार्त्ता सा व्यथते—यदि मम प्रियधवस्य (अपि) मनः ईदृश प्रसभम् आसक्तिशून्यं जायेत, (तर्हि ममु तु सर्वनाशमेष्यति) आक्षिप्तार्थोऽयम् अतः सा चिन्तार्त्ता सुन्दरी दीक्षोत्सवं क्रोशते ।

अर्थ—कोई संसारी सुन्दरी स्त्री दीक्षाग्रहण को लेकर शानदार उत्सव अच्छी प्रकार से देखकर अशुभ और शुभ से सङ्कीर्ण मन को शङ्का और प्रशङ्का के पौधे के समान खूब लहलहा देती है । और मारे फिक्र के वह दुःखी हो जाती है कि यदि मेरे प्रिय पति का भी दिल इसी प्रकार जबरन् बेलगाव हो जायेगा तो मेरी बिल्कुल बर्बादी हो जायेगी । इस प्रकार से चिन्तित सुन्दरी दीक्षा के उत्सव को कोसने लगती है ।

(२२)

व्यर्थं ते कमनास्तुदन्ति विकलाश्चित्तव्यथापीडिताः ,
धिक् कामंव्यथतेतरामिति सदा क्षीवाभिकान् मानुषान् ।
सामर्थ्यं यदि ते व्यथस्व दमिनं मुक्त्यर्थिनं दीक्षितम् ,
मर्त्यानाममरं मुनिं सुविदितं जैनं नवीनं जनम् ॥

अन्वयः—ये चित्तव्यथापीडिताः विकलाः (सन्ति), ते कमनाः तुदन्ति यदयं कामः) सदा क्षीवाभिकान् मानुषान् व्यर्थं व्यथतेतराम् इति तं कामंधिक् (अस्तु) । यदि ते (कामस्य) सामर्थ्यम् (अस्ति), (तर्हि) त्वं मर्त्यानाम् सुविदितं जनं नवीन दीक्षितं मुक्तयर्थिनं दमिनं जैनं मुनिम् अमरं व्यथस्व । तदा वयं जानीमो यत्त्वं कामोऽस्ति, अन्यथा मृतानां मारणे सामर्थ्यं किमित्ययमर्थः ।

अर्थ—जो चित्त की व्यथा से पीड़ित हो, विकल हैं, ऐसे वे कामी नर दुःख प्रकट करते हैं कि यह कामदेव सदा मदान्ध कामी मनुष्यों को व्यर्थ काफी कष्ट देता है । यदि तुझ कामदेव की ताकत है तो तू मनुष्यों में प्रसिद्ध मनुष्य, नवीन, दीक्षित मोक्षार्थी, जितेन्द्रिय जैनमुनि अमरसिंह जी को व्यथित कर सके । तब हम मानें कि तू कामदेव है, अन्यथा मरे हुए को मारने में सामर्थ्य क्या है ! अर्थात् न कुछ । ऐसा यह अर्थ है ।

(२३)

सर्वेषां जयकारशब्दमभितः श्रुत्वामरो दीक्षितः ,
प्रत्येकं नमते दयापरवशः शोभापरः श्रीधरः ।
माङ्गल्यं लभते प्रसीदतितरामेभ्यो मुनिभ्यो गुरुम् ,
चान्ते सोऽभिरतोऽधिसेवमपरं श्रीलालचन्द्रं प्रति ॥

अन्वयः—सर्वेषां जयकार शब्दम् अभितः श्रुत्वा दयापरवशः शोभापरः श्रीधरः दीक्षितः अमरः (अमरसिंहः) प्रत्येकं नमते (पुनः) च एभ्यः मुनिभ्यः माङ्गल्यं लभते । (अतः) च अन्ते अपरं गुरुं श्रीलालचन्द्रं प्रति सः अधिसेवं प्रसीदतितराम् ।

अर्थ—सबके जयकार के शब्द को चारों ओर से सुनकर दयालु शोभाधायी (सुन्दर) कीर्त्तिशाली दीक्षित अमरसिंह मुनि प्रत्येक मुनि को नमन करते हैं । और इन मुनिराजों से माङ्गल्य प्राप्त करते हैं । साथ ही अन्त में अनन्य गुरुदेव श्रीलालचन्द्र मुनिराज की सेवा में परम प्रसन्न रहते हैं ।

(२४)

ज्ञातस्यापि विधेः पुनः पुनरयं वृत्तिं समावर्त्तते ,
अभ्यासं सुगमं करोति सततं शब्दानुशब्दं स्वयम् ।
विश्वासं लभते गुरोर्निरलसश्चालङ्करोति क्रियाम् ,
आधत्ते नियमं विधातुमभयं ज्ञप्तानुगो गच्छति ॥

अन्वयः—दीक्षाप्राप्त्यनन्तरम्—अयम् अमरसिंहः मुनिः ज्ञातस्य अपि विधेः पुनः पुनः वृत्तिं समावर्त्तते । स्वयं निरलसः सन् शब्दानुशब्दम् अभ्यासं सततं सुगमं करोति । गुरोः विश्वासं लभते, क्रियाम् अलङ्करोति, नियमम् आधत्ते, ज्ञप्तानुगश्च अभयंविधातुं गच्छति ।

अर्थ—दीक्षा प्राप्ति के पश्चात– ये अमरसिंह मुनि ज्ञात हुई भी विधि का बार-बार आवर्त्तन करते हैं । स्वयं आलस्य-रहित होकर शब्दानुशब्द अभ्यास को निरन्तर सुगम बनाते हैं । गुरु महाराज के विश्वसनीय होते हैं, क्रिया को शोभित करते हैं, नियम पालते हैं और केवली भगवान् के बताए मार्ग के अनुगामी होकर अभय बनाने के लिए अब आगे बढ़ते हैं ।

(२५)

आलस्यं प्रथितं बुधैरिह सदा प्रत्यर्थिभावं दधत्
तस्माद् यो यतते विहाय सहसालस्यं क्रिया वर्त्तितुम् ।
कर्माणि क्षिणुते स एव हि जनो जीवानुबन्धीन्यरम्
कृत्वैवं हृदयेऽमरो मुनिरयं जागर्त्ति रात्रिंदिवम् ॥

अन्वयः— सदा इह बुधैः आलस्यं प्रत्यर्थिभावं दधत् प्रथितम् (अस्ति) तस्मात् यः सहसा आलस्यं विहाय क्रियां वर्त्तितुं यतते । सः एव हि जनः जीवानुबन्धीनि कर्माणि अरं हि क्षिणुते—एवं कृत्वा अयम् मुनिः अमरः (अमरसिंहः) रात्रिन्दिवं जागर्त्ति ।

अर्थ—सदा इस संसार में ज्ञानियों ने आलस्य को शत्रुता रखने वाला बताया है । इसलिए जो मनुष्य एक साथ आलस्य को छोड़कर क्रिया बरतने के लिए प्रयत्न करता रहता है, वही मनुष्य जीवानुबन्धी कर्मों को शीघ्र काट डालता है । इस प्रकार सोचकर ये अमरसिंह मुनि दिन-रात जगते रहते हैं ।

(२६)

आत्मानं प्रथते व्यथां विकुरुते चित्तं समालम्बते
दातुं प्रेरयते धनं परहिते चित्ते स्वयं मोदते ।
आधिं व्याकुरुते कलां वितनुते पापात् परावर्त्तते
आधत्ते हृदयं सदा गुरुजने सिंहो मुनिः शोभते ॥

अन्वयः—साम्प्रतं गुरुदेवस्यान्ते वसन्—(अयम् अमरसिंहः मुनिः) आत्मानं प्रथते (प्रख्यापयति), व्यथां विकुरुते (पीडां नाशयति), चित्तं समालम्बते (दृढीकरोति), परहिते धनं दातुं प्रेरयते, चित्ते स्वयं मोदते, आधिं व्याकुरुते, कलां वितनुते, पापात् परावर्त्तते, सदा गुरुजने हृदयम् आधत्ते, एतादृशः सन् सिंहः (मुनिसिंहः) शोभते ।

अर्थ—अब गुरुदेव के शिष्य बनकर—ये श्री अमरसिंहजी महाराज आत्मा को प्रख्यापित करते हैं, व्यथा को नष्ट करते हैं, चित्त को निश्चल बनाते हैं, परहित के विषय में भक्तों को धन देने के लिए प्रेरित करते हैं, अपने हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं, मनोव्यथा को विश्लेषित करते हैं, कला का विस्तार प्रकट करते हैं, पाप को समझकर दूर बैठते हैं, सदा गुरुओं के विषय में श्रद्धा रखते हैं । ऐसे होकर वे सिंह (मुनिसिंह) शोभा प्राप्त करते हैं ।

(२७)

नित्यं सोऽनुमितप्रभावमसकृद् देवं गुरुं शासकम् ,
नत्वैवं कुरुते यथाव्यवहृतं कार्यं च वैधानिकम् ।
येनास्य प्रकृतेर्जनाः परिचयं प्राप्तुं भवेयुस्ततः ,
शक्ताश्चास्य गुरुर्महानविरतं कार्याय तं प्रेषते ॥

अन्वयः—नित्यं सः अनुमित प्रभावं शासकं गुरुं देवम् असकृत् नत्वा यथाव्यवहृतं वैधानिकं कार्यं कुरुते। एवञ्च जनाः अस्य प्रकृतेः परिचयं प्राप्तुं शक्ताः भवेयुः, येन अस्य महान् गुरुः ततः तं कार्याय अविरतं प्रेषते।

अर्थ – इस प्रकार नित्य ही वे प्रभावी शासक गुरुदेव बार-बार वन्दना कर व्यवहृत का अतिक्रमण न कर विहित कार्य करते रहते हैं। अतः एव, 'मनुष्य इनकी प्रकृति से परिचित हो सके, इनके महान गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी महाराज उपाश्रय से आपको कार्य के लिए बाहिर भेजते रहते हैं।

(२८)

आज्ञप्तस्त्वयमेव याति विहितां भिक्षां विधातुं ततः ,
प्रत्यागच्छति सोऽमितप्रखरया वृत्त्या समायोजितः ।
शंसन्ते सुजना नयेन सहितं मार्गे चरन्तं मुनिम् ,
दृष्ट्वेमं सरलं स्वभावमहितं पूज्यं स्वतो भाविनम् ॥

अन्वयः—ततः तु अयम् एव आज्ञप्तः विहितां भिक्षां विधातुं याति, अमितप्रखरया वृत्या समायोजितः सः प्रत्यागच्छति। इमं स्वभावमहितं सरलं मुनि मार्गे चरन्तं दृष्ट्वा सुजनाः स्वतः भाविनं पूज्यं नयेन सहितं शंसन्ते।

अर्थ—फिर तो ये ही आज्ञप्त हो, विधिकल्पित भिक्षा करने के लिए जाने लगे। पूर्णप्रखर वृत्ति से समायोजित वे भिक्षा से लौटकर आते, तब इन स्वभाव-सुन्दर सरल मुनि को मार्ग में चलते हुए देखकर भावुक श्रावक अपने आप भावी पूज्य नय के साथ कहने लगते हैं। क्योंकि 'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात' यह एक नय है।

(२९)

संसारेऽतुलितप्रभावमहिमप्रव्यक्तकीर्त्तिर्जनः ,
सम्प्राप्तुं प्रथितं प्रशस्तपरिधिग्रस्तं पदं प्रेक्ष्यते ।
न्यायेनेति मिथः सुचर्चितकथः सेर्यापथोनिर्व्यथः ,
पन्थानं कथितापथं स सुपथीकर्त्तुं प्रवृत्तोऽमरः ॥

अन्वयः—विज्ञैः 'संसारे अतुलित प्रभाव महिम प्रव्यक्त कीर्त्तिः जनः प्रशस्तपरिधिग्रस्तं पदं सम्प्राप्तुं प्रेक्ष्यते' इति न्यायेन प्रथितं (विद्यते)। (तेनैव) मिथः (अयं) सुचर्चितकथः निर्व्यथः सेर्यापथः सः अमरः (अमरसिंहो मुनिः) कथितापथं पन्थानं सुपथीकर्त्तुं प्रवृत्तः (अस्ति)।

अर्थ—वेत्ताओं ने संसार में असाधारण प्रभाव के महत्त्व से स्पष्ट कीर्ति वाला मनुष्य, प्रख्यात पराकाष्ठा से युक्त पद को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, ऐसा माना है। इस न्याय के अनुसार स्थान स्थान पर जिनकी कहानियों की चर्चा हैं ऐसे निर्द्वन्द्व ईर्यापथ के पथिक वे मुनि अमरसिंहजी अपथ कहे जाने वाले मार्ग को सुमार्ग बनाने के लिये अब आगे बढ़ रहे हैं।

(३०)

उद्योक्तुं क्षमते स्वबुद्धिविभवोद्भूतां प्रभां रीतिशः ,
व्याख्यानादधिगन्तुमेव सनुतीः प्रख्यातयुक्तेः शतम् ।
सम्प्राप्तुं परतस्तथापि महतीं शक्तिं प्रकृष्टामयम् ,
सिंहोऽसौ क्रमते वने सुसघने गर्जन् यथा निर्भयम् ॥

अन्वयः—अयं मुनिः स्वबुद्धि-विभवोद्भूतां प्रभां रीतिशः उद्योक्तुं प्रख्यातमुक्तेश्च व्याख्यानात् एव नुतीः शतम् अधिगन्तुं क्षमते, तथापि परतः महतीं प्रकृष्टां शक्तिं सम्प्राप्तुं यथा सिंहः सुसघने वने गर्जन् निर्भयं क्रमते, तथा अयम् अपि निर्भयं क्रमते।

अर्थ—ये मुनि अपने बुद्धि-विभव से उत्पन्न प्रभा की रीति के अनुसार उद्योजित करने के लिए और प्रख्यात युक्ति वाले व्याख्यान से शतशः प्रशंसायें प्राप्त करने के लिए क्षमता रखते हैं, तथापि और से अथवा दूसरे से बड़ी प्रकृष्ट शक्ति को अधिगत करने के लिये निर्भय आगे बढ़ रहे हैं जैसे सुसघन वन में सिंह गरजता हुआ निर्भय चला ही चलता है, रुकने का नाम नहीं लेता।

(३१)

अयं समादाय मुनेर्व्रतं पुनर्मुनिक्रियानित्यविधेरुपासिता ।
निरन्तरं सम्प्रति तस्य रक्षणे समाहितस्तिष्ठति तत्त्वचिन्तकः ।

अन्वयः—अयम् (अमरसिंहः) मुनेर्व्रतं समादाय पुनः निरन्तरम् मुनिक्रियानित्यविधेः उपासिता सम्प्रति तस्य (व्रतस्य) रक्षणे समाहितः तत्त्व चिन्तकः तिष्ठति ।

अर्थ—ये (अमरसिंह जी) मुनि के व्रत को ग्रहण कर तदनन्तर निरन्तर मुनियों की क्रियाओं और नित्यविधियों की उपासना करते हुए अब उस व्रत के रक्षण के विषयों में समाहित होकर तत्त्व का चिन्तन करते हैं ।

(३२)

अधीत्य शास्त्रागमसंग्रहं स्वतस्ततश्च कैवल्यधरैः पुरस्कृतम् ।
प्रयाति धर्मं वचनैः समादिशन् गुरूपदिष्टेन पथामरो मुनिः ॥

अन्वयः—ततश्चस्वतः शास्त्रागमसंग्रहम् अधीत्य कैवल्यधरैः (महापुरुषैः) पुरस्कृतं धर्मं वचनैः समादिशन् अमरः (अमरसिंहः) गुरूपदिष्टेन पथा प्रयाति ।

अर्थ—तदनन्तर अपने आप शास्त्र और आगम के संग्रहों का अध्ययन कर केवली महापुरुषों के द्वारा पुरस्कृत धर्म का प्रवचनों से प्रचार करते हुए मुनि अमरसिंहजी गुरु के उपदिष्ट मार्ग से प्रयाण करते हैं ।

(३३)

अतः परं सर्गविभाजनेच्छया नवीनमन्यन्ननु वर्णनं मुनेः ।
निरीक्ष्य सर्गं रचितं चतुर्थकं समारभे सम्प्रति पुष्करो मुनिः ॥

अन्वयः—अतः परं मुनेः (अमरसिंहस्य) अन्यत् नवीनं वर्णनं निरीक्ष्य सर्गं विभाजनेच्छया सम्प्रति रचितं चतुर्थं सर्गम् अहम् पुष्करः मुनिः समारभे ।

अर्थ—इसके पश्चात् मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज के दूसरे नवीन वर्णन को देखकर सर्ग विभाजन की इच्छा से अब रचे हुऐ चतुर्थ सर्ग का मैं पुष्कर मुनि आरम्भ किया चाहता हूँ ।

(३४)

अथ कवित्वमतीव रसायनं किमपि मेऽद्भुतमेव परीक्षणम् ।
निरुपमं कविशेखरमाश्रयाद् मृतमपीत्यमरं विदधात्यदः ॥

अन्वयः—अथ कवित्वं किमपि रसायनम् (अस्ति), मे अतीव अद्भुतम् परीक्षणं (विद्यते) (यतोहि) अदः (कवित्वं कर्तृ) निरुपमं मृतम् अपि जनम्, आश्रयात् एव अमरम् कविशेखरम् विदधाति। न तु सेवनादिति। इत्याक्षिप्तोऽर्थः।

अर्थ—हो न हो, यह कवित्व कोई न कोई रसायन है, मेरा बड़ा ही अनोखा यह परीक्षण है। क्योंकि (यह कवित्व) उपमारहित मरे हुए भी मनुष्य को, रसायन के आश्रयमात्र से अमर कवि शिरोमणि बना देता है। किन्तु रसायन के सेवन से नहीं। ऐसा यह अर्थ 'इति' आक्षिप्त होता है।

(३५)

सरसं ललितं नियोजितं सुपदैरेव महाकवेरिदम् ।
लभते महिमानमेव तत् न तु काव्यं पदसंग्रहः कवेः ॥

अन्वयः—महाकवेः इदं सरसं ललितं सुपदैः एव नियोजितम् काव्यं महिमानं लभते, किन्तु कवेः पदसंग्रहः एव तत् काव्यम् भवेत् इति तु न अस्ति।

अर्थ—महाकवि का यह सरस, ललित और सुपदों से नियोजित काव्य महत्व प्राप्त करता है, किन्तु कवि का पदों का संग्रह ही वह काव्य बन जाय, ऐसा तो नहीं होता, जिससे कि महत्व प्राप्त होता हो इसलिए काव्य वही है जो सरस, ललित और सुपद नियोजित हो। वरना तो वह सब शब्दों का एक ढ़ेर ही है। ऐसा समझना चाहिये।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
तृतीयः सर्गः

❀

चतुर्थः सर्गः

(१)

जयति स शुक्लविवसनाचार्यो यस्य पादपङ्कजस्मरणम् ।
मार्गं मे विदधाति पवित्रं दोर-सहित-मुख-वाससो मुनेः ॥

अन्वयः—सः शुक्लविवसनाचार्यः जयति, यस्य पादपङ्कजस्मरणं दोर-सहितमुखवाससः मुनेः मे मार्गं पवित्रं विदधाति ।

अर्थ—उस शुक्ल एवं विशिष्ट वस्त्र वाले आचार्य की जय हो, जिसके चरण कमलों का स्मरण ही, डोरे के साथ मुख पर वस्त्र वाले मुनि, मेरे मार्ग को पवित्र करता है ।

(२)

सेवायां मुनिमण्डले प्रभवति स्थित्वा गुरोः सम्प्रति ,
व्यासक्तः स्वयमेवमेव सकलान् भक्तान् जनान् श्रावकान् ।
उद्बोध्य प्रतिभक्तमेव नियतं धर्मं यथावस्थितम् ;
शास्त्रोक्तं चरितुं ततोमुनिरिमान् सङ्गन्तुमिच्छत्ययम् ॥

अन्वयः—दीक्षाप्राप्त्यनन्तरम्—सम्प्रति मुनिमण्डले स्थित्वा गुरोः सेवायां व्यासक्तः स्वयमेव (अयम् अमरसिंहो मुनिः) सकलान् भक्तान् एवं श्रावकान् जनान् प्रभवति । ततः प्रतिभक्तं शास्त्रोक्तं नियतं धर्मं यथावस्थितं चरितुम् उद्बोध्य (पुनः) इमान् (भक्तान्) एव सङ्गन्तुम् इच्छति ।

अर्थ—दीक्षा प्राप्ति के पश्चात—अब मुनियों के मण्डल में रहकर गुरु महाराज की सेवा-शुश्रूषा में संलग्न होकर स्वयं ही ये अमरसिंहमुनिजी सब भक्तों को और इसी प्रकार श्रावक पुरुषों को प्रभावित करने लगते हैं। तदनन्तर आए हुए प्रत्येक भक्त को शास्त्रोक्त नियत धर्म का यथावस्थित आचरण करने के लिए उद्बोधन कर, फिर उन भक्तों को संत्संग के लिए प्रेरणा करते हैं ।

---

० सर्गेऽस्मिन्नपि शार्दूलविक्रीडितमेव । लक्षणं पूर्वमुक्तमेव

(३)

उद्युङ्क्ते वचनानुसारमधुना सत्कर्त्तुमेवं मुनिः ,
तस्मात्ते मुदिता सदैव मनुजा उद्युञ्जते स्वाशिषा ।
कल्याणं भवतात्तवेति, हसता प्रत्यक्षमित्युच्यते ,
कल्याणं सरलं भवेद् यदि पुनर्मह्यं न तद् रोचते ।

अन्वयः—अधुना (आगतान् भक्तान् श्रावकान् वा) वचनानुसारं सत्कर्त्तुं मुनिः (अमरसिंहः) उद्युङ्क्ते । तस्मात् (वचनादरत्) सदा ते मुदिताः मनुजाः 'तव कल्याणं भवतात् इति स्वाशिषा उद्युञ्जते । (तदा श्रुत्वा आशिषं) हसता मुनिना अमरसिंहेन उच्यते—यदि कल्याणम् (इयत्) सरलं भवेत् (पुनस्तु) तत् (इताहक्) सरलं कल्याणं मह्यं न रोचते । अर्थात् वचनेनैव तत्कल्याणं प्राप्तं न शक्यते ।

अर्थ—अब आए हुए उन भक्तों अथवा श्रावकों का सत्कार करने के लिये मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज वचनों से जब प्रयत्न करने लगते हैं तो वे प्रसन्न हुए मनुष्य अपने आशीर्वचन से जैसे कि आपका कल्याण हो । उस आशीर्वचन को सुनकर हँसते मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज ने कहा कि यदि कल्याण इतना सुलभ है तो फिर उस ऐसे सुलभ कल्याण की मुझे चाह नहीं है । अर्थात् केवल कहने मात्र से उसको प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसके लिए बहुत कुछ करना पड़ता है ।

(४)

शङ्कन्ते भुवने स्थितस्य विषये तत्त्वस्य लोका इमे ,
तस्मात्ते यदपि प्रथाप्रचलितं जानन्ति तद् वास्तवम् ।
कुर्वन्त्वद्भुतमेव कृत्यमपरं तत्त्वातिरिक्तं च ये ,
नष्टाशाः प्रजयन्ति ते पुनरिदं सर्वं भवेत् कर्मणा ॥

अन्वयः—दुःखस्य विषयोऽयम्—यत् अस्मिन् भुवने इमे लोकाः स्थितस्य तत्त्वस्य विषये शङ्कन्ते । तस्मात् (शङ्किताः) ते यदपि प्रथाप्रचलितं तद् वास्तवं जानन्ति । ये तत्त्वातिरिक्तम् अपरम् अद्भुतम एव कृत्यम् कुर्वन्ति, (परिणामे) नष्टाशाः ते पुनः इदं 'सर्वं कर्मणा भवेत्' इति प्रथयन्ति अर्थात् कर्म स्वीकृत्यापि कर्म कृन्तितुं न यतन्ते ।

अर्थ—दुःख की बात यह है कि इस संसार में ये मनुष्य निश्चित तत्त्व के विषय में सन्देह करते हैं । इससे शङ्कित होकर वे जैसा भी कुछ चला आ रहा है, उसको वास्तव मान लेते हैं । और जो तत्त्वातिरिक्त दूसरा अनोखा ही कृत्य कर बैठते हैं, अन्त में हताश होकर वे फिर यह कहते हैं कि सब कर्म से होता है । अर्थात् कर्म को मानकर भी कर्म को काटने के लिए प्रयत्न नहीं करते ।

(५)

मृत्यवन्ते पुनरन्यजन्मनि जनोभुङ्क्ते फलं कर्मणः ,
शास्त्रोक्तं विधिवत्करोति निहितं निश्चित्य तत्त्वं महत् ।
सर्वोऽसौ फलमीषतेऽपि भविकः कालेन जन्मान्तरे ,
तत्किं केवलमेवमेव वचनात् कल्याणवन्तो वयम् (?) ॥

अन्वयः—वास्तविकं चैतदस्ति–यत् मृत्यवन्ते पुनः जनः अन्यजन्मनि कर्मणः फलं भुङ्क्ते । (अतः) महत् तत्त्वं निश्चित्य (यः) शास्त्रोक्तं निहितं विधिवत् करोति, असौ सर्वः अपि भविकः कालेन जन्मान्तरे फलम् ईषते । तत् किं केवलं वचनात् एव वयम् एवम् कल्याणवन्तः भवितुं शक्नुमः ? अपितु भवितुं न शक्नुमः ।

अर्थ—और वास्तविक बात यह है कि मरण के पश्चात् फिर हर एक व्यक्ति दूसरे जन्म में फल देखता है, किए का परिणाम भोगता है, यह सिद्धान्त है । इसलिए जो इस महान् तत्व का निश्चय कर शास्त्रोक्त अर्थ का क्रिया के अनुसार पालन करता है, वही प्राणी कालक्रम से दूसरे जन्म में किए का परिणाम भोगता है। तब क्या हम केवल कहने मात्र से कल्याणवान् हो सकते ? अपितु नहीं हो सकते ।

(६)

इत्येतद् वचनं यथाश्रुति पुनर्गच्छद्भिरन्यैः श्रुतम् ,
तैः सर्वैः परिपृच्छ्यते तदखिलं कस्मादिदं गद्यते ।
श्रुत्वैतत् समुदीर्यते यदिह तज् जातं जनोपस्थितौ ,
नव्येनैव तु दीक्षितेन मुनिना सत्यं समाधायि यत् ॥

अन्वयः—मुनि प्रतिबोधितम्—इति एतद् यथाश्रुति वचनं गच्छद्भिः अन्यैः (जनैः) (अपि) श्रुतम् । तै सर्वैः (श्रोतृभिः) परिपृच्छ्यते, तद् अखिलम्, इदं कस्मात् गद्यते ? एतद्-श्रुत्वा इह जनोपस्थितौ नव्येन दीक्षितेन मुनिना एव तु सत्यं समाधायि, यत् जातं तद् (सर्वं) समुदीर्यते ।

अर्थ—मुनिश्री के प्रतिबोधन का यह यथाशास्त्र वचन, जाते हुए दूसरे मनुष्यों ने भी सुना । उन सब श्रोताओं ने पूछा कि यह सब ऐसा क्यों कहा गया ? यह सुनकर, जनता की उपस्थिति में जो भी कुछ-नवीन दीक्षित मुनिजी ने ही सत्य का समाधान किया—हुआ वह सब बता दिया । यह जानकर वे सब आश्चर्य से चकित हो गये कि नये मुनि ने ही जब ऐसा समाधान किया है तो और मुनिजन कैसे क्या होंगे ।

(७)

जिज्ञासाप्युदिता यथायथमहो कोऽयं मुनिर्विद्यते ,
प्रष्टुं तेऽपि परस्परं मुनिममुं चिन्वन्ति प्रश्नान् बहून् ।
प्रश्नानुत्तरितान् विबुध्य मनसा सत्यप्रियाः प्राश्निकाः ,
सम्भूताः समुपेत्य तं मुनिवरं तिष्ठन्ति चित्रार्पिताः ॥

अन्वयः—सम्प्रति तेषामाश्चर्यचकितानां श्रोतृणाम्—अहो कः अयं मुनिः यथायथं विद्यते इति अपि जिज्ञासा उदिता (अभवत्) । (अतः) तेऽपि अमुं मुनिं परस्परं प्रष्टुं बहून् प्रश्नान् चिन्वन्ति । (मुनेः सकाशात्) प्रश्नान् उत्तरितान् मनसा विबुध्य सत्यप्रियाः प्राश्निकाः तं मुनिवरं समुपेत्य चित्रार्पिताः (इव) सम्भूताः तिष्ठन्ति ।

अर्थ—अब उन आश्चर्यचकित श्रोताओं की—अरे कौन यह मुनि है—ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हुई । इसलिए वे भी उन मुनिजी से परस्पर में प्रश्न करने के लिए अनेक प्रश्न चुन लेते हैं । मुनिजी से प्रश्नों को उत्तरित हुए हृदय से जानकर सच्चे प्रश्नकर्त्ता उन मुनिजी के पास जाकर चित्रलिखित के समान एकत्र होकर खड़े रहते ।

(८)

भाषाविज्जनताविशेषहृदये विश्वस्तशब्दश्रुतिः ,
आह्लादं परमं प्रदाय सुनुतिं विश्वासभाषाजनिम् ।
प्राप्येयं ध्वनति प्रकाशपरिधेः पारे विलङ्घ्याधुना ,
त्रैलोक्यादधिके विशिष्टप्रकृति ब्रह्माण्ड भाण्डं मुनेः ॥

अन्वयः—मुनेरमरसिंहस्य भाषाज्ञानं शब्दोच्चारणञ्च परमं प्रसिद्ध मासीत् । मुनेः इयं विश्वस्तशब्दश्रुतिः भाषाविज्जनता विशेषहृदये परमम् आह्लादं प्रदाय विश्वासभाषाजनिं सुनुतिं प्राप्य अधुना विशिष्टप्रकृति ब्रह्माण्ड भाण्डं विलङ्घ्य त्रैलोक्यात् अधिके प्रकाशपरिधेः पारे ध्वनति ।

अर्थ—मुनि अमरसिंहजी महाराज का भाषाज्ञान और शब्दोच्चारण बहुत प्रसिद्ध था—मुनिराज की यह विश्वस्त शब्द श्रुति, भाषाओं के जानकार प्रमुख मनुष्यों के हृदय पर परम हर्ष देकर, विश्वास और भाषा से उत्पन्न प्रशंसा-स्तुति प्राप्त कर अब विशिष्ट प्रकृति के जगत् रूप वर्त्तन को उलांघ कर त्रिलोकी से दूर प्रकाश की परिधि से परे झनकार रही है ।

(९)

वाणीं यो मधुरां निकामसरसां सर्वप्रियां भाषते ,
आचारं सुविधं प्रसन्नमनसा युङ्क्ते सतां सम्मतम् ।
मेघोऽसौ समये सुवर्षणपरः निर्दोषविश्वम्भरः ,
सोऽवोचत् परमप्रभावमहिते मानुष्यके मण्डले ॥

अन्वयः—अयं मुनिः सरसवक्ता, परमक्रियावादी यथोचितविशद वक्ता च आसीत्—यः निकामसरसां सर्वप्रियां मधुरां वाणीं भाषते सतां सम्मतं सुविधम् आचारं प्रसन्नमनसा युङ्क्ते, समये निर्दोषविश्वम्भरः—सुवर्षणपरः मेघः (वर्त्ततेस्म) असौ, सः (एतादृशोऽमरसिंहोमुनिः) परमप्रभाव महिते मानुष्यके मण्डले अवोचत् ।

अर्थ—ये मुनि सरसवक्ता, परमक्रियावादी और यथोचित खुलकर बोलने वाले थे—जो अत्यन्त रसीली, सबको प्यारी, मीठी बोली बोलते थे, सन्तों के सम्मत सुविध आचार का प्रसन्नचित्त से प्रयोग करते थे, और दोष-रहित संसार के रक्षक, समय पर खूब बरसने वाले मेघ थे—ऐसे श्री अमरसिंहजी मुनि बड़े रुवाब-दबाव वाले मनुष्यों के समुदाय में भाषण दिया करते थे ।

(१०)

कः श्रेयान् परमप्रकृष्टविधिना प्रश्नेऽमरो भाषते ,
ज्ञानं यस्य, परन्तु कोऽपि न विधिर्नासौ प्रशस्यो जनः ।
एवं यस्य विधिर्न चास्ति परतः सोऽप्यस्ति तद्वत्स्वयम् ,
किन्त्वेकोविशिनष्टियोऽस्ति परमो ज्ञानक्रियाभ्यां युतः ॥

अन्वयः—कस्यापि मुनिममरसिंहं प्रति—परमप्रकृष्टविधिना श्रेयान् पुरुषः कः अस्ति इति प्रश्ने सति मुनिः अमरसिंहः भाषते—यस्य ज्ञानम् (अस्ति), सः श्रेयान् अस्ति । परन्तु यस्य ज्ञानं तु (वर्त्तते), कः अपि विधिः (क्रिया) न अस्ति (स ज्ञानवांस्तु अस्ति, सोऽपि क्रियावान् पुरुषः स्वयं तद्वत् प्रशस्यजनवत् न अस्ति—अर्थात् प्रशस्यो नास्ति । किन्तु यः पुरुषः ज्ञानक्रियाभ्याम् युतः अस्ति, स एकः परमः विशिनष्टि—अर्थात् स एव सर्वप्रशस्तो विद्यते ।

अर्थ—किसी के, मुनि श्री अमरसिंहजी से—सर्वोत्कृष्ट विधि के साथ श्रेष्ठ पुरुष कौन हो सकता है, ऐसे प्रश्न किए जाने पर मुनिजी श्री अमरसिंहजी महाराज ने बताया कि जो ज्ञानी है, वह सर्वश्रेष्ठ है । परन्तु जो ज्ञानी तो है, क्रियावान् नहीं है, वह प्रशस्य पुरुष नहीं हो सकता और इसी प्रकार जो क्रियावान् है किन्तु ज्ञानी नहीं है, वह भी प्रशस्य नहीं हो सकता । किन्तु जो ज्ञान-क्रिया इन दोनों से युत है, वह अकेला ही परम विशिष्ट है, अर्थात् वही सर्वप्रशस्त है ।

(११)

स ब्रूते स्वयमेव सूक्तिमपरां संशुद्धचित्तो मुनिः ,
सन्त्येके मनुजाः परं सुनिरतं निन्दन्ति सेच्छं जनम् ।
आत्मानं प्रथयन्ति सज्जनतमं ते सन्ति निन्द्याः स्वयम् ,
नैरोग्याय ददाति भेषजमिवान्यस्मै हितायात्मनः ॥

अन्वयः—उक्तं विषयं लक्ष्यीकृत्य–सः मुनिः स्वयम् एव अपरां सूक्तिं ब्रूते तद्यथा–आत्मनः हिताय कोऽपि नैरोग्यं लब्धुम् अन्यस्मै पुरुषाय भेषजं ददाति । (संसारे) एके मनुजाः (एतादृशः) सन्ति, (ये) परं जनं सेच्छं सुनिरतं निन्दन्ति, आत्मानं च सज्जनतमं प्रथयन्ति । ते मनुजाः सूक्त्यनुसारं स्वयं निन्द्याः सन्ति ।

अर्थ—उक्त बात को लक्ष्य बनाकर—वे मुनिजी अपने आप ही एक दूसरी सूक्ति कहते हैं, जैसे कि अपने भले के लिये कोई व्यक्ति कि, मैं स्वस्थ हो जाऊँ, इसलिए वह किसी दूसरे व्यक्ति को औषध देता है । संसार में कुछ दूसरे मनुष्य ऐसे भी हैं कि जो दूसरे मनुष्य की भरपेट निरन्तर निन्दा करते रहते हैं और स्वयं को बड़ा अच्छा सिद्ध करते हैं । ऐसे मनुष्य सूक्ति के अनुसार निन्दनीय हैं ।

(१२)

संसर्गोऽधिकरोति सत्त्वमधिकं सौजन्यदौर्जन्ययोः ,
हा ! तस्मात्पतति प्रभावमहितो देवोपमः सज्जनः ।
सत्पुष्पप्रचयप्रसंगसुकृतिः प्रव्यक्तरत्नाकृतिः ,
संसर्गं समवाप्य शावमशुभं माला स्खलत्यादरात् ॥

अन्वयः—सम्प्रति मुनिः संगति महत्त्वं निर्दिशति—सौजन्यदौर्जन्ययोः संसर्गः सत्त्वम् अधिकम् अधिकरोति, तस्मात् हा ! प्रभावमहितः देवोपमः सज्जनः पतति । यथा—अशुभं शावम् संसर्गं समवाप्य सत्पुष्पप्रचयप्रसंग सुकृतिः प्रव्यक्तरत्नाकृतिः माला आदरात् स्खलति ।

अर्थ—अब मुनिराज सङ्गति के महत्त्व का निर्देश करते हैं—सुजनता और दुर्जनता के विषय में सङ्गति प्राणि पर अधिक अधिकार जमाती है । इस सङ्गति के कारण, विषाद होता है कि परम प्रभावी देवतुल्य सज्जन पुरुष पतित बन जाता है । जैसे—अच्छे पुष्पों के साथ सुघड़ झिलमिलाते रत्नों की आकृति वाली माला शव (लाश) के अशुभ संसर्ग को पाकर आदर से रहित हो जाती है ।

(१३)

इत्थं सोऽविरतं सदा विहरति प्रज्ञानुसारक्रियः ,
आदेशं च गुरोर्निधाय शिरसा सङ्केतविद्योतितम् ।
मार्गे तं मुनिमाक्षिपन्ति कुधियः पृच्छन्ति गूढं मतम् ,
क्षन्त्वा तान् सहजस्वभावरहितानच्छोद्य जंगम्यते ॥

अन्वयः—इत्थं सदा सः प्रज्ञानुसारक्रियः अमरसिंहो मुनिः गुरोः सङ्केतविद्योतितम् आदेशं शिरसा निधाय अविरतं विहरति। मार्गे कुधियः (जनाः) तं मुनिम् आक्षिपन्ति, गूढं मतं (च) पृच्छन्ति, किन्तु (अयम्) तान् सहज स्वभावरहितान् क्षन्त्वा अच्छोद्य जंगम्यते।

अर्थ—इस प्रकार सदा वे प्रज्ञा के अनुसार क्रिया करनेवाले श्री अमरसिंह मुनिराज गुरुदेव के सङ्केत से विद्योतित आदेश को शिरोधार्य मानकर निरन्तर विहार करते थे। मार्ग में कुबुद्धि के मनुष्य उन मुनिराज पर आक्षेप करते और गूढ़ मत को पूछते थे। किन्तु (आप) उन कुटिल आक्षेप्ताओं को क्षमाकर अच्छा-अच्छा कहकर निरन्तर जल्दी-जल्दी प्रस्थान करते रहते थे।

(१४)

लोकास्ते वचनप्रयुक्ति सहितानुद्बोधितानुत्तरान्[1] ,
श्रुत्वेमान् सुपरस्परं कुशलिनः सद्बुद्धिमन्तः स्वतः ।
शंसन्ते सततक्रियानुभविनः सद्ज्ञानमूर्त्तेर्मुनेः ,
माहात्म्यं परमं नितान्तमसकृत् सज्ज्योतिराविष्कृतम् ॥

अन्वयः—तथापि ये बुद्धिमन्तोजनाः सन्ति–ते लोकाः वचनप्रयुक्ति सहितान् इमान् उत्तरान् श्रुत्वा सद्बुद्धिमन्तः कुशलिनः सन्तः स्वतः सतत क्रियानुभविनः सद्ज्ञानमूर्त्तेः मुनेः परमं सज्ज्योतिराविष्कृतं माहात्म्यम् असकृत् सुपरस्परं नितान्त शंसन्ते।

अर्थ—इतने पर भी जो समझदार थे –वे मनुष्य कहने के ढंग के साथ इन उत्तरों को सुनकर विवेकी निपुण होकर अपने आप क्रियारत सद्ज्ञान की मूर्त्ति मुनि महाराज के विशिष्ट पवित्र प्रकाश से आविष्कृतत माहात्म्य की बार-बार खूब परस्पर में प्रशसा करते थे।

---

१. उत्तरशब्दे पुंस्त्वमर्द्धचादिराकृतिगणत्वात्समाधेयम्।

(१५)

वैदुष्यस्य विशिष्टयुक्तिसरणेरस्य प्रभावं मुनेः ,
संज्ञातुं मनसो विकारमसितुं स्थानान्तराद् धाविताः ।
सम्भूता मनुजा अरं प्रतिदिनं व्यञ्जन्ति चित्रं महत् ,
आहोस्वित् सततं भ्रमन्ति मनसः शङ्कां निवृत्त्य स्वतः ॥

अन्वयः—अपरेऽपि केचन जिज्ञासवः—अस्य विशिष्टयुक्तिसरणेः मुनेः वैदुष्यस्यप्रभावं संज्ञातुम् मनसश्च विकारम् असितुं प्रतिदिनम् स्थानान्तरात् धाविताः सम्भूताः मनुजाः अरं महत् चित्रं व्यञ्जन्ति । आहोस्वित् (ते मनुजाः) स्वतः मनसः शङ्कां निवृत्त्य सततं भ्रमन्ति ।

अर्थ—दूसरे भी कुछ जिज्ञासु—इन, प्रमुख युक्तियों का मार्ग है जिनका ऐसे मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज के वैदुष्य का प्रभाव भलीप्रकार समझने के लिए और मन में मैल को दूर करने के लिए प्रतिदिन स्थान-स्थान से दौड़कर एकत्रित हुए मनुष्य हमेशा बड़ा अचम्भा प्रकट करते थे, अथवा वे मनुष्य अपने आप मन के सन्देह मिटाकर निरन्तर घूमते-फिरते थे ।

(१६)

सन्तं तं विमलप्रभावमतुलं द्रष्टुं समस्ता जनाः ,
आयान्ति क्रमशो मनोज्ञमनसो भक्त्युन्मुखा नित्यशः ।
आश्चर्यं त्विदमेव ते प्रतिदिनं चायान्ति गच्छन्त्यपि ,
किं त्वेते कृतदर्शना अपि जनाः प्रत्युत्सुकाः केवलम् ॥

अन्वयः—मुनेः विशिष्टज्ञानदर्शनात्—समस्ताः जनाः तम् अतुलं विमलप्रभावं सन्तं द्रष्टुं भक्त्युन्मुखाः मनोज्ञमनसः नित्यशः क्रमशः आयान्ति । किन्तु आश्चर्यम् इदम् एव (आसीत्) (यत्) ते प्रतिदिनम् आयान्ति च गच्छन्ति अपि, एते कृतदर्शना अपि केवलम् (द्रष्टुं) प्रत्युत्सुका एव (आसन्) ।

अर्थ—मुनिराज के विशिष्ट ज्ञान और दर्शन के कारण सभी मनुष्य उस अनुपम विमल प्रभाव सन्त के दर्शन के लिए भक्त भावुक होकर नित्य एक के बाद एक आते ही रहते थे । किन्तु आश्चर्य तो यह था कि प्रतिदिन आने-जाने पर भी दर्शन किए हुए भक्त, फिर भी दर्शन के लिए उत्कण्ठित ही रहते थे ।

(१७)

आयातान् जनसंकुलान् प्रतिहरित् दृष्ट्वा परं मोदते ,
किन्तूत्कान् सुतरामयं रमयितुं शङ्काः शतं पृच्छति ।
आतोषं विगलन् कुतर्कमपरं निश्शङ्कमुट्टङ्कते ,
शङ्कन्ते तमिमं मुनि स्वहृदये स्वेच्छागतं गौतमम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति—प्रतिहरित् आयातान् जनसंकुलान् दृष्ट्वा मुनिः परं मोदते। किन्तु उत्कान् जनान् सुतरां रमयितु शतं शङ्काः पृच्छति। आतोषम् अपरं कुतर्कं विगलन् अयं मुनिः निश्शङ्कम् उट्टङ्कते। (निश्शङ्कम् उट्टङ्कमानं) तम् इमम् मुनिम् आयाताः जनाः स्वहृदये स्वेच्छागतं गौतमं शङ्कन्ते।

अर्थ—अब—प्रत्येक दिशा से आये हुए जनसमूहों को देखकर मुनिजी बहुत प्रसन्न होते थे। किन्तु उत्कण्ठित पुरुषों को आनन्दित करने के लिए सैकड़ों शङ्काएँ पूछने लगते थे। किन्तु जब तक सन्तोष न हो, तब तक दूसरे कुतर्क को मिटाते हुए वे निश्शङ्क बोलते ही रहते। इसलिए आये हुए मनुष्य अपने हृदय में अपनी इच्छा से आये गौतम हों-ऐसी शङ्का करने लगते थे।

(१८)

दृष्ट्वेमं परमं हसन्तमनिशं सन्तं परे मन्वते ,
स्याच्चैतत् स्वयमेव ये दिविषदो भ्राम्यन्ति पारे जगत् ।
आत्मानं विशदं सुवैभवपरं मन्वन्त आनन्दतः ,
मिथ्यैषेति मतिः परा दिविषदा तस्मादयं मोदते ॥

अन्वयः—मुनिमिमं सदा प्रसन्नं दृष्ट्वा जनास्तर्कन्ते—जनाः परमं हसन्तम् सन्तम् इमं दृष्ट्वा परे मन्वते—यत् एतत्—ये दिविषदः स्वयमेव पारे-जगत्, आत्मानं विशद सुवैभवपरम् मन्वते, (अतस्ते) आनन्दतः—भ्राम्यन्ति, इति तेषां दिविषदां मतिः एषा—परा मिथ्या अस्ति। तस्मात् अयं मुनिः मोदते। अर्थात् अहं भूमावेव स्थितः परमस्तपोधनोऽस्मि !

अर्थ—मनुष्य सदा इन मुनिजी को प्रसन्न देखकर तर्क करते हैं—कि हो न हो, ऐसा जान पड़ता है कि जो देवगण स्वयं ही दुनिया भर में—अपने आप को परम वैभव सम्पन्न मानते हैं, इसलिए मौज उड़ाते फिरते हैं—ऐसा उनका विचार बिल्कुल थोथा है। इस कारण से ये मुनिजी सम्भवतः हँसते-करते हैं। अर्थात मैं पृथ्वी ही रहकर परम तपोधन हूँ। मेरे सामने तुम क्या हो !

(१९)

भावं दीपयति प्रथां रचयति प्रज्ञानमालम्बते ,
श्रद्धां स्थापयति प्रभां स्थिरयति व्यामोहमुल्लंघते ।
क्षोभं दूरयति प्रभावमसमं लोके समुत्पादयन् ,
याति प्रातरयं शरीररचितां शौचक्रियां वर्तितुम् ॥

अन्वयः—साधुः परकार्यं साध्नोति—तस्मात् अयं मुनिः (अमरसिंहः) साधुः सन् (यदा) प्रातः शरीररचितां शौचक्रियां वर्त्तितुं याति, (तदा) लोके भावं दीपयति, प्रथां रचयति, प्रज्ञानम् आलम्बते, श्रद्धां स्थापयति, प्रभां स्थिरयति, व्यामोहम् उल्लंघते, असमं प्रभावं समुत्पादयन् क्षोभं दूरयति ।

अर्थ—साधु पर-हित के लिए कार्य करता है, अतः वह साधु कहलाता है—इसलिए आप (मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज) जब प्रभात में शरीर के द्वारा रचित शौचक्रिया को वरतने के लिए जाते थे, तब संसार में भाव को दीप्त करते थे, प्रथा को जन्म देते थे, प्रज्ञान का सहारा लेते थे, श्रद्धा को जमाते थे, धाक को कायम रखते थे, व्यामोह को अधःकृत रखते थे, और असाधारण प्रभाव को पैदा करते हुए क्षोभ को दूर करते थे ।

(२०)

निर्वृत्तञ्च विधेस्ततो मुनिममुं पृच्छन्ति जिज्ञासवः ,
प्रश्ने सोऽभ्यदधात् विशेषविषये चाध्यात्मविद्यात्मके ।
आत्मा यत्स्पृशति श्रयं नियमतो द्वेषस्य रागस्य वा ;
तद्बद्धो लभते व्यथां तदितरो मुक्तश्च मोमुद्यते ॥

अन्वयः—ततः विधेः निर्वृत्तम् अमुं मुनिं जिज्ञासवः (श्रावकाः) विशेष विषये अध्यात्मविद्यात्मके प्रश्ने (किञ्चित्) पृच्छन्ति । अतः सः (मुनिः अमरसिंहः) अभ्यदधात् यत्यदा च आत्मा द्वेषस्य वा रागस्य श्रयं नियमत स्पृशति, तदा द्वेषरागाभ्यां बद्धः (आत्मा) व्यथां लभते, रागद्वेषाभ्याम् इतरः (आत्मा) च मोमुद्यते ।

अर्थ—तदनन्तर शौचादि क्रिया से निर्वृत्त इन मुनिजी से जिज्ञासु श्रावक विशेष विषय वाले अध्यात्मविद्या सम्बन्धी प्रश्न के विषय में कुछ पूछते हैं, तब मुनि श्री ने कहा कि जब आत्मा, द्वेष अथवा राग के आश्रय को नियम से छूने लगती है, तब रागद्वेष से बँधी हुई आत्मा दुःख का अनुभव करती है और रागद्वेष से पृथक हुई आत्मा निरन्तर हर्ष ही हर्ष का अनुभव करती है। अर्थात आत्मा विशुद्ध होती है, किन्तु संसर्ग से सुखी-दुःखी हो जाती है ।

(२१)

प्रापन्नान् महिमानमाप्तसुविधानभ्युद्यतान् सम्पदे ,
जिज्ञासूनयमेव पृच्छति मुनिर्धर्मं दधीरन्न वा ।
पृष्टास्ते समुदीरयन्ति भगवन् कुर्मो वयं दर्शनम् ,
साधूनां खलु दर्शनं भवति नो मुक्त्यै परं कारणम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति अयमेव मुनिः महिमानम् प्रापन्नान् सम्पदे अभ्युद्यतान् आप्त सुविधान् जिज्ञासून् पृच्छति (यत् भवन्तः) धर्मं दधीरन् वा न ? पृष्टाः ते समुदीरयन्ति, हे भगवन् ! वयं साधूनां दर्शनं कुर्मः । (यतो हि) साधूनां) दर्शनं खलु नः मुक्त्यै परं कारणं भवति ।

अर्थ—सम्प्रति ये ही मुनिराज प्रख्यात, सम्पत्ति के लिए सर्वथा सन्नद्ध, जिनको सुविधाएँ प्राप्त हैं, ऐसे उन जिज्ञासुओं से प्रश्न करते हैं कि धर्म करते हो कि नहीं ? पूछे गये वे कहने लगे कि हम तो मुनियों के दर्शन करते हैं । क्योंकि यह निश्चय है कि मुनिजन का दर्शन मुक्ति प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ कारण है। अर्थात् दर्शन करते हैं और कुछ नहीं करते ।

(२२)

उद्धारो भवतां विना सुकृतिभिश्शक्योऽपि किं विद्यते ,
अस्मान्मे मतमस्ति सत्यमपरं कृत्वा च तद् दर्शनम् ।
युष्माभिः क्रियतां तपस्तु सततं कर्मक्षयोऽयं भवेत् ,
अन्ते यूयमतो भवेत नु परे मुक्तेः पदं गामिनः ॥

अन्वयः—केवलं दर्शनादेव कार्य्यं न फलति—अतो मुनिना प्रश्नः क्रियते—किं भवताम् उद्धारः सुकृतिभिः विना अपि शक्यः (अस्ति), अर्थात् शक्यो नास्ति । अस्मात् मे मतम् अस्ति, यत् तत् दर्शनं कृत्वा युष्माभिः तु तपः सततम् क्रियतां—अपरं सत्यम् (इदं) यत्–अयं कर्मक्षयश्च भवेत् । अतः अन्ते परं यूयम् मुक्ते पदं गामिनः नु भवेत ।

अर्थ—केवल दर्शन से कार्य नहीं फलता—इसलिए मुनिराज ने प्रश्न किया-कि क्या आपका उद्धार बिना सुकर्मों के शक्य है, अर्थात हो सकता है । तो उत्तर—'नहीं हो सकता' यही आता है । इससे मेरा मत तो यही है कि उस दर्शन को छोड़-कर तुमको तो सदा तप करना चाहिए, और दूसरा सत्य यह भी है कि कर्मों को क्षय भी हो जायेगा । हो सकता है कि परिणाम में तुम तब मुक्ति के स्थान के अधिकारी ही बनजाओ ।

(२३)

सद्ज्ञानाद् मनुजो न जातु कमपि क्लेशं वहत्यात्मना ,
तद्धेतु बहिरेव चास्ति नियतं तस्माद्विकारः कुतः ।
स्वच्छात्मा स्वत एव संलसति यद् रत्नत्रयेणामुना ,
तेनाहं प्रथयामि चिन्मयमिमं जीवं सदा रक्षत ॥

अन्वयः—सम्यग् ज्ञानमपि यूयमुपासयेत—(यतोहि) सद्ज्ञानात् मनुजः जातु आत्मना कमपि क्लेशं न वहति । (यतः) क्लेशस्य हेतुः बहिः एव नियतम् अस्ति, तस्मात् (आत्मनि) विकारः कुतः (आगच्छेत्) । यद् अमुना रत्नत्रयेण स्वच्छात्मा स्वत एव संलसति तेन अहन्तु प्रथयामि यद् यूयम् इमं चिन्मयं जीवं सदा रक्षत ।

अर्थ—सम्यक्ज्ञान भी तुमको प्राप्त करना चाहिये—क्योंकि सम्यक्ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य कभी स्वयं किसी क्लेश को नहीं झेलता । क्योंकि क्लेश का कारण बाहर ही नियत है । इससे आत्मा में विकार कहाँ से पहुँचे ? कारण यह है कि रत्नत्रय से शुद्ध आत्मा स्वतः ही प्रतिष्ठित रहती है । इससे मैं तो यही बताता चला आ रहा हूँ कि तुम इस चेतन जीव की सदा रक्षा करो ।

(२४)

प्रश्नोऽयं भवति व्यथामनुभवन्नात्मा विशुद्धः कथम् ,
तस्मात्ते वचनं न सम्यगिति नश्चित्ते विभामो वयम् ।
पृष्टोऽसौ प्रथते मुनिः सविशदं प्रश्नस्य तथ्याशयम् ,
शुद्धोऽवश्यमसौ परन्तु यदि यो रागादि बद्धो भवेत् ॥

अन्वयः—तदा ते जिज्ञासवोऽवोचन्—हे भगवन् ! प्रश्नः अयं भवति (यद्) व्यथाम् अनुभवन् आत्मा शुद्धः कथं भवितुं शक्ष्यति ? तस्मात् नः चित्ते ते वचनं सम्यक् न (अस्ति) इति वयं विभामः । पृष्टः सन् असौ मुनिः प्रश्नस्य तथ्याशयं सविशदं प्रथते—अवश्यम् असौ आत्मा शुद्धः अस्ति, परन्तु यदि रागादिबद्धः यः आत्मा भवेत् तदा व्यथाम् अनुभवेत् ।

अर्थ—तब वे जिज्ञासु श्रावक कहने लगे कि महाराज ! प्रश्न यह है कि व्यथा का अनुभव करती हुई यह आत्मा शुद्ध कैसे हो सकेगी ? इससे हमारे मन में आपका कथन ठीक नहीं लगता—ऐसा हम सोचते हैं । पूछे गये वे मुनि (श्री अमरसिंहजी महाराज) प्रश्न के वास्तविक अभिप्राय को बताते हैं कि यह आत्मा अवश्य शुद्ध है, किन्तु जब यह रागादि से बँधी हुई रहती है तो यह सुख-दुःख का अनुभव करने लगती है ।

(२५)

आशङ्कामसितुं प्रदेशमतितुं धर्मक्रियां वर्त्तितुम् ,
वृत्तिं साधयितुं प्रथां गमयितुं विश्वासमुद्योतितुम् ।
नित्यं योऽयतताऽऽसदातनतमं धर्मं समाबोधयन् ,
आसीत्सोऽमरसिंहदेव इतिह प्रासादमौलिर्मुनिः ॥

अन्वयः—मुनिः कविः परिचाययति – यः आशङ्काम् असितुम्, धर्मं क्रियां नर्त्तितुम्, वृत्तिं साधयितुम्, प्रथां गमयितुम्, विश्वासम् उद्योतितुम् आसदातनतमं धर्मं समाबोधयन् नित्यम् अयतत, स इतिहप्रासादमौलिः मुनिः अमरसिंहदेव आसीत् ।

अर्थ—कवि मुनि का परिचय कराता है कि—जिसने शङ्का को दूर करने के लिये, स्थान-स्थान पहुँचने के लिये, धर्मक्रिया को बरतने के लिये, वृत्ति को साधने के लिये, रीति को व्यवस्थित करने के लिये सदा से चले आने वाले धर्म को बताते हुए प्रयत्न किया, वे इतिहास के प्रासाद के मस्तक मुनि श्री अमरसिंहजी ही थे ।

(२६)

सायुज्येन विहृत्य भारतभुवो देश-प्रदेशान् बहून् ,
जैनान् यः समबोधयत् प्रतिपदं जैनं परं शासनम् ।
ज्ञप्तोक्तं विशदं प्रयुक्तिसुलभं हृद्यानवद्यं शुभम् ,
सिद्धोऽभूदयमेव साधुसरणौ धन्वप्रधानो मुनिः ॥

अन्वयः—भारतभुवः बहून् देश-प्रदेशान् सायुज्येन विहृत्य यः प्रतिपदं जैनान् ज्ञप्तोक्तं शुभं हृद्यानवद्यं प्रयुक्तिसुलभं परं जैनं शासनं समबोधयत् अयमेव मुनिः साधुसरणौ धन्वप्रधानः सिद्धः अभूत ।

अर्थ—भारत भूमि के अनेक छोटे-बड़े स्थानों पर सायुज्य के साथ विहार कर जिन्होंने स्थान-स्थान पर जैन जगत् को ज्ञप्तोक्त, शुभ, प्रिय और पवित्र प्रयुक्तिप्राप्य महान् जैनशासन स्पष्टता से समझाया। वे ही ये मारवाड़ में प्रधान अथवा प्रमुख मुनिराज साधु मार्ग में सफल संस्थापक थे ।

(२७)

कर्त्तव्ये प्रथमः क्रियासु कुशलः शास्त्रोदधौ पारगः ,
निष्णातो गहने विधौ सुविषमे विश्वे स्वयं सारवित् ।
उद्युक्तः प्रसृतप्रमादविगमे गन्ता स्थले दुर्गमे ,
विख्यातो जगतीतले मुनिरयं सिंहस्वरूपोऽमरः ॥

अन्वयः—सिंहस्वरूपः अयं मुनिः अमरसिंहः कर्तव्ये प्रथमः, क्रियासु-कुशलः, शास्त्रोदधौ पारगः, गहने विधौ निष्णातः, सुविषमे विश्वे स्वयंसार-वित्, प्रसृतप्रमादविगमे उद्युक्तः, दुर्गमे स्थले गन्ता, जगतीतले विख्यातः (अस्ति)।

अर्थ—सिंहस्वरूप ये मुनि श्री अमरसिंहजी कर्तव्य में प्रथम, क्रियाओं में कुशल, शास्त्ररूप सागर में पारगामी, गहन विधि में निपुण, महाविषम संसार में स्वयं तत्त्ववेत्ता, फैले हुए प्रमाद के निरसन में उद्युक्त (और) दुर्गम अर्थात् अगम्य स्थल में जाने वाले विश्वविख्यात पुरुष थे। अर्थात् वे अपने समय के सर्वगुणसम्पन्न मुनि थे।

(२८)

सर्वज्ञस्य जिनेश्वरस्य परमं ज्ञप्तं तु धर्मं मरौ ,
वीरस्यैव यथोदितं प्रचरितुं श्वेताम्बरः स्थानकौ ।
द्वाविंशोत्तममण्डली भगवतोऽगच्छन्मुनियों मरुम् ,
सोऽयं मेऽमरसिंह एव मुनिषु श्रेष्ठो विशिष्टोऽभवत् ॥

अन्वयः—मरौ देशे सर्वज्ञस्य जिनेश्वरस्य भगवतः वीरस्य परमं ज्ञप्तं तु धर्मं यथोदितं प्रचरितुं यः श्वेताम्बरः स्थानकौ द्वाविंशोत्तममण्डली मुनिः मरुम् अगच्छत्, अयं सः मुनिषु श्रेष्ठः मे विशिष्टः अमरसिंहः अभवत्।

अर्थ—मारवाड़ देश में सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के परम ज्ञप्त धर्म को जैसा कहा गया है, उसका अतिक्रमण न कर प्रचार करने के लिये जो श्वेताम्बर स्थानकवासी बाईस सम्प्रदाय के मुनि मरुदेश पहुँचे, वे ये ही मुनिओं में श्रेष्ठ मेरे विशिष्ट श्री अमरसिंह जी महाराज थे।

(२९)

यस्य ज्ञानविशेषसूर्यकिरणैर्दिव्यैर्नवैर्निर्मलैः ,
विद्वन्मानसपुष्करं प्रतिदलं शोभाविकाशं दधत् ।
आलोकं जनमण्डलं प्रभवितुं धर्मप्रभाभूषया ,
माहात्म्यं त्वधुनामरस्य च मुनेस्तस्यापि संराजते ॥

अन्वयः—यस्य नवैः निर्मलैः दिव्यैः ज्ञानविशेषसूर्यकिरणैः विद्वन्-मानस पुष्करं प्रतिदलं शोभाविकासं दधत् आलोकं जनमण्डलं धर्मप्रभा-भूषया प्रभवितुं तस्य मुनेः अमरस्य (अमरसिंहस्य) माहात्म्यं तु अधुना अपि संराजते ।

अर्थ—जिसकी नई निर्मल दिव्य ज्ञानविशेषसूर्य की किरणों से विद्वानों के हृदय कमल को, कली-कली की छटा के साथ धारण करता हुआ, संसार भर के मनुष्यों को धर्म की ज्योति से भूषित कर प्रभावित करने के लिए उन मुनि श्री अमरसिंह जी महाराज का माहात्म्य तो अब भी विद्यमान हैं ।

(३०)

निकामं प्रव्यक्तुं यदपि न हि मे कापि सुगतिः ,
तथापीमं ख्यातुं मनसि मम जाता रुचिरियम् ।
अतोऽहं विख्यातं सुगुणिगणनायाः शिखरिणम् ,
तदग्रे सर्गेऽमुं पुनरपि मुनिं तं व्यभिदधे ॥

अन्वयः—यदपि निकामं प्रव्यक्तुं मे का अपि सुगतिः न हि अस्ति, तथापि इमं मुनिं ख्यातुं मम मनसि इयं रुचिः जातास्ति । अतस्तद् अहं पुनरपि अग्रे सर्गे तं सुगुणिगणनायाः शिखरिणं विख्यातं मुनिं व्यभिदधे ।

अर्थ—यद्यपि पूर्णरूपेण वर्णन करने की मुझ में कोई भी शक्ति नहीं है, तथापि इन मुनि महाराज के वर्णन करने की मेरे मन में यह इच्छा है कि मैं फिर भी आगे के सर्ग में उन महान् गुणिओं की गिनती के शिखरी विख्यात मुनि महाराज का और वर्णन करूँ ।

(३१)

न कोऽपि कवितामहं यदि रचेय सेच्छं कदा ,
शृणोति भवता समो मयि कृपां निधायाप्यसौ ।
कविर्न सहते पुनः सुपदमेकमस्या अहो ,
करोमि ननु साहसं तदपि ते दयायाः फलम् ।

अन्वयः—कविः कथयति—कदापि सेच्छं अहं यदि कवितां रचेय (तदा तां) कः अपि न शृणोति, यदि भवता समः असौ तां शृणोत्यपि, ततस्तु, अहो, कविः अस्याः (मम कवितायाः) एक सुपदमपि न सहते । तथापि अहं (कवितायै) साहसं करोमि, तदपि हे सज्जनश्रोतः ! ते दयायाः फलम् (अस्ति) । (यत् त्वं शृणोषि ।

अर्थ—कवि कहता है कि जब कभी इच्छा से मैं कविता की रचना करूँ तो कोई सुनता नहीं है, और यदि आपके समान कोई मुझ पर दया कर सुनता भी है तो फिर मैं क्या बताऊँ ! ये कवि मेरी कविता की बात तो दूर रही, उसके पद्य का एक पद भी नहीं सहन कर पाते । (इससे मेरा निराश होना स्वाभाविक है) । फिर भी मैं जो कविता के लिए साहस करता हूँ, वह भी हे सज्जन ! आपकी दया का फल है कि जो आप सुनते हो, अन्यथा तो कौन पूछे !

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
चतुर्थः सर्गः

❀

पंचमः सर्गः

(१)

अथ प्रज्ञप्तात्माऽशरणशरणो मङ्गलभुवम् ,
अखण्डब्रह्माण्ड-प्रथितमहिमानं जिनवरम् ।
स्वतो नामं नामं जगति जयिन:प्राणिनिवहान् ,
जनिं लेभे लोकाममरमुनिरेवं व्यवसितुम् ॥

अन्वयः—अथ अशरणशरणः प्रज्ञप्तात्मा अमरमुनिः मङ्गलभुवम् अखण्डब्रह्माण्डप्रथितमहिमानम् जिनवरम् स्वतः नामं नामं प्राणिनिवहान् एवं लोकन् जयिनः व्यवसितुं जगति जनिं लेभे ।

अर्थ—दीक्षाग्रहणानन्तर अशरणों के शरण प्रज्ञप्तात्मा अमरसिंहजी महाराज ने मङ्गलस्थान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रख्यात है महिमा जिसकी ऐसे जिनेश्वर भगवान् को स्वतः बारं बार नमन कर प्राणियों के समूहों को और इसी प्रकार मनुष्य को विजयी बनाने के लिए जगत् में जन्म ग्रहण किया था, यह सिद्ध कर दिखाया ।

(२)

शुभं वर्षावासं मुनिजनमनोज्ञं ज्ञविहितम् ,
समाप्येमं गन्तुं गुरुजनसमेतोऽमरमुनिः ।
मतिं चक्रे शश्वत्त्वमरसरनामेति नगरम् ,
इदं शिष्यस्थानं दशमगुरुगोविन्दरचितम् ॥

अन्वयः—ततः इमम् ज्ञप्तविहितम् मुनिजनमनोज्ञम् शुभं वर्षावासम् समाप्य गुरुजनसमेतः अमरसिंहमुनिः अमरसरनामेति नगरम्, यत् इदं नगरं तु दशमगुरुगोविन्दरचितम् शिष्यस्थानम् (अस्ति ।), गन्तुं शश्वत् मतिं चक्रे ।

अर्थ—तदनन्तर इस ज्ञ-विहित मुनिजन के प्रिय शुभ वर्षा के आवास अर्थात् चतुर्मास को पूर्णकर गुरुजनों के साथ अमरसिंह जी महाराज अमरसर नाम के नगर जो कि दशमेश गुरुगोविन्दसिंहजी महाराज का रचित, सिक्खों का बसाया हुआ है, को जाने के लिए बारबार विचारने लगे ।

---

० सर्गेऽस्मिन् 'शिखरिणी यमौ नसौ भ्लौ गुरुरुद्राः ।'

(३)

अतोऽसौ श्रीमन्तं प्रथितगुरुदेवं वदति तम् ,
अहं द्रष्टुं याचे यदि समयदेशं समुचितम् ।
विशालं तत्स्थानं परममनुकूलं भवति ते ,
ततस्तेनाप्युक्तं मदनुमतिरित्येव समये ॥

अन्वयः—अतः असौ अमरसिंहो मुनिः तं प्रथितगुरुदेवं वदति, यदि ते तत् विशालं स्थान परमम् अनुकूलं भवति, (तदा) समुचितम् समयदेशं च (निरीक्ष्य) अहम् (अपि) द्रष्टुं याचे। ततः तेन अपि उक्तम् यत् समये मदनुमतिः इति एवास्ति।

अर्थ—इसलिए वे श्रीअमरसिंह जी महाराज अपने प्रसिद्ध गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी मुनिराज से कहने लगे—यदि वह विशाल स्थान अधिक अनुकूल हो तो समुचित काल-क्षेत्र के अनुसार मैं भी उस स्थान को देखना चाहता हूँ। यह सुनकर—गुरुदेव श्रीलालचन्द्रजी महाराज ने भी कहा कि मेरी तो अनुमति है ही, परन्तु समय पर देखिए।

(४)

अथैकस्मिन् काले परमसुदिने मङ्गलमयम् ,
प्रभातं भास्वन्तं दिनकरमिमे चातिसुगमम्।
प्रवीक्ष्य प्रस्थानं विमलमुनयस्ते विदधति ,
अतो हर्षं-हर्षं विहरति सतां मण्डलमिदम् ॥

अन्वयः—अथ एकस्मिन् परम सुदिने काले मङ्गलमयं प्रभातं अतिसुगमं च भास्वन्तं दिनकरम् प्रवीक्ष्य इमे विमलमतयः (मुनयः) ते प्रस्थानं विदधति। अतः सताम् इदं मण्डलं हर्षं हर्षं विहरति।

अर्थ—वर्षावास के पीछे एक परमसुदिन समय पर मङ्गलमय प्रभात और मन्दमन्द चमकते हुए सूर्य को देखकर ये विमलबुद्धि के मुनि ही प्रस्थान कर देते हैं। इसलिए सन्तों का यह मण्डल हरसता हुआ विहार करता जा रहा है।

(५)

प्रतिग्रामं गत्वा विरमति विधेयं गमयितुम् ,
सतां रात्रौ शेते विमलशुभगं मण्डलमिदम् ।
कृतप्रातःकृत्यं शमयति निशो व्यावहृतिकम् ,
अतः सन्तस्त्वेते प्रतिकृतिविधानं विदधति ॥

अन्वयः—सतां विमलशुभगम् मण्डलम् विधेयं गमयितुम् प्रतिग्रामं गत्वा विरमति, रात्रौ (च) शेते। कृतप्रातः कृत्यम् इदम् मण्डलम् निशः व्यावहृतिकं शमयति। अतः एते सन्तः प्रतिकृतिविधानं विदधति।

अर्थ—इस प्रकार मुनियों का सिंघाड़ा जो कि शान्तदान्त है, विधेय को साधने के लिए ग्राम-ग्राम पहुँचकर विराम करता है और रात्रि होने पर शयन करता है, प्रातः कृत्य करने वाला यह मुनिमण्डल रात्रि के व्यावहृतिक को शान्त करता है। अतः प्रत्येक सन्त, प्रतिकृति के कर्त्तव्य को पूरा करता है, सो ये भी तदनुसार करते चले जा रहे हैं।

(६)

गृहस्था आगत्य त्रिकृतिजनकं कर्म नमनम् ,
विधायान्ते स्थित्वा सुखकरविधि शान्तिसुलभम् ।
यथाधर्मं पृष्ट्वा विहितसुविधायै प्रयतितुम् ,
प्रजिज्ञासन्ते तेऽभिदधति न वाचं श्रमणकाः ॥

अन्वयः—गृहस्थाः आगत्य त्रिकृतिजनकं नमनं कर्म विधाय अन्ते स्थित्वा, सुखकरविधि शान्तिसुलभं यथाधर्मं पृष्ट्वा विहितसुविधायै प्रयतितुम् प्रजिज्ञासन्ते। किन्तु श्रमणकाः वाचं न अभिदधति।

अर्थ—ज्ञात होने पर कि मुनिजन पधारे हैं तो श्रावक आकर तिखुत्तो सहित नमन कर्म कर सुखकर विधि वाले शान्तिसुलभ कार्य को धर्म के अनुसार पूछकर, मुनिजन के लिए कल्पित सुविधा के हित प्रयत्न करने के लिए बारबार जानने की इच्छा करते हैं। किन्तु छोटे मुनिजन कोई उत्तर नहीं देते। क्योंकि बड़े सन्त विराजे हुए हैं, जो वे चाहेंगे, सो हम करेंगे। इसलिए वे चुप हैं।

(७)

अतस्ते साशङ्काः प्रतिमुनि पिपृच्छां विदधति ,
ततस्तेषां शङ्कां निरसितुमनास्तामरमुनिः ।
अवोचन्तां वाणीं शमयति सदा या विमनसम् ,
गृहस्थाः सन्तुष्टा अभिदधति निश्चप्रचवचः ॥

अन्वयः—उत्तराभावात्ते साशङ्काः (अभवन्) अतः प्रतिमुनि पिपृच्छां विद्धति । पिपृच्छां कुर्वतां तेषां ताम् पिपृच्छां निरसितुं (सः) अमरमुनिः ताम् वाणीम् अवोचत्, या वाणी सदा विमनसं (पुरुषं) शमयति । ततः ते गृहस्थाः (श्रावकाः) तां वाणीं श्रुत्वा सन्तुष्टाः सन्तः निश्चप्रचवचः अभिदधति ।

अर्थ—उत्तर के अभाव के कारण साशङ्क हो गये और इसीलिए वे मुनि-मुनि से पिपृच्छा करने लगे कि क्या बात हुई जिससे मुनियों में से कोई कुछ नहीं कहता। पिपृच्छा करने वाले उन श्रावकों की उस शङ्का को दूर करने के लिए वे अमरसिंहजी मुनि वह वाणी बोले, जो वाणी सदा असन्तुष्ट पुरुष को शान्त कर देती हैं । तदनन्तर वे श्रावक उस वाणी को सुनकर सन्तुष्ट हो, ठीक है, ऐसा होता ही है ऐसा कहने लगे ।

(८)

तदा ते सर्वेऽमुं मुनिजनवृतं वीक्ष्य ससुखम् ;
वदन्तं सत्सङ्गं सकलफलदं मोक्षसरणिम् ।
प्रसन्ना जायन्ते विविधविमताक्रान्तमनसः ,
गतास्ते तं द्रष्टुं नगरसुहृदो यान्तु वदितुम् ॥

अन्वयः—तदा ते सर्वे विविधविमताक्रान्तमनसः गृहस्थाः सकल फलदं मोक्षसरणिं सत्संगं वदन्तम् मुनिजनवृतम् अमुम् अमरसिंहमुनिं ससुखं वीक्ष्य प्रसन्नाः जायन्ते । (ततः च) ते नगरसुहृदः वदितुं गताः, (यतो हि तेऽपि) तं मुनिम् अमरसिंहं द्रष्टुम् यान्तु ।

अर्थ—तब वे सब अनेक विमतों से आक्रान्त मन वाले गृहस्थ सब फल देने वाले मोक्ष के मार्ग सत्सङ्ग को बताते हुए, मुनिजन से घिरे हुए उन श्री अमरसिंहजी महाराज को ससुख अच्छी तरह से देखकर आनन्दित हो उठते हैं । और फिर वहाँ से नगर के मित्रों को कहने के लिए चल देते हैं कि उन अमरसिंह मुनिजी को देखने के लिए आप सब भी चलिए ।

(९)

धरन्तं तं सन्तं धवलवसनं पात्रसहितम् ,
पदाति गच्छन्तं प्रथितमहिमानं मुनिवरम् ।
सवेत्रं सूर्णौधं क्रमिकगमनं वक्त्रपिहितम् ,
महान्तं संवीक्ष्यारमति सुतरां प्राणिनिवहः ॥

अन्वयः—प्राणिनिवहः पात्रसहितं धवलवसनं सवेत्रं सूर्णौघं धरन्तं क्रमिकगमनं वक्त्र पिहितं पदाति गच्छन्तं तं महान्तं सन्तं प्रथितमहिमानं मुनिवरं संवीक्ष्य आरमति ।

अर्थ—जनता, पात्रों के सहित, श्वेतवस्त्र, वेत्र के साथ श्रेष्ठ ऊन के ओघें को धारण किए हुए, धीरे-धीरे चलने वाले मुखवस्त्राच्छादित पैदल जाते हुए महान् सन्त कीर्त्तिशाली मुनिश्रेष्ठ श्री अमरसिंहजी महाराज को निहार कर आनन्द विभोर हो गई ।

(१०)

विहारं कुर्वन्तं नगरममृतं स्प्रष्टुमनसम् ,
जनाः पृच्छन्तीमं कथयतु कथङ्कारमिति यत् ।
गृहं त्यक्त्वा गच्छेत् सुघटिततमे भोगरुचिरे ,
शरीरे नाद्यापि श्रुतमतिकृतं नाप्यधिगतम् ॥

अन्वयः—तदा जनाः अमृतं नगरं स्प्रष्टुमनसं विहारं कुर्वन्तम् इमं मुनिम् अमरसिंहं पृच्छन्ति, यत् सुघटिततमे भोगरुचिरे शरीरे सति गृहं त्यक्त्वा गच्छेत् इति कथङ्कारं जातं कथयतु । यतोहि अद्यापि न श्रुतम् नापि अतिकृतम् अधिगतम् ।

अर्थ—तब मनुष्य, अमृतसर नगर को स्पर्श ने की इच्छावाले विहार करते हुए इन मुनिराज श्री अमरसिंहजी से प्रश्न करते हैं कि सुघड़ से सुघड़ भोगरुचिर शरीर के रहते हुए घर को छोड़कर चल दे ! —ऐसा कैसे हुआ ? आप बताइये । क्योंकि हमने न तो आज तक ऐसा सुना और नहीं आज तक ऐसा गजब ढाहने वाला पाया ।

(११)

ततस्तेनागादि प्रकृतिरिति पुण्या भगवताम् ,
सदापुण्येनेयं प्रभवति जनं सुन्दरतमम् ।
महापुण्यात्मानं विदितपरमं वैभवपरम् ,
सुधर्माणं भव्यं प्रथितयशसं तं गुणिवरम् ,

अन्वयः—ततः तेन मुनिना अमरसिंहेन अगादि यत भगवतां जनानां पुण्या प्रकृतिः इति । इयं प्रकृतिः सदा पुण्येनतं सुन्दरतमम् विदितपरमम् वैभवपरम् महापुण्यात्मानं प्रथितयशसं सुधर्माणं गुणिवरम् च भव्यं जनं प्रभवति ।

अर्थ—तदनन्तर उन मुनि श्री अमरसिंहजी ने कहा कि यह भगवान् महापुरुषों का स्वभाव है, क्योंकि पुण्यों का यह खेल है । इसलिए यह प्रकृति, उस सुन्दर से सुन्दर, प्रख्यात, धनाढ्य, महाभाग्यवान्, यशस्वी, धर्मात्मा परमज्ञानी और भव्य पुरुष पर अपना अधिकार रखती है । यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है । अतः आप सब समझने के अधिकारी नहीं है, ऐसा व्यंग्यार्थ है ।

(१२)

कृतेश्चित्रं मूल्यं स्थिरमतिमतां बुद्धिविभवा ,
प्रसिद्धिर्वैदुष्यं परमविदुषां ख्यातयशसाम् ।
सदा सच्चारित्रं प्रथितयमिनां ज्ञानमपरम् ,
मुनेर्वा माहात्म्यं प्रकृतिरिति सा भगवताम् ।।

अन्वयः—यथा कृतेः मूल्यं चित्रम् अस्ति, स्थिरमतिमतां प्रसिद्धिः बुद्धिविभवा विद्यते, ख्यातयशसां परमविदुषां वैदुष्यम् वर्त्तते, प्रथितयमिनां सच्चारित्रम् भवति, मुनेः माहात्म्यं वा अपरं ज्ञानं प्रसिद्धं जायते । एवमेव भगवतां महापुरुषाणां सा प्रकृतिः इति प्रसिद्धैवास्ते ।

अर्थ—इस विषय पर अधिक सोचने की कोई बात नहीं हैं । क्योंकि जैसे कृति का मूल्य आश्चर्य हैं, विचारकी प्रसिद्धि बुद्धि विभव है, प्रसिद्ध विद्वानों का वैदुष्य प्रसिद्ध होता है, प्रसिद्ध संयमियों की प्रसिद्धि का हेतु सच्चारित्र माना गया है, मुनि का माहात्म्य अथवा विशिष्ट ज्ञान प्रसिद्ध होता है, उसी प्रकार भगवपुरुषों की प्रकृति प्रसिद्ध हैं । अतएव यह सब प्रकृति के अनुसार है ।

(१३)

विरक्तेः सौरम्यं वदनमभितो रूपमधिकम् ,
दधानं तं सन्तं नमति सहसा प्राकृतजनः ।
तथैवान्ये ते के विकृतमतयो ज्ञानिनमिमम् ,
नमेयुर्नैवं नो गमितमहिमानोऽमरमुनिम् ॥

अन्वयः—अयं प्रकृत्या प्रभावी वर्त्तते स्म—विरक्तेः सौरम्यम् वदनम् अभितः अधिकं रूपं दधानं सन्तं तं (दृष्ट्वा) प्राकृतजनः (अपि) सहसा नमति । तथैव अन्ये ते के विकृतमतयः (स्युः) ये गमितमहिमानः सन्तः नः इमं ज्ञानिनम् अमरसिंह मुनिम् एवं न नमेयुः ।

अर्थ—आप प्रकृति प्रभावी थे—विरक्ति के सौरम्य मुख के चारों और अधिक रूप को धारण किए हुए उन सन्त महाराज को देखकर अल्पज्ञ मनुष्य भी एक साथ नमन करने लगता है । फिर उसके समान दूसरे वे कौन विकृतबुद्धि के हो सकेंगे, जो अपने को भुलाकर हमारे इन ज्ञानी मुनि श्री अमरसिंहजी महाराज को ऐसा नमन न करे । अर्थात् उनको देखते ही सभी नमन करने लगते थे ।

(१४)

बुभुक्षून् मांसस्य प्रतिदिनमतः प्रेमवचनैः ,
स्वकीये व्याख्याने दिशति रसपूर्क्तैर्मुनिरयम् ।
यदा त्वन्नेनैवं भवति भवतां पूर्णमुदरम् ,
किमर्थं हन्यन्ते पुनरिह तदा मूकपशवः ॥

अन्वयः—अस्मिन् प्रान्ते मांसाशनं स्वभावतोऽधिकं कुर्वन्तीत्यतः अयं श्रीमान् अमरसिंहः मुनिः स्वकीये व्याख्याने मांसस्य बुभुक्षून् जनान् रसपूर्क्तैः प्रेमवचनैः प्रतिदिनं दिशति, तद्यथा—यदा एवम् तु भवताम् उदरम् अन्नेन पूर्णं भवति, तदा पुनः इह मूकपशवः किमर्थं हन्यन्ते । अतो मूकपशूनां हिंसनं निरर्थकमित्यर्थः ।

अर्थ—इस प्रान्त में मांसाशन स्वभाव से अधिक करते हैं—अतः आप श्री अमरसिंहजी मुनिराज अपने व्याख्यान में मांस के बुभुक्षुमनुष्यों को करुणार्द्र प्रेम के वचनों से प्रतिदिन उपदेश करते थे, जैसे कि जब इस प्रकार आपका पेट अन्न से भर जाता है, तब फिर यहाँ बेजुबान जानवरों को किसलिए मारा जाता है । इसलिए मूक पशुओं की हिंसा निरर्थक है । धर्म की दृष्टि से तो कितना पाप हैं, वह तो फिर कहने की बात ही क्या ? अभी तो व्यवहार में ही, यह मांसाशन बेकार है ।

(१५)

भ्रमन्तीमे सन्तः परमशुचितां वृत्तिमभितः ,
ग्रहीतुं कर्त्तुं वा प्रतिगृहमतस्ते निरलसाः ।
अनाच्छन्नं मांसं नयति मुदितः कोऽपि सरणौ ,
नमन्तं तं दृष्ट्वा द्रवितहृदया दुःखमनयन् ॥

अन्वयः—यदा इमे सन्तः परमशुचिताम् वृत्तिम् अभितः कर्त्तुंवा ग्रहीतं ते निरलसाः अतः प्रतिगृहं भ्रमन्ति। किन्तु कोऽपि सरणौ मुदितः अनाच्छन्नं मांसं नयति, (मुनीश्चासौ नमति), तदा तं नमन्तं दृष्ट्वा द्रवित हृदयाः (मुनयः) दुःखम् अनयन्।

अर्थ—जब ये सन्त परम प्रासुक भिक्षावृत्ति को इधर-उधर करने अथवा ग्रहण करने के लिए इससे घर-घर घूम रहे थे। कि इतने ही में कोई रास्ते में प्रसन्न हो, बिना ढके हुए मांस को ले जा रहा था, (किन्तु उसने मुनियों को नमन किया), तब उस नमन करते हुए को देखकर कोमल हृदय के मुनिजन दुःखी हुए कि यह कितना अबोध है ! किन्तु विनयी है।

(१६)

न हेतुं हिंसायाः कमपि मनुते प्राकृतजनः ,
परन्त्वेतत्तथ्यं प्रियतममुं पुत्रमवितुम् ।
सहस्रं यत्नेभ्यो हितमुपगतो याति रचितुम् ,
अतो नित्यं सत्यं गणयति सुखं स्वार्थसहितम् ॥

अन्वयः—मनुष्योऽयं कियान् स्वार्थी विद्यते – प्राकृतजनः हिंसायाः कमपि हेतुं न मनुते, किन्तु अमुं प्रियतमम् पुत्रम् अवितुम् हितम् उपगतः (असौ प्राकृतजनः) सहस्रं हितं यत्नेभ्यः रचितुम् याति। अतः मनुष्यः स्वार्थसहितं सुखं गणयति–एतत् नित्यम् सत्यं निश्चीयते।

अर्थ—मनुष्य कितना स्वार्थी है—अबोध मनुष्य हिंसा का कोई कारण नहीं मानता, किन्तु अपने इस परमप्रिय पुत्र की रक्षा के लिए हितैषी बनकर वही अल्पज्ञ, हजारों हित यत्नों को कर-करके प्रस्तुत होता हैं, जैसे कि कोई हानि न पहुँचे। किन्तु दूसरों की जान लेता है। यह कितना बड़ा अनर्थ है। आखिर वह भी तो किसी का पुत्र है। इससे यह नित्य सत्य निश्चित होता है कि मनुष्य स्वार्थ के साथ सुख मानता है, पर हित अथवा हिंसा को वह कुछ नहीं समझता।

(१७)

ततोऽनुग्रामं ते प्रतिपदमतिक्रम्य सहसा ,
समागच्छन्नेतेऽमृतसरमिति ख्यातनगरम् ।
मुनीनामायानं श्रवणमधिगच्छन्ति शुभगम् ,
तदा ये भद्रास्ते सुलभसमया यान्त्युपमुनि ॥

अन्वयः—ततः ते मुनयो गुरुदेवं पुरस्कृत्य अनुग्रामं सहसा प्रतिपदम् अतिक्रम्य एते अमृतसरम् इति ख्यातनगरं समागच्छन् । तदा ये भद्राः मुनीनां शुभगम् आयानम् श्रवणम् अधिगच्छन्ति, ते सुलभसमयाः उपमुनि यान्ति ।

अर्थ—तदनन्तर वे मुनिजन गुरुदेव को पुरस्कृत कर ग्राम के बाद ग्राम, स्थान-स्थान पर पारकर एकसाथ प्रसिद्ध अमरसर पहुँचे । मुनिओं के शुभ आगमन को जो श्रावक सुनते हैं, वे समय प्राप्त कर मुनियों की सेवा में उपस्थित होते हैं ।

(१८)

त्रिकृत्वस्ते नन्तुं प्रतिमुनि विभक्ताः प्रतिपदम् ,
समायाता भक्ताश्चिरपरिचितं तं मुनिगणम् ।
सुखं शान्ति पृष्ट्वाऽभिदधति पुनश्चातिविनयम् ,
महान्तः पद्यन्ते विनयरसिका लोकसरणिम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति भक्ता विभक्ताः सन्तः प्रतिमुनि प्रतिपदं त्रिकृत्वः नन्तुं समायाताः, (ततश्च ते तं चिरपरिचितं मुनिगणं सुखं च शान्ति पृष्ट्वा पुनः अतिविनयम् अभिदधति । (यतो हि) महान्तः विनयरसिकाः सन्तः लोकसरणिं पद्यन्ते ।

अर्थ— अब भक्त विभक्त होकर मुनि-मुनि की ओर स्थान-स्थान पर वारत्रय अभिवादन करने के लिए उपस्थित हुए । और फिर सुख-शान्ति की पिपृच्छा कर फिर अतिविनय के साथ बातचीत करने लगे । क्योंकि बड़े मनुष्य विनय के प्रेमी बनकर संसार की रीति को निभाते हैं ।

(१९)

समागत्य स्थानं कृतवसतयो ज्ञानिमुनयः ,
भवन्ति प्रष्टव्याः प्रतिपुरजनं ते रमयितुम् ।
समूलं निर्मिथ्यं स्वमति परिणामावधि ततम् ,
समीक्ष्यान्तस्तत्त्वं विनिदधति सत्यं हृदि हृदि ॥

अन्वयः—विहारिणो मुनयः—स्थानं समागत्य कृतवसतयः ज्ञानिमुनयः (विराजन्ते) तदा ते प्रष्टव्याः भवन्ति । ते ज्ञानिनः (प्रश्ने सति) स्वमतिपरिणामावधि समूलं निर्मिथ्यं ततम् अन्तस्तत्त्वं समीक्ष्य प्रतिपुरजनं रमयितुं सत्यं हृदि हृदि विनिदधति ।

अर्थ—विहरणशील सभी मुनि—स्थानक पहुँचकर जब विश्राम करने वाले ज्ञानी मुनिराज विराजते हैं, तब वे जिज्ञासुओं के द्वारा प्रष्टव्य होते हैं । वे ज्ञानिजन प्रश्न होने पर अपनी बुद्धि के निचोड़ तक सिद्धान्त के अनुसार मिथ्यारहित विस्तृत रहस्य की समीक्षा कर प्रत्येक नागरिक को आनन्दित करने के लिए सत्य को सभी के हृदय में पूरी तरह जमा देते हैं ।

(२०)

यदा चेहायातान् समधिगतसद्धर्मविषयान् ;
जनानुद्बोद्धुं ते मतविमतयुक्तया प्रभवितुम् ।
समर्था एतेभ्योऽपि च तु परितोषं न ददति ,
तदा तान् सन्तोष्टुं मुनिरमरसिंहः प्रभवति ॥

अन्वयः—यदा च ते मुनयः इह आयातान् समधिगतसद्धर्मविषयान् जनान् मतविमतयुक्तया प्रभवितुं समर्थाः अपि, (तान् च प्रभवितुं) तु एतेभ्यः परितोषं न ददति, तदा (स्वयम्) अमरसिंहः मुनिः तान् जनान् सन्तोष्टुं प्रभवति ।

अर्थ—और जब वे मुनिजन यहाँ आये हुए धर्म के जानकार मनुष्यों को मत और विमत की युक्ति से प्रभावित करने के लिए समर्थ होते हुए भी उनको प्रभावित करने के लिए उनको परितोष न दे सके, तब स्वयं श्रीअमरसिंह जी मुनिराज उन प्रश्नकर्त्ता अथवा जिज्ञासु मनुष्यों को सन्तुष्ट करने के लिए प्रभाव डालते हैं। परिणामतः वे मनुष्य सन्तुष्ट होकर मुनिश्रीजी की वाह-वाह करते हैं ।

(२१)

निरस्तास्ते सर्वे सकलविकलोक्तेर्विचलिताः ,
समागत्य ज्ञातुं नियमसहितं पद्धतियुतम् ।
विधिं संप्रेहन्ते प्रथितनियमार्तकितविधेः ,
मुनेर्विद्यासिद्धेरमरसिंहादविरतम् ॥

अन्वयः—यदा सकलविकलोक्तेः विचलिताः ते सर्वे निरस्ताः, (तदा ते) स्थानकं समागत्य प्रथितनियमार्तकितविधेः विद्यासिद्धेः मुनेः अमरसिंहात् नियमसहितं पद्धतियुतं विधिम्-अरम् ज्ञातुम् संप्रेहन्ते ।

अर्थ—जब सभी विकलोक्ति से विचलित वे उत्तरों से निरस्त हो गए तब स्थानक आकर प्रख्यात नियमों से अच्छी तरह जानली गई है विधि जिसकी ऐसे विद्यासिद्ध मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज से नियम सहित पद्धति के साथ विधि को शीघ्र जानने के लिए बराबर चेष्टा करते हैं ।

(२२)

स्वदोषं संस्मृत्य प्रथितमहिमानं मुनिममुम् ,
नमन्ति स्पन्दन्ते विनयजयिनंसस्मितमुखम् ।
कराभ्यां प्रत्येकं चरणकमलेतस्य च मुनेः ,
स्वतः संस्पृश्येमे विनतवदनास्ते पदमितः ॥

अन्वयः—ततस्ते जिज्ञासवः—विनतवदनाः सन्तः स्वदोषं संस्मृत्य अमुम् प्रथितमहिमानम् विनयजयिनं स्मितमुखं मुनिम् प्रत्येकं कराभ्याम् तस्य मुनेः चरणकमले संस्पृश्य नमन्ति, इमे च (पुनः) ते स्वतः इतः पदम् स्पन्दन्ते ।

अर्थ—तदनन्तर वे जिज्ञासु लज्जित होकर अपनी भूल को स्मरण कर उन परम प्रसिद्ध महाविनयी मुस्कराते हुए मुनि को, और प्रत्येक ने हाथों से इन मुनिजी के चरणकमलों को छू कर नमन किया, और फिर ये अपने आप यहाँ से चल दिए ।

(२३)

पुनस्ते तर्कन्ते मुनिरयमतो भाविनि युगे ,
महानाचार्यः स्यात् परमयशसा दिव्यवदनः ।
अवश्यं स्यादेतद् भवति मनसश्शङ्कितमिदम् ,
यतो भावी वृक्षो जगति परमश्चिक्कणदलः ॥

अन्वयः—गच्छन्तस्ते पुनः तर्कन्ते यद् भाविनी युगे परमयशसा दिव्यवदनः अयं मुनिः महान् आचार्यः स्यात् । इदम् मनसः शङ्कितम् अवश्यम् भवति, अतः एतत् स्यात् यतः जगति भावी वृक्षः परमः चिक्कण-दलः (भवति) ।

अर्थ—जाते हुए वे फिर तर्क करने लगे कि आने वाले युग में अनेक कीर्त्तियों से उपलक्षित दिव्य वदन महान् आचार्य आप ही होंगे । क्योंकि यह मनका सोचा हुआ अवश्य होता है, अतः ऐसा अवश्य होगा । क्योंकि संसार में होनहार वृक्ष के बड़े चीकने पत्ते होते हैं ।

(२४)

स्वकीयैः सिद्धान्तैर्विविधविषयभ्रान्तिरहितान् ,
अनुष्ठातुं सिंहः कृतपरिचयान् प्रायतत सः ।
तदोद्बुद्धा जैना अतिशयितवृत्ति मुनिमिमम् ,
विवृद्ध्यै संयोक्तुं समुचितमुपायं विदधति ॥

अन्वयः—सः (असरसिंहः) सिंहः स्वकीयैः सिद्धान्तैः कृतपरिचयान् विविधविषय-भ्रान्तिरहितान् अनुष्ठातुं प्रायतत । तदा उद्बुद्धाः जैनाः इमम् अतिशयितवृत्ति मुनि विवृद्धयै संयोक्तुं समुचितम् उपायं विदधति ।

अर्थ—वे सिंहसदृश श्री अमरसिंह जी महाराज, अपने सिद्धान्तों से जाने-पहिचाने भाइयों को अनेक विषयों की भ्रान्ति रहित बनाने के लिये प्रयत्न करते थे । तब जगे हुए जैन बन्धु इन विशिष्टवृत्ति के मुनिजी की अभिवृद्धि के लिए संयोग की उचित तरकीब सोचने लगे ।

(२५)

समुद्भूता भावा प्रकटमुदयं लब्धुमधिकम् ,
अतोऽहं मे मन्ये मनसि नियतं ते कमपि तम् ।
यदाधारं मत्वा मुनिममर्सिहं व्युपगताः ,
मुनिं ते शोभन्ते पुनरिममहो शोभयितु मे ॥

अन्वयः—साम्प्रतं कविः मुनिमुत्प्रेक्षते सर्वगुणाधारमतः—अहम् मे मनसि नियतं मन्ये यत् भावाः अधिकं प्रकटम् उदयम् लब्धुम् समुद्भूताः, तदा ते तम् कमपि आधारं मत्वा, (तदा) अमरसिंहं मुनिं व्युपगताः । (तस्य मुनेराश्रयात् ते तु शोभन्ते, किन्तु अहो ए, एते ते भावाः (गुणाः) पुनः इमं मुनिम् (अपि) शोभयितुं (सन्ति) ।

अर्थ—अब कवि मुनिजी को सर्वगुणसम्पन्न हों ऐसी उत्प्रेक्षा करता है—इसलिए वह कहता कि मैं अपने मन में पक्की तरह से मानता हूँ कि भाव अर्थात् गुण जब अधिक प्रकट उदय प्राप्त करने के लिए उठ खड़े हुए, तब उन्होंने किसी को आधार मानने के लिए मुनि श्री अमरसिंह जी को आधार बना लिया । क्योंकि बिना आधार के गुण शोभा नहीं पाते । अतः मुनिजी के आश्रय से वे गुण तो स्वयं शोभा पा रहे हैं, किन्तु कृतज्ञ गुण, मुनिजी को अहो ए शोभित कर रहे हैं ।

(२६)

अहो सम्प्रत्येव प्रकृतिविषमो रोग उदितः ,
गुरुं तं क्लिश्नाति प्रकृतविदितैः कर्मभिरिमम् ।
तदा ते सेवन्ते विपदमधिगम्यापि मुनयः ,
विहाय स्वालस्यं सततनियतं दुःखितममुम् ॥

अन्वयः—विहारसमय एव सम्प्रति, अहो प्रकृतिविषमः रोगः प्रकृतविदितैः कर्मभिः उदितः तम् इमम् श्री लालचन्द्रं मुनिम् गुरुं क्लिश्नाति । तदा ते मुनयः (ये शिष्या आसन्) स्वालस्यं विहाय विपदम् अधिगम्य अपि अमुम् दुःखितं गुरुं सततनियतं सेवन्ते ।

अर्थ—विहार के समय में ही अब अहो प्रकृति से भयङ्कर रोग, प्रकरणों से जाने गए कर्मों के द्वारा उदित होकर, उन गुरु श्री लालचन्द्र जी महाराजश्री को क्लेश पहुँचाता है । तब आपके वे शिष्य मुनिजन कष्ट सहन करके भी अपने आलस्य को छोड़कर इन दुःखित गुरुदेव की निरन्तर निश्चय के साथ सेवा करते हैं ।

(२७)

यदा रोगोत्पत्तिर्भवति समये केऽपि च तदा ,
भवेयुस्ते नित्यं स्थितिविचलिताः सन्ति पुरुषाः ।
स्थिरास्तिष्ठन्त्येमे नियतमतयो नश्च मुनयः ,
परन्त्वेते सन्तोऽभिदधति सदा मङ्गलपदम् ॥

अन्वयः—सेवानिमग्नाः सन्तः कीदृशा दृढाः सन्ति—इति वर्णयन्नाह-समये यदा रोगोत्पत्तिः भवति, तदा ते केऽपि भवेयुः, नित्यं पुरुषाःस्थिति-विचलिताः सन्ति । (किन्तु) इमे नः नियतमतयः मुनयः स्थिराः तिष्ठन्ति न केवलं ते स्थिरा एव) परन्तु (आगच्छतो जनान्) सदा एते सन्तः मङ्गल-पदम् अभिदधति ।

अर्थ—सेवा निमग्न सन्त कितने दृढ़ हैं—यह बताते हुए—कवि कहता है कि—कभी जब रोग की उत्पत्ति होती है, तब ये कोई भी क्यों न हों, नित्य ही पुरुष स्थिति से विचलित हो जाते हैं । किन्तु ये हमारे मुनिजन पक्के इरादे के साथ निश्चल खड़े रहते हैं । न केवल वे निश्चल खड़े ही रहते हैं, परन्तु आगत मनुष्यों को निरन्तर ये मुनिजन मांगलिक भी सुनाते रहते हैं ।

(२८)

पुनर्ज्ञात्वा रोगं परमविकटं वैद्यमुखतः ,
ततः कष्टं वोढुं श्रयति सततं कर्मफलकम् ।
मुनिष्वेकः प्रष्ठो दिशति मरणान्तं व्रतमिदम् ,
अतो यावज्जीवं त्यजति गरणञ्चाशनमयम् ॥

अन्वय—पुनः वैद्यमुखतः परमविकटं रोगं ज्ञात्वा कर्मफलकं कष्टं वोढुं सततं श्रयति । ततः मुनिषु एकः प्रष्ठः इदम् व्रतम् मरणान्तं संथारेति ख्यातं दिशति । अतः (अधुना) अयं मुनिः श्रीलालचन्द्रः गरणम् अशनञ्च यावत् जीवं त्यजति ।

अर्थ—फिर वैद्य के मुख से परम विकट रोग को जानकर कर्मफलवाले कष्ट को सहने के लिये सदा के हेतु सहारा लिया । तदनन्तर संथारा पचखने के लिये मुनिओं में से किसी वरिष्ठ मुनि को बुलाया और यह मरणान्त व्रत मुनिश्री लालचन्द्र जी महाराज ने स्वेच्छा से धारण किया । व्रत का स्वरूप यह है कि व्रती पुरुष खाना पीना यावत् जीवन के लिये छोड़ देता है । अतः उन्होंने निगरण (पान) और अशन का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान कर दिया ।

(२९)

ततश्चैते शिष्या गुरुवरमिमं सम्प्रति परम् ,
स्वतः सेवन्ते तं परमपदलब्धारमनिशम् ।
तदेतन्माहात्म्यं सकलभुवने केवलमतः ,
मुनीनां जैनानां स्वयमतिशयं साधयति यत् ॥

अन्वयः—ततः एते मुनेः शिष्याः मुनयः सम्प्रति इमम् तम् परमपदलब्धारम् गुरुवरम् स्वतः अनिशं परं सेवन्ते। अतश्चजैनानाम् मुनीनां केवलम् एतत् तत् संस्तारग्रहणात्मकं माहात्म्यम् यत् स्वयम् अतिशयं साधयति। स्वभावतस्त जैनमुनयो मूर्धन्याः सन्त्येवेत्यर्थः।

अर्थ—संथारा पचखने के बाद मुनि महाराज के शिष्य मुनिजन इन परमपद को प्राप्त करने वाले गुरुदेवश्री की अपने आप निरन्तर खूब सेवा करते हैं। क्योंकि जैन मुनियों का केवल यही माहात्म्य सर्वमहान् सिद्ध कर देता है। वैसे तो जैन मुनियों के कार्य इस प्रकार के हैं कि जो उनको मूर्धन्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है—यह व्यङ्ग्यार्थ है।

(३०)

अतस्तत्संस्तारात् प्रथममभितः स्वामिनममुम् ,
समाहूयाष्टाङ्ग प्रथितमहिमानं समरसम् ।
प्रभान्तं त्वाचार्य्यं शुभममरसिंहं गुरुरयम् ,
व्यधादाधारादि मरुधरधरोद्धारकमिमम् ॥

अन्वयः—अतः संस्तारात् अभितः प्रथमम् अमुम् समरसम् अष्टाङ्गप्रथितमहिमानं प्रभान्तं स्वामिनम् शुभम् अमरसिंहम् समाहूय गुरुः अयम् इमम् (अमरसिंहम्) आधारादि मरुधरधरोद्धारकम् आचार्यम् व्यधात्।

अर्थ—अतः संस्तारग्रहण से पहले ही इन समरस अष्टाङ्गप्रथित महिमावाले प्रभावी मुनि श्री अमरसिंहजी को बुलाकर इन गुरुदेव श्री लालचन्द्रजी महाराज ने इनको मूलरूप मारवाड़ भूमि के उद्धारक आचार्यपद से अलंकृत कर दिया था।

(३१)

समे श्रीसंघास्तं समयमधिकृत्यातिशयितम् ,
मुनीनामाचार्यं शुभममरसिंहं गुरुवरम् ।
महाज्योतिष्मन्तं परमगरिमाणं प्रतिपदम् ,
वहन्तं श्रीमन्तं विदधति सपर्यां सुनुतिभिः ॥

अन्वयः—तदनन्तरं समे श्रीसंघाः समयम् अधिकृत्य अतिशयितम् महाज्योतिष्मन्तम् गुरुवरम् मुनीनामू आचार्य्यम् शुभम् परमगरिमाणं प्रतिपदं वहन्तं श्रीमन्तम् अमरसिंहम् सुनुतिभिः सपर्याम् विदधति ।

अर्थ—तदनन्तर सब श्रीसंघों ने समयानुसार अतिशयी महाज्योतिष्मान् गुरुदेव मुनियों के आचार्य शुभ परमगौरवशाली श्रीमान् अमरसिंहजी महाराज का वास्तविक स्तुतियों से सत्कार किया गया ।

(३२)

ततोऽसावाचार्यः परमविनयी संघसदृशम् ,
क्रियाचारोत्पन्नं व्यवहृतिसमं संव्यवहरन् ।
अवादीत्प्रत्यग्रं श्रवणरसपीयूषवचनम् ,
प्रकीर्णं व्याख्यानं हृदयकमलं द्योतितुमलम् ॥

अन्वयः—ततः परमविनयी असौ श्रीमान् अमरसिंहः आचार्यः व्यवहृतिसमम् क्रियाचारात्पन्नं संघसदृशं संव्यवहरन् हृदयकमलम् अलं द्योतितुम् प्रत्यग्रं श्रवणरसपीयूषवचनम् प्रकीर्णं व्याख्यानम् अवादीत् ।

अर्थ—श्रीसंघों के द्वारा आदर किए जाने पर परमविनयी उन श्रीमान् अमरसिंहजी आचार्य ने व्यवहार के समान क्रियाचार से उत्पन्न संघ के अनुकूल व्यवहार करते हुए, जनता के हृदय-कमल को पूर्ण विद्योतित करने के लिए नया कानों के लिए रसामृत वचन वाला बिखरा हुआ व्याख्यान, जिसमें थोड़ा-थोड़ा सभी बातों पर प्रकाश डाला गया था, दिया ।

(३३)

सहैवैतत्प्रोक्तं यदि परिणमेन्मङ्गलमयम् ,
शुभाचार्यत्वं मे फलति शुभगं श्रावकजनम् ।
तदामन्वीयाहं यदिह घटितं गौरवपदम् ,
अहिंसा मातेयं विलसति यदा मङ्गलमयी ॥

अन्वयः—व्याख्यानेन सह एव एतत् अपि प्रोक्तम् यदि मे शुभाचार्यत्वं फलति, तदा श्रावकजनम् मङ्गलमयम् शुभगम् परिणमेत् । यदिह गौरवपदं घटितं विद्यते, अहं तदा गौरवपदं घटितं मन्वीय, यदा मङ्गलमयी इयम् अहिंसा माता विलसति ।

अर्थ—व्याख्यान के साथ ही यह भी बताया कि मैं मेरे इस आचार्यत्व को सफल तब समझूंगा, जबकि मेरा श्रावकसमुदाय आनन्दित और सब के लिए भला साबित हो । और गौरव पद जो घटित है, उसको गौरवपूर्ण तभी मानूंगा, जब कि सब जगह मङ्गलमयी यह अहिंसा माता विद्यमान रहे ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
पञ्चमः सर्गः

❀

षष्ठः सर्गः

(१)

सदैवैतद् दृष्टं जगति परमं चित्रजनकम् ,
यदा किञ्चिद् भिन्नं भवति जगतः कृत्यसरणेः ।
तदा युक्तं कर्त्तुं परमपुरुषः कोऽपि यतते ,
विधत्ते पन्थानं विषमपि सुगं प्राक्तनमसौ ॥

अन्वयः—जगति सदा एव अस्माभिः एतत् परमं चित्रजनकं दृष्टं विद्यते, यत् यदा जगतः कृत्यसरणेः भिन्नं (कार्य्यं) भवति । तदा कोऽपि परमपुरुषः युक्तं (कार्य्यं) कर्त्तुं यतते । असौ (एव) प्राक्तनं विषमम् अपि पन्थानं सुगं विधत्ते ।

अर्थ—संसार में सदा ही हमने ऐसा परम आश्चर्यजनक देखा है कि जब संसार की कृत्य-सरणि से पृथक कार्य होता है, तब कोई न कोई महापुरुष (आता है) और उचित कार्य करने के लिए काम करता है और वही सदातन के विषम मार्ग को भी सुगम कर देता है ।

(२)

अतोऽयं दिव्यात्मा मुनिषु विरलो लोकमहितम् ,
सदालोकं ज्ञानं वितरति विहातुं जगदिदम् ।
स्वतश्च ज्ञप्तोक्तं व्युपदिशति धर्मं समुचितम् ,
महान्तः सन्तस्ते परहितरताः केवलमलम् ॥

अन्वयः—अतः अयं मुनिषु विरलः दिव्यात्मा (अमरसिंहः आचार्यः) इदं जगत् विहातुं सदालोकं लोकमहितं ज्ञानम् वितरति, स्वतश्च समुचितं ज्ञप्तोक्तं धर्मं व्युपदिशति । यतो हि केवलं महान्तः सन्तः ते परहितरताः अलम् (भवन्ति) ।

अर्थ—इसलिए ही ये मुनिविशिष्ट दिव्यात्मा आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज इस संसार को छोड़ने के लिए सत्प्रकाश लोकपूज्य ज्ञान का वितरण करते थे । और अपने आप समुचित ज्ञप्तोक्त धर्म का उपदेश करते थे । क्योंकि केवल महान् सन्त ही वे हैं जो सदा परोपकार में ही लगे रहते हैं ।

सर्गेऽस्मिन्नपि 'शिखरिणी' छन्द एवास्ति । लक्षणंतु पूर्वमुक्तमेव ।

(३)

सुपुत्रा जायन्ते जगति सततं मङ्गलभुवः ,
दधत्येते चान्यत् विहितसदृशं कर्म लपितुम् ।
परन्त्वेतेभ्योऽन्यं सुगुणगरिमाणं प्रभवितुम् ,
महापुण्यात्मानं सृजति जननी सूनुमपरम् ॥

अन्वयः—एवन्तु-जगति मङ्गलभुवः सुपुत्राः सततं जायन्ते, एते च विहितसदृशं लपितुं अन्यत् कर्म दधति, परन्तु एतेभ्यः अन्यम् सुगुणगरिमाणं प्रभवितुं (काऽपि विरला) जननी एव अपरं महापुण्यात्मानं सूनं सृजति ।

अर्थ—ऐसे तो जगत् में श्रेष्ठ सुपुत्र निरन्तर उत्पन्न होते हैं, और वे धार्मिक कर्म जैसा कहने भर के लिए दूसरा कार्य भी करते हैं, किन्तु इन सब से पृथक् सुगुणों के गौरव को बढ़ाने के लिए कोई विरल माता ही अद्वितीय महापुण्यात्मा पुत्र को जन्म देती है ।

(४)

ततश्चाचार्योऽयं विहरति सदा संघमहितः ,
प्रतिग्रामं चैवं सकलमुनिभिः साकमपरान् ।
जनानायातान् यः प्रतिदिशमसौ सोमसदृशः ,
सदुद्देश्यं वाक्यं निगदति मुदा स्नेहसरसम् ॥

अन्वयः—ततश्च सदा संघमहितः अयम् आचार्यः अमरसिंहः सकलमुनिभिः साकं प्रतिग्रामं विहरति । एवञ्च यः सोमसदृशः असौ प्रतिदिशम् अपरान् आयातान् जनान् मुदा स्नेहसरसम्-सदुद्देश्यं वाक्यं निगदति ।

अर्थ—और फिर सदा सङ्घपूज्य ये आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज अपने सभी मुनियों के साथ ग्राम-ग्राम में विहार करते थे । इसी प्रकार जो चन्द्र जैसे वे आचार्य महाराज भिन्न-भिन्न दिशाओं से आए हुए दूसरे मनुष्यों से हर्ष के साथ प्रेम-स्निग्ध अच्छे उद्देश्य के साथ बात-चीत करते थे ।

(५)

नितान्तं सौभाग्यं मनसि मनुजा भक्ति विभवाः ,
मुनीनां मन्यन्ते निलयवसिता दर्शनमपि ।
वयं कुर्मः श्रुत्वा जगति कृतपुण्या अत इति ,
ततश्चान्ये द्रष्टुं जहति शरणं तान् मुनिवरान् ।

अन्वयः—भक्तिविभवाः मनुजाः मनसि नितान्तं सौभाग्यं मन्यन्ते, यद् निलयवसिता अपि मुनीनां दर्शनं कुर्मः, अतः वयं कृतपुण्याः स्मः इति श्रुत्वा ततश्च अन्येऽपि मनुजाः तान् मुनिवरान् द्रष्टुं शरणं जहति ।

अर्थ—भक्ति है विभव जिनकी अर्थात् भक्त मनुष्य मन में परम सौभाग्य मानते हैं कि घर बैठे ही आए हुए मुनियों के दर्शन कर रहे हैं, अतः हम भाग्यशाली हैं—यह सुनकर तब और दूसरे भी मनुष्य उन मुनियों को देखने के लिए घर छोड़ रहे हैं ।

(६)

दिदृक्षून् दृष्ट्वा तानथ परिचितांश्चापरिचितान् ,
स्वतः शिक्षां दातुं परममरसिंहः करुणया ।
अहिंसायाः सारं सरसवचनैः संगदितवान् ,
विहातुं ते हिंसामभिदधति शब्दैरनुमतिम् ॥

अन्वयः—परिचितान् अपरिचितान् तान् दिदृक्षून् दृष्ट्वा अथ अमरेषुसिंहः सः अमरसिंहः आचार्यः स्वतः शिक्षां दातुं करुणया अहिंसाया परं सारं संगदितवान् । (ततः सारं श्रुत्वा) ते दिदृक्षवः हिंसां विहातुं शब्दैः अनुमतिम् अभिदधति । यथा अतः परं वयं हिंसां नाचरिष्याम इति ।

अर्थ—परिचित और अपरिचित उन दर्शनार्थियों को देवताओं में सिंह के समान वे अमरसिंहजी आचार्य अपनी ओर से शिक्षा देने के लिये करुणा के कारण अहिंसा के वास्तविक रहस्य को सम्यक्रूप में बताने लगे । तदनन्तर रहस्य सुनकर वे सभी दर्शनार्थी मनुष्य शब्दों के द्वारा अनुमति प्रकट करने लगे, जैसे इसके बाद हम कभी हिंसा का आचरण नहीं करेंगे ।

(७)

विभिन्नग्रामेषु प्ररचितपथेषूपवसतौ ,
यथास्थानं स्थित्वा मुनिजनसमेतः स्वयमयम् ।
प्रदीप्तश्चाचार्यः प्रचरति शुभं शासनमिदम् ;
महावीरोपज्ञं परमपदमेतुं निरुपमम् ॥

अन्वयः—विभिन्नग्रामेषु प्ररचितपथेषु सत्सु विहरन् उपवसतौ यथास्थानं स्थित्वा अयं मुनिजनसमेतः प्रदीप्तः आचार्यः स्वयम् अमरसिंहः इदं शुभं महावीरोपज्ञं शासनम्, निरुपमम् परमपदम् एतुं प्रचरति ।

अर्थ—सुगम मार्ग वाले ऐसे अनेक ग्रामों के होते हुए विहार करनेवाले, उपाश्रय में यथास्थान ठहर कर ये मुनिजन समेत तेजस्वी आचार्य स्वयं श्री अमरसिंहजी महाराज इस पवित्र, महावीर स्वामी के द्वारा बताए हुए शासन को निरुपम परमपद मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रचार करते थे ।

(८)

तदस्य प्रान्तस्य प्रथितनगरेषु प्रतिगृहम् ,
पदैः स्पृष्ट्वाचार्यो रचयति जनान् स्वाशयरतान् ।
प्रसन्नानाचार्यं प्रतिपदमतो नन्तुमधिकम् ,
समागच्छन्ती मे विनयविनताः श्रावकगणाः ॥

अन्वयः—तत् आचार्यः श्रीमान् अमरसिंहः अस्य प्रान्तस्य पञ्चापस्य प्रथितनगरेषु प्रतिगृहं पदैः स्पृष्टवा प्रसन्नान् जनान् स्वाशयरतान् रचयति । अतः इमे विनयविनताः श्रावकगणाः आचार्यं प्रतिपदम् अधिकं नन्तुं समागच्छन्ति ।

अर्थ—तत् पश्चात् आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज इस पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध नगरों में घर-घर चरणों से स्पर्श कर प्रसन्न हुए मनुष्यों को अपने सिद्धान्त के प्रेमी बना लेते थे । इस कारण से ये परम विनीत श्रावकगण आचार्य महाराज को स्थान-स्थान पर अनेक बार प्रणाम करने के लिए उपस्थित हो उठते थे ।

(९)

प्रतिस्थानं दृष्टवा नगरनगरं शोभिततरम् ,
विशालं शैलाभं गगनतलमालम्बिशिखरम् ।
यदृच्छासंकाशं गतचिचलिषोऽसौ मुनिगण: ,
विहायेच्छां सम्यक् विरमति सुखं शाखिनिलये ।

अन्वय:—सम्प्रति प्रतिस्थानं विशालं शैलाभं गगनतलम् आलम्बि-शिखरं शोभिततरं नगर नगरं दृष्टवा गतचिचलिष: मुनिगण: इच्छां सम्यक् विहाय शाखिनिलये यदृच्छासंकाशं सुखं विरमति ।

अर्थ—सम्प्रति विहार करते हुए स्थान-स्थान पर विशाल पहाड़ जैसे आकाश को छूने वाली चोटियाँ हैं, जिनकी ऐसे बढ़िया से बढ़िया नगर के बाद नगर को देखकर थकने के कारण चलने की इच्छा समाप्त हो गई है, जिसकी ऐसा मुनिमण्डल इच्छा को एक तरफ कर पेड़ों के बने हुए घर पर मर्जी मुताबिक आराम के साथ विराम करने लगे ।

(१०)

प्रसङ्गादाचार्य: सहजिगमिषून् भक्तिविभवान् ,
जनानन्यान्वासौ उपदिशति यत् कर्म किमपि ।
असद्वा सच्चादो विदधतु कदा नापि सहसा ,
विमृश्यैवं कर्त्तॄन् वरयति पुन: श्री: स्वयमहो ॥

अन्वय:—प्रसंगात् असौ आचार्य: अमरसिंह: सहजिगमिषून भक्ति-विभावान् जनान् अन्यान् वा उपदिशति यत् किमपि सत् असत् वा अद: कर्म कदापि सहसा न विदधतु । यतो हि विमृश्य कर्त्तॄन् पुन: अहो श्री: स्वयं वरयति ।

अर्थ—प्रसङ्ग के अनुसार वे आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज साथ चलने वाले भक्त पुरुषों को अथवा दूसरे उपस्थितों को उपदेश करते थे कि कोई भी कर्म फिर चाहे अच्छा हो अथवा बुरा हो कभी सहसा (बिना सोचे-विचारे) न करो । क्योंकि सोच-विचार कर कर्म-कर्त्ताओं को लक्ष्मी स्वयं अपना लेती है ।

(११)

अनादृत्य ज्ञानं विदधति जनाः कार्यमपि किम् ,
विवेकाभावस्तान् नटयति जनान् कष्टनिकरैः ।
विमर्शान्निश्चेतुं प्रथममभितो ये सुनियतम् ,
यतन्ते जायन्ते फलमुपगतास्ते सुकृतिनः ॥

अन्वयः—पुनरपि स्वयमाचार्यस्तमेवार्थं विशदयति—ये जनाः ज्ञानम् अनादृत्य किमपि कार्यं विदधति, तान् जनान् विवेकाभावः कष्टनिकरैः नटयति । अतः अभितः प्रथमं ये जनाः विमर्शात् सुनियतं निश्चेतुं यतन्ते, ते सुकृतिनः फलम् उपगताः जायन्ते ।

अर्थ—फिर उसी को प्रकारान्तर कहते हैं—जो पुरुष ज्ञान की उपेक्षा कर कोई कार्य करते हैं, उन पुरुषों को विवेकाभाव कष्टों से नचाता है । इसलिये जो सबसे पहले विमर्श को लेकर ठीक प्रकार से निश्चय करने के लिए काम करते हैं वे सुकृती पुरुष फल प्राप्त करते हैं । अर्थात् वे सफल होते हैं ।

(१२)

विहारं कृत्वैवं नियत समये सर्वमुनयः ,
समागच्छन्त्येते गुरुवरमुं स्थानकमिमे ।
पुरस्कृत्यातस्ते नियमसहितं नित्यनियमम् ,
विधातुं चेष्टन्ते प्रतिदिनमथ ज्ञानमभितः ॥

अन्वयः—वर्षावासार्थम्—एते एवं विहारं कृत्वा सर्वमुनयः इमे अमुम् गुरुवरं पुरस्कृत्य स्थानकं समागच्छन्ति । अथ अभितः ज्ञानम् ते नियमसहितं नित्यनियमम् विधातुं प्रतिदिनं चेष्टन्ते ।

अर्थ—वर्षावासार्थ—ये इस प्रकार विहार कर सभी मुनि अपने गुरुदेवश्री को आगे रखकर स्थानक पहुँचे । तदनन्तर ज्ञानपूर्वक वे मुनिजन नियम सहित नित्य नियम को करने में प्रतिदिन लगे रहते थे ।

(१३)

चतुर्णां मासानां समयमधिगम्यैव मुनयः ,
व्यवस्थां कुर्वन्ति प्रतिदिनमिदं यातु नियतम् ।
जपस्तोत्रञ्चैतद् भवतु च गुरोः सत्प्रवचनम् ,
व्यवस्थातारोऽतो विदधति यथा बोधितमदः ॥

अन्वयः—मुनयः एव समयम् अधिगम्य चतुर्णां मासानां व्यवस्थां कुर्वन्ति, तद्यथा—प्रतिदिनम् नियतम् इदं जपस्तोत्रं यातु, गुरोश्च एतत् सत्प्रवचनं भवतु - अतः व्यवस्थातारः यथा बोधितम् अदः विदधति ।

अर्थ—मुनिजन ही समय के अनुसार चार मासों की व्यवस्था करते हैं, जैसे कि प्रतिदिन नियत जपोपवासादि हो और प्रतिदिन ही गुरुदेव श्री का सत्प्रवचन हो। इसलिए व्यवस्था करने वाले जैसा बताया गया, वही करते हैं ।

(१४)

चतुर्मासं यावत् प्रतिदिनमिमे ज्ञप्तनियमान् ,
विधीन्वाऽनुष्ठातुं किमिति मुनयः किन्तु भविकाः ।
समे धर्मिष्ठास्ते नियतसमयं व्येतुमनिशम् ,
न ते चेच्छन्त्यन्ये कथमथ पुनः शक्नुयुरिमे ॥

अन्वयः—चतुर्मासं यावत् किमिति इमे मुनयः ज्ञप्तनियमान वा विधीन् अनुष्ठातुम् (आसन्) किन्तु समे भविका धर्मिष्ठाः ते अपि नियत-समयम् अनिशं व्येतुं न इच्छन्ति, तर्हि च अन्ये इमे नियतसमयं व्येतुम् अथ कथं पुनः शक्नुयुः ।

अर्थ—चार मास पर्यन्त क्या ये ही मुनिजन ज्ञप्तनियमों को अथवा विधियों को करने के लिए थे ? किन्तु यहाँ के सभी धार्मिक पुरुष भी ऐसे थे कि वे नियत समय को निरन्तर खोने के लिए इच्छा नहीं रखते थे, तब फिर और दूसरे ये कौन होंगे जो कि यों ही कुछ कर-धर सकेंगे ! अर्थात् व्यर्थ समय खोने के लिए यहाँ कोई नहीं था ।

(१५)

तथापीमान् साधून् रमयति परं श्रावकगणः ,
यथेच्छं भिक्षेच्छून् प्रतिगृहमितः सङ्गमयितुम् ।
अनायासो रन्तुं जन इव जनान् प्रेरयति तान् ,
सुखेच्छाविश्रान्तान् सुनियतमुनीन् गन्तुमपथम् ॥

अन्वयः—शरीरयात्रार्थं मुनयोऽपि कल्पितां भिक्षामाचरन्ति, तथापि विनोदार्थं श्रावकगणः, इतः इमान् भिक्षेच्छून् साधून् यथेच्छं सङ्गमयितुं प्रतिगृहं परं रमयति, अनायासः जनः रन्तं जनान् अपथं गन्तुं प्रेरयति इव, प्रतिगृहं गन्तुं सुखेच्छाविश्रान्तान् सुनियतमुनीन् प्रेरयति ।

अर्थ—शरीरयात्रा के लिए मुनि भी कल्पनीय भिक्षा ग्रहण करते हैं, तथापि विनोद के लिए कोई श्रावकगण उपाश्रय से इन भिक्षेच्छु मुनिओं को यथेच्छ साथ ले चलने के लिए घर-घर पर विनोद करते हैं । अनायास कोई मनुष्य, विनोद के लिए मनुष्यों को अपथ की ओर प्रेरित करता है, ठीक इसी तरह वह श्रावकगण भी प्रतिगृह जाने के लिए सानन्द विराजित प्रतिष्ठित मुनिओं को प्रेरित करता है । किन्तु कुछ भी मुनिजन तो नियमपूर्वक सूजती भिक्षा करते हैं, अतः विनोदार्थं प्रेरणा से कुछ नहीं होता ।

(१६)

अतश्चैवं सर्वे विनयिमुनयो ज्ञप्तविहितम् ,
प्रवर्षावासं तं सुविधिसहितं ते कथयितुम् ।
समाप्य श्रीमन्तं गुरुममरसिंहं सविनयम् ,
अभिप्रायं स्वेषां प्रणयमभितः संनिरगमन् ॥

अन्वयः—अतः च एवं तं ज्ञप्तविहितं सुविधिसहितं प्रवर्षावासं समाप्य ते सर्वे विनयिमुनयः श्रीमन्तम् अमरसिंहं गुरुं स्वेषाम् अभिप्रायं प्रणयम् अभितः सविनयं कथयितुं संनिरगमन् ।

अर्थ—और फिर उस ज्ञप्तविहित सुविधिसहित उत्कृष्ट वर्षावास को समाप्त कर वे सभी विनयी मुनिजन, श्रीमान अमरसिंहजी गुरुदेव को अपने अभिप्राय को प्रणयपुरस्सर विनय के साथ कहने के लिए चल दिए ।

(१७)

हसन्तस्ते सन्तः सततविनया यान्त्युपगुरु ;
समायातान् दृष्ट्वा गुरुरपि हसन् प्रष्टुमभितः।
समुत्कोत्कण्ठां तां ज्ञपयति पुनस्तान् स्मितमुखम् ;
मनीषी तत्त्वज्ञो ज्ञपयितुमलं सिद्धमनसा ॥

अन्वयः—ते सततविनयाः हसन्तः सन्तः (यदा) उपगुरु यान्ति, (तदा) अभितः प्रष्टुम् समायातान् (मुनीन्) दृष्ट्वा हसन् गुरुः अपि तान् तां समुत्कोत्कण्ठां स्मितमुखं ज्ञपयति। यतो हि तत्त्वज्ञो मनीषी ज्ञपयितुं सिद्ध-मानसा अलम् (भवति)।

अर्थ—वे विनयी मुनिराज हँसते हुए जब गुरुजी के पास पहुँचते हैं, तब पूछने के लिए आए हुए मुनियों को देखकर हँसते हुए गुरुदेव श्री ने भी उस, उत्कण्ठितों की उत्कण्ठा मुस्कराने के साथ बतला दिया कि आप सब किस लिए आये हैं। क्योंकि तत्त्ववेत्ता ज्ञानी जान लेने के लिए अपने सिद्धि-प्राप्त मन से सर्वथा समर्थ होते हैं।

(१८)

अतस्ते सन्तस्तं प्रकटमभितः सद्गुरुमपि ,
स्वकीयाभिप्रायं ज्ञपयितुमलं व्यक्तवचसा ।
भवन्त्युत्प्रेक्षन्ते स्वपरमपरं सन्तमनिशम् ;
गुरुर्ज्ञानी बुद्ध्या प्रथयति फलं स्वेङ्गितसमम् ॥

अन्वयः—अतः ते सन्तः अपि तं सद्गुरुम् स्वकीयाभिप्रायं प्रकटम् अभितः ज्ञपयितुं व्यक्तवचसा अलं भवन्ति। (किन्तु ते शिष्यमुनयः) स्वपरम् अपरं सन्तम् अनिशम् उत्प्रेक्षन्ते यद् (अस्माकं गुरुः) ज्ञानी सन् बुद्ध्या स्वेङ्गितसमं फलम् प्रथयति।

अर्थ—इसलिए वे मुनि भी अपने गुरुदेव को स्वकीय अभिप्राय प्रकट रूप में बताने के लिए स्पष्ट शब्दों में साफ-साफ तत्पर हो गए। किन्तु वे शिष्यमुनि अपने से दूसरे सन्त को अपनी कल्पना के साथ कहते थे कि हमारे गुरुदेव अन्तर्यामी होकर बुद्धि के द्वारा अपने सोचे हुए के समान सब कुछ बता देते हैं।

(१९)

तदाचार्योऽयं तान् विदितमनसः स्पष्टवचसा ;
मुनीन् स्वाभिप्रायं विशदयति तं स्वीकृतिमयम् ।
विहर्त्तुं स्वच्छेच्छां भवदभिमतां मेऽभिलषिताम् ,
स्वयं जानन्त्वेतां कथमपि परां मा व्यवगमन् ॥

अन्वयः—तदा अयम् आचार्यः तान् विदितमनसः मुनीन् स्पष्टवचसा तं स्वाभिप्रायं स्वीकृतिमयं विशदयति । यद् विहर्त्तुं भवदभिमताम् एतां स्वच्छेच्छां मे स्वयम् अभिलषितां जानन्तु, कथम् अपि (इमां) परां मा व्यवगन् ।

अर्थ—तब इन आचार्य श्री ने उन समझे हुए मुनियों को स्पष्ट वचन से उस अपने अभिप्राय को स्वीकृतिमय बताया कि विहार के लिए आपकी चाही हुई स्वच्छ इच्छा ही मेरी स्वयं की इच्छा है—ऐसा इसको जानिए और किसी प्रकार से दूसरी इच्छा मत समझिए ।

(२०)

अतस्ते सन्तोऽमी स्वगतमभितो वक्तुमनसः ,
निवृत्ताः प्रासीदन् सममविकलं स्वाशयमिमम् ।
स्वतो व्यञ्जन्तोमे परमनुपमं चर्चितमितः ,
यतो वर्ण्येनालं गुरुरयमहोनो गुरुरयम् ॥

अन्वयः—अतः ते अमी सन्तः अभितः स्वगतं वक्तुमनसः निवृत्ताः प्रासीदन् । इमे इमम् स्वाशयम् अविकलं समम् इतः स्वतः चर्चितम् परम् अनुपमं व्यञ्जन्ति । यतः अहो नः अयं गुरुः, गुरुः अयम्, वर्ण्येन अलम् ।

अर्थ—अतः वे ही सन्त स्वगत को लेकर कहते-कहते वापिस आए और बहुत प्रसन्न थे । ये इस अपने आशय को पूरा का पूरा यहाँ अपने आप कहने को काफी अनोखा समझते थे । क्योंकि हमारे गुरुजी महाराज तो वास्तव में गुरुजी ही हैं, हम इस अर्थ को कहकर साबित नहीं कर सकते !

(२१)

ततस्ते पञ्चापं विहितविधयस्त्यक्तुमनसः ।
मुहूर्त्तं प्रस्थातुं गुरुवरनिदेशं प्रभवितुम् ।
प्रतीक्षन्ते कर्त्तुं सुविधिविहितं पात्रनिचयम् ,
समुद्धर्त्तुं वासः ग्रथनसहितं ग्रन्थनिवहम् ॥

अन्वयः—ततः ते पञ्चापं त्यक्तुमनसः विहितविधयः (मुनयः) सुविधिविहितं पात्रनिचयं कर्त्तुं वासः ग्रन्थनसहितं ग्रन्थनिवहम् समुद्धर्त्तुं गुरुवरनिदेशं प्रभवितुं मुहूर्त्तं च प्रस्थातुं प्रतीक्षन्ते ।

अर्थ—तदनन्तर पंजाब प्रान्त को छोड़ने की भावना वाले सर्व कार्य पूरा कर वे मुनिजन, भली प्रकार से जमाए जाने वाले पात्रों को संगृहीत करने के लिए, कपड़ों से लपेटने के साथ ग्रन्थों को ढोने के लिए, गुरुदेवश्री के निदेश को मूर्त रूप देने के लिए और मुहूर्त्त पर प्रस्थान करने के लिए प्रतीक्षा करने लगे ।

(२२)

पुनश्चान्ते सन्तो विदितगुणभूमेः सुयमिनः ,
गुरोः सद्यः सिद्धेस्तमभिलषितं मङ्गलमयम् ।
पुरस्कृत्यादेशं परममहिते मङ्गलयुते ,
प्रयाणं प्रेक्षन्ते सुयशसि मुहूर्त्ते सशकुनम् ॥

अन्वयः—अन्ते च पुनः ते सन्तः विदितगुणभूमेः सुयमिनः सद्यः सिद्धेः गुरोः तम् मङ्गलमयम् अभिलषितम् आदेशम् पुरस्कृत्य परममहिते मङ्गलयुते सुयशसि मुहूर्त्तेः सशकुनम् प्रयाणं प्रेक्षन्ते ।

अर्थ—और फिर अन्त में वे सभी सन्त, महागुणी सुसंयमी सद्यः सिद्धि वाले गुरुदेव के उस मङ्गलमय अभिलषित आदेश को पुरस्कृत कर परमाहत मङ्गल समेत प्रसिद्धि मुहूर्त्त पर सशकुन प्रयाण की तलाश करने लगे ।

(२३)

पदाति सङ्क्रन्तुं विदितयशसं शिष्यमुनयः ,
चतुर्णां मासानां गुरुवरमिमं ते सहचराः ।
व्रजन्तं चान्वीक्ष्य गमनसमये जानपदिकाः ,
तदोत्तिष्ठन्तेऽन्ते विदधति नतिं प्रेक्ष्य युगपत् ।।

अन्वयः—चतुर्णां मासानाम् अन्ते गमनसमये ते सहचराः शिष्य मुनयः विदितयशसं गुरुवरं पदाति प्रेक्ष्य सङ्क्रन्तुम् उत्तिष्ठन्ते, तदा च जानपदिकाः (श्रावका अपि) इमं व्रजन्तम् अन्वीक्ष्य युगपत् नतिं विदधति ।

अर्थ—चार मासों के अन्त में प्रस्थान के समय पर वे सहचर शिष्य मुनिजन प्रख्यात गुरुदेव को पैदल चलते देखकर साथ चलने के लिए उठ खड़े हुए। और तब जनपद-निवासी श्रावक भी आपश्री को पधारते हुए देखकर एक साथ नमन करने लगे ।

(२४)

अथ स्वान्ते शुद्धः कृतसुविनतिः श्रावकगणः ,
महान्तं श्रीमन्तं महितमहिमानं सुमनसम् ।
गुरुं सिंहाचार्यं गमयति कथां भक्तिसहिताम् ,
वयं सर्वे क्षम्याः प्रति किमपि जातं त्रुटिगतम् ।।

अन्वयः—अथ महितमहिमानं सुमनसं सिंहाचार्यं महान्तं श्रीमन्तं गुरुं प्रति कृतसुविनतिः स्वान्ते शुद्धः श्रावकगणः भक्ति सहिताम् कथां गमयति, (यत्) किमपि त्रुटिगतं जातं (भवेत्), (तर्हि) वयं सर्वे क्षम्याः स्मः ।

अर्थ—विहार के समय—परमप्रसिद्ध प्रसन्नचित्त प्रशस्त आचार्य महान् श्रीमान् गुरुदेवश्री से भोले-भाले वे श्रावक भक्तिपूर्वक बात चलाकर बोले कि हम से यदि कोई भूल हुई हो तो हम सभी क्षम्य है। क्योंकि हम अबोध हैं—यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(२५)

दयालुः सिंहोऽसौ मुनिजनसनाथः सुसमये ,
स्वकीयं प्रस्थानं सुविधिविहितं कर्त्तुमनिशम् ।
अवोचत् सर्वस्वं महितवचसां सातिशयितम् ,
मुनीनां जैनानां श्रमणशरणं मङ्गलवचः ॥

अन्वयः—तदा सुसमये स्वकीयं सुविधिविहितं प्रस्थानम् अनिशं-कर्त्तुम् असौ मुनिजनसनाथः दयालुः सिंहः महितवचसां जैनानां मुनीनां सातिशयितं सर्वस्वं श्रमणशरणं मङ्गलवचः अवोचत् ।

अर्थ - तब अच्छे समय पर अपने यथोचित प्रस्थान को निरन्तर बनाए रखने के लिए वे मुनिओं के साथ दयालु आचार्यश्री पूज्यवचन वाले जैनमुनियों का सर्वोत्कृष्ट सर्वस्व श्रमणशरण माङ्गलिक फरमाने लगे ।

(२६)

यथा मन्दं मन्दं वहति पवनो नन्दनवने ,
पुनर्नासारन्ध्रे सरति सुरभिः पुष्पसमये ।
तथा निस्स्वे विश्वे चलति दमनः संघशरणः ,
मुनिष्वाचार्योऽसौ श्रमण-रमणो धोरणगुणः ॥

अन्वयः—सम्प्रति मुनयो गुरुं पुरस्कृत्य शनैः शनैः प्रतिष्ठन्ते-नन्दन-वने यथा पवनः मन्दं मन्दं वहति, पुनः पुष्पसमये यथा सुरभिः नासारन्ध्रं सरति, यथा निस्स्वे विश्वे असौ मुनिषु आचार्यः दमनः संघशरणः श्रमण-रमणः धोरणगुणः सन् चलति ।

अर्थ—अब मुनिजन गुरुदेवश्री को आगे कर धीरे-धीरे प्रस्थान कर रहे हैं—इन्द्र के उद्यान नन्दनवन में जैसे वायु मन्द-मन्द चलती और फिर महक वसन्त में जिस प्रकार नाक के रन्ध्र में धीरे-धीरे प्रवेश पाती हैं, उसी प्रकार असार संसार में दमी, संघ के शरण, श्रमणों के आनन्ददाता, धोरणगुणवाले वे मुनियों में आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज धीरे-धीरे विहार कर रहे हैं ।

(२७)

अनुग्रामं गत्वा पुनरपि समे शान्तगतयः ,
कथंचिद् विश्रम्य प्रमुनय इमे तं परिचयम् ।
विबुद्ध्यान्ते तेभ्यो नियमसहितां वृत्तिमपराम् ,
विधाय ग्रामान्ते नियतमशनं यान्ति रचितुम् ॥

अन्वयः—ग्रामस्य पश्चात् ग्रामं गत्वा समे इमे शान्तगतयः प्रमुनयः कथं चित् विश्रम्य, तं परिचयं विबुद्ध्य, अन्ते तेभ्यः (श्रावकेभ्यः) पुनरपि अपरां वृत्तिं विधाय ग्रामान्ते नियतम् अशनम् रचितुम् यान्ति ।

अर्थ—ग्राम के बाद ग्राम का स्पर्श कर सब ये धीमी गति वाले प्रकृष्ट मुनिजन थोड़ा-बहुत विश्राम लेकर पूर्व परिचय को जानकर, अन्त में उन श्रावकों से ही दूसरी गोचरी कर ग्राम के बाहिर नियत अशन के लिये चल देते हैं ।

(२८)

तदा सर्वे लोका अतिपरिचितान् नन्तुमधिकम् ,
मुनीनायान्त्येते चतुरचतुरा संग्रहरताः ।
ततश्चानन्दार्थं प्रतिपदमहो कौतुकमताः ,
जिघृक्षां दीक्षायाः समभिदधतीमान् नटयितुम् ॥

अन्वयः—पुनरागमनं श्रुत्वा—एते संग्रहरताः चतुरचतुराः सर्वे लोकाः अतिपरिचितान् मुनीन् नन्तुम् आयान्ति । ततः च अहो कौतुकमताः (ते) आनन्दार्थम् इमान् मुनीन् नटयितुम् दीक्षायाः जिघृक्षां प्रतिपदं समभिदधति । (यतः दीक्षायै समुद्यतं जनं मुनयः परं स्पृहयन्ति, शृण्वन्ति, अनुगृह्णन्त्यपि ।

अर्थ—मुनिजन के पधारने की बात सुनकर—ये संग्रही अधिक चतुर सभी मनुष्य पूर्ण परिचित मुनियों की बारंबार वन्दना करने के लिए आते हैं । और वे कौतुकी बनकर आनन्द के लिए इन मुनियों को चक्कर देने के लिए दीक्षा लेने की इच्छा को प्रतिपद कहते थे । क्योंकि दीक्षा लेने वाले मनुष्य से मुनिजन बहुत स्पृहा रखते हैं, सुनते भी हैं और अनुग्रह भी रखते हैं ।

(२९)

अतस्ते सानन्दा परमविनताः श्रोतुमधिकम् ,
तदीयं वृत्तान्तं किमिव घटितं ज्ञातुमपरे ।
समागच्छन्त्येते परमविवशास्तेऽपि मुनयः ,
ततो ज्ञात्वा तत्त्वं समभिदधतीमं कुरु कृपाम् ॥

अन्वयः—दीक्षां जिघृक्षोर्वृत्तं श्रुत्वा—ते परमविनताः सानन्दाः मुनयः अतः अधिकं तदीयं वृत्तान्तं श्रोतुम्, अपरे किमिव घटितं ज्ञातुम् च समागच्छन्ति, किन्तु परमविवशास्ते एते मुनयः अपि तत्त्वं ज्ञात्वा इमम् दीक्षां जिघृक्षुम् समभिदधति यत् ततः कृपां कुरु । अर्थात् त्वमितो गच्छ ।

अर्थ—दीक्षा के ग्रहीता की बात सुनकर—वे अतिनम्र आनन्दित मुनि—इससे और अधिक सुनने के लिए, दूसरे मुनि कैसा क्या हुआ जानने के लिए भी आ पहुँचते हैं, किन्तु अधिक विवश वे ही मुनिजन तत्त्व जानकर इस दीक्षार्थी से कहते हैं कि तब तू दया पाल । अर्थात यहां से तू लम्बा हो ।

(३०)

पिपृच्छामेषां ते शमयितुमिमे मे विनयिनः ,
यतन्तेऽथायान्तं मुनिजनवरं नन्तुमसकृत् ।
समुत्तिष्ठन्ते ते स्थलमुपगताः सन्ततमिमम् ,
तदाचार्यं दृष्ट्वा विदधति नतीनां शतमिदम् ॥

अन्वयः—किं जातमिति पृच्छताम् - एषां पिपृच्छां शमयितुम् इमे ते विनयिनः मुनयः यतन्ते, अथ तदा एव ते मुनयः आयान्तम् मुनिजनवरम् आचार्यं दृष्ट्वा असकृत् नन्तुम् समुत्तिष्ठन्ते, (किन्तु) ते स्थलमुपगताः जनाः-इमम् आचार्यं दृष्ट्वा इदं नतीनां शतं विदधति ।

अर्थ—'क्या हुआ' इस बात को पूछने वाले इन मनुष्यों की पूछने की इच्छा को शान्त करने के लिए ये ही वे मुनिजन जब प्रयत्न करने लगे तभी वे मुनि पधारते हुए मुनियों के पूज्य आचार्य श्री को देखकर बार-बार वन्दना करने को उठ खड़े होते हैं, किन्तु वे भूमि पर बैठे हुए श्रावक इन आचार्य जी महाराज को देख सैकड़ों प्रणाम करने लगे ।

(३१)

ततश्चेन्द्रप्रस्थं प्रति विहरणं जायत इदम् ,
जनाः श्रुत्वेत्येवं किमिति बहुधा प्रष्टुमनसः ।
यतन्तेऽथाचार्यः प्रवदति तदा केवलमलम् ,
न कष्टं यत् किञ्चित्तदपि गमनंमे ध्रुवमितः ॥

अन्वयः—ततः इन्द्रप्रस्थं प्रति विहरणं जायते इति श्रुत्वा जनाः इदम् एवम् किम् इति बहुधा प्रष्टुमनसः यतन्ते । तदा आचार्यः प्रवदति यत् किञ्चित् कष्टं न (विद्यते), केवलम् इतः मे गमनम् तदपि ध्रुवम्, अतः निवासाय अथ आग्रहेण अलम् ।

अर्थ—तदनन्तर 'इन्द्रप्रस्थ की ओर विहार हो रहा है' ऐसा सुनकर सभी श्रावक 'यह ऐसा क्यों होता है' ऐसा अनेक प्रकार से पूछने वाले प्रयत्न करने लगे । तब आचार्य श्रीअमरसिंहजी मुनिराज ने फरमाया कि यहाँ कोई कष्ट नहीं है, केवल यहाँ से मेरा प्रस्थान तो फिर भी निश्चित है । इसलिए निवास के हितार्थ आग्रह से कोई काम नहीं चलेगा ।

(३२)

तदेन्द्रप्रस्थस्था निखिलजनता धर्मशरणम् ,
समागच्छन्तं तं मुनिगणधरं स्वागतमलम् ।
समायाताः कर्त्तुं मुनिगणपुरोगाः सविनयम् ,
त्रिकृत्वः साष्टांङ्गं प्रणमति मुनीशं सुमनसा ॥

अन्वयः—तदा इन्द्रप्रस्थस्था मुनिगणपुरोगा निखिलजनता तम् धर्मशरणम् मुनिगणधरं समागच्छन्तं मुनीशं स्वागतम् अलम् कर्त्तुं समायाता, ततश्च सुमनसा त्रिकृत्वः साष्टाङ्गं सविनयं प्रणमति ।

अर्थ—तब दिल्ली की मुनिगण को आगे की हुई सारी जनता उस धर्मरक्षक मुनिमण्डल के साथ आते हुए आचार्य महाराज को स्वागत से सुशोभित करने के लिए पहुँची, और फिर भाव-भीने हृदय से तीन बार साष्टाङ्ग विनय से प्रणाम किया ।

(३३)

अथ श्रद्धाराद्धः स्वयमतुलितं वक्तुमपरम्
स्वकीयं मन्तव्यं परमुपगतान् सन्मुनिवरान् ।
समाख्यातुं स्वीयै रुचिरमधुरैस्तत्त्ववचनैः
प्रवृत्तः शीर्षस्थान् यदिति करणीयं पुनरिमान् ॥

अन्वयः—अथ स्वागतसमये श्रद्धाराद्धः (आचार्यः अमरसिंहः मुनिः) अपरम् अतुलितं स्वकीयं परं मन्तव्यं यत् करणीयम् इति स्वयं वक्तुम् इमान् उपगतान् शीर्षस्थान् स्वीयैः रुचिरमधुरैः तत्त्ववचनैः समाख्यातुं प्रवृत्तः ।

अर्थ—तदनन्तर स्वागत के समय, श्रद्धा से आराधनीय आचार्य श्रीअमरसिंह मुनिजी महाराज 'दूसरा अनोखा अपना बड़ा मन्तव्य, जो किया जाना चाहिए' यह स्वयं बताने के लिए इन आये हुए श्रेष्ठ मुनियों को अपने प्यारे-मीठे खास वचनों से खुलासा करने के लिए तत्पर हुए ।

(३४)

मरोर्भुवं श्रामणजैनशासने, नियोक्तुमिच्छासदृशं गुरोरयम् ।
ततो विधातुं श्रमणावतंसकः, स्वयं मरुं गन्तुमितः समीहते ॥

अन्वयः—ततः अयं श्रमणावतंसकः मरोः भुवं श्रामणजैनशासने नियोक्तुम् अतः गुरोः इच्छासदृशं विधातुम् स्वयं मरुं गन्तुं समीहते ।

अर्थ—तत्पश्चात् ये आचार्य जी महाराज मरु की पृथिवी को श्रमणोपासक जैन धर्म में लगाने को जिससे गुरुदेव की इच्छा के अनुसार कार्य हो, करने के लिए मारवाड़ पहुँचने की चेष्टा करने लगे ।

(३५)

अतोऽग्रिमेऽङ्के यदि वर्णनंमुनेः, प्रसङ्गसङ्गेन सुविस्तृतं भवेत् ।
ततो निरागा अहमस्मि साम्प्रतम्, गुणा अनेकेऽस्य गुरोस्तुदन्ति माम् ॥

अन्वयः—यदि अग्रिमे अङ्के मुनेः वर्णनं विस्तृतं भवेत्, ततः तु साम्प्रतम् अहम् निरागाः अस्मि, (यतो हि) अस्य गुरोः- अनेके गुणाः (वर्णनाय) मां तुदन्ति ।

अर्थ—यदि आगे के सर्ग में मुनिमहाराज का वर्णन प्रसङ्ग के साथ विस्तृत होता हो, तो फिर अब मैं निरपराध हूँ, क्योंकि इन गुरुदेव के अनेक गुण वर्णन करने को मुझे विवश करते हैं ।

(३६)

इयं वसन्तस्य ऋतोर्विशेषता, प्रपर्णवृक्षोऽपि तु पुष्पितः पुनः ।
सुमूकपुंस्कोकिल एव कूजते, कविर्भवाम्येवमहं गुणैर्मुनेः ॥

अन्वयः—इयं वसन्तस्य ऋतोः विशेषता अस्ति, यत् प्रपर्णः अपि वृक्षः, तु पुनः पुष्पितः भवति (पर्णानां तु कथैव का), एवं सुमूकः पुंस्कोकिलः एवापि कूजते (रवाणां तु वर्णनं किम्) ? एवम् मुनेः गुणैः अहंकविः भवामि । मुनेर्गुणानां विशेषतेत्यर्थः ।

अर्थ—यह वसन्त ऋतु की विशेषता है कि पत्ररहित भी वृक्ष, तो फिर फूलवाला हो जाता है, पत्तों की तो बात ही क्या ? ऐसे ही पूर्ण चुप रहने वाला कोकिल कूजने लगता है, गुनगुनाने का कहना ही क्या ? इसी प्रकार मुनिमहाराज के गुणों से, मौन रखने वाला मैं जैनमुनि कवि बन रहा हूँ तो कोई बड़ी बात नहीं है, यह मुनिमहाराज के गुणों की विशेषता है ।

(३७)

अहं तु शब्दैरनुरञ्जयेयं भक्तान् गुरोर्मेऽमरसिंहशास्तुः ।
भवेदिदं काव्यगुणेन तुल्यं तदा कृपैवास्ति महाकवीनाम् ॥

अन्वयः– अहं तु अमरसिंहशास्तुः मे गुरोः भक्तान् शब्दैः अनुरञ्जयेयम् (इति विचार्य वर्णनमकुर्वम्) किन्तु इदं वर्णनं यदि काव्यगुणेन तुल्यं भवति, तदा इयं महाकवीनां कृपा एव अस्ति ।

अर्थ—मैं तो श्रीअमरसिंहाचार्य मेरे गुरु के भक्तों को केवल शब्दों से ही अनुरक्त किया चाहता हूँ—ऐसा विचारकर मैंने वर्णन किया । यदि फिर भी यह वर्णन काव्य के अनुरूप मान लिया जाता है तो फिर मैं इसको, महाकवियों की कृपा है, ऐसा समझूँगा !

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
षष्ठः सर्गः

❀

सप्तमः सर्गः

(१)

दयाविचारेन्दुविभाविलासिनो जिनेन्द्रसिद्धान्तशिरोमणेर्मुनेः ।
नखप्रभाभूषितयोः पदाब्जयोर्नतोऽस्म्यहं भक्ति विरक्तिनालयोः ॥

अन्वयः—दयाविचारेन्दु विभाविलासिनः जिनेन्द्र सिद्धान्त शिरोमणेः मुनेः नखप्रभा भूषितयोः भक्ति-विरक्तिनालयोः अहं (पुष्करमुनिः) नतः अस्मि ।

अर्थ—दया के विचार रूपी चन्द्रमा की विभा के विलासी जिनेन्द्र के सिद्धान्त की शिरोमणि मुनि के नख की प्रभा से अलकृत भक्ति और विरक्ति हैं दण्ड जिनके ऐसे चरण रूपी कमलों में मैं पुष्करमुनि नत हूँ ।

(२)

अथागतं मण्डलिनं गुरुं जना, उपाश्रये संस्थितमात्मदैवतम् ।
अहर्मुखे द्रष्टुमिमं प्रियंवदं, समागताः संलपितुं च ते समे ॥

अन्वयः—अथ ते समे जनाः उपाश्रये संस्थितम् मण्डलिनम् आत्मदैवतं प्रियवदम् इमम् आगतं गुरुम् अहर्मुखे द्रष्टुंसंलपितुं च समागताः ।

अर्थ—नगर में पदार्पण करने के पश्चात् वे सब श्रावक उपाश्रय में विराजे हुए मुनिमण्डल के साथ आत्मदेव स्वरूप प्रियभाषी इन आए गुरुदेव को प्रभात में दर्शन करने के लिए और परस्पर में बातचीत करने के उपस्थित हुए ।

(३)

विहारमुल्लक्ष्य समे प्रसङ्गतः, सुखेन शान्त्या च पदार्पणं पुनः ।
इदं तु जातं किमुतान्यथेति वा, जना अनुप्रश्नमुदाहरन्ति ते ॥

अन्वयः—विहारम् उल्लक्ष्य समे ते जनाः प्रसङ्गतः अनुप्रश्नम् उदाहरन्ति, यत् ते पुनः इदं पदार्पणं तु सुखेन शान्त्या च जातं किम् उत वा अन्यथा इति ?

अर्थ—विहार को लक्ष्य मान कर वे सब श्रावक प्रसंग के अनुसार प्रश्न पर प्रश्न करते हैं कि आपका फिर यह पदार्पण सुख और शान्ति के साथ हुआ क्या, अथवा कोई तरह से हुआ ? यह वे जानना चाहते हैं ।

सर्गेऽस्मिन् 'वंशस्था जुती जरौ ।'

(४)

ततो जनास्ते मुनयोऽनुभाविनः वदन्ति प्रत्युत्तरमेव केवलम् ।
विहारिणः स्युर्मुनयः सदेत्यसौ, शशास शास्ता भगवान् जिनो मुनिः ॥

अन्वयः—ततः ते अनुभाविनः मुनयः केवलं प्रत्युत्तरम् एव वदन्ति, यत् असौ शास्ता जिनः मुनिः भगवान् शशास, यत् सदा मुनयः विहारिणः स्युः । अतो वयं तु विहरामः—इति जानीमः ।

अर्थ—ततः ये दयालु मुनिजन केवल प्रत्युत्तर ही देते कि उस शास्ता जिन मुनि ने शासन किया, कि सदा मुनिजन विहार करने वाले होने चाहिये । इससे हम तो घूमते रहते हैं—यही हम जानते हैं, शेष सब गृहस्थों के लिए छोड़ दिया है ।

(५)

शनैः शनैरेवमुपागता इमे, निदेशनां दातुमिहार्थयन्ति तम् ।
गुरुं स्वकीयं प्रतिभाविलासिनम्, समागतं पञ्चनदादिमं जनाः ॥

अन्वयः—शनैः शनैः एवम् उपागताः इमे जनाः इह निदेशनां दातुम् इमं तम् पञ्चनदात् समागतं प्रतिभाविलासिनं स्वकीयं गुरुम् अर्थयन्ति ।

अर्थ—धीरे-धीरे इस प्रकार ये श्रावक यहाँ पर उपदेश देने के लिए इन्ही पंजाब से आए हुए प्रतिशाली अपने गुरुदेवश्री से अर्ज करते हैं ।

(६)

निवेदनं जैनमतानुयायिनाम्, तथा परेषामपि धर्मधारिणाम् ।
निशम्य शुक्लाम्बरजैनभास्करः, जिनागमज्ञानविभां स्फुरत्यसौ ॥

अन्वयः— असौ शुक्लाम्बरजैन भास्करः आचार्यामरसिंहः जैनमतानुयायिनाम् तथा परेषां धर्मधारिणां निवेदनं निशम्य जिनागमज्ञानविभां स्फुरति ।

अर्थ—तब वे शुक्लाम्बर जैनों के सूर्य आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज ने जैनधर्म के अनुयायी और उसी प्रकार अन्य धर्म के मानने वालों के भी निवेदन को सुनकर जिनभगवान् के आगमों के ज्ञान के प्रकाश को और ज्योतित किया ।

(७)

उपाश्रयं बोधमतो दिशत्यसौ, समागतेभ्योऽनुदिनं तदोषसि ।
क्षिणोति तेषां मनसो विकारजम्, शनैर्मुनिर्दोषमशेषमालपन् ॥

अन्वयः—तदा मुनिः उषसि, अनुदिनम् उपाश्रयं समागतेभ्यः (श्रावकेभ्यः) बोधं दिशति । अतः असौ तेषां (श्रावकाणां) मनसः विकारजम् अशेषम् दोषम् शनैः क्षिणोति ।

अर्थ—तब मुनिश्री प्रभात में प्रतिदिन उपाश्रय आए हुए श्रावकों के लिए ज्ञान का उपदेश करते थे । अतएव वे उन आए हुए श्रावकों के मन के विकारज सम्पूर्ण दोष को धीरे-धीरे क्षीण करते थे ।

(८)

इदं मनोऽश्वो विकटोऽतिदुर्दमः समुच्यते यद्रभसोक्तमस्ति तत् ।
अहं तु मन्ये परमं सहायकम् यतो मनो वेत्ति रहस्यमात्मनः ॥

अन्वयः—आचार्योऽयं शनैः शनैरुपदिशति—यत् कैश्चित् समुच्यते यत् इदं मनः—अतिदुर्दमः विकटः अश्वः (अस्ति) । तत् रभसोक्तम् अस्ति । अहं तु (मनः) परमं सहायकं मन्ये । यतः मन एव आत्मनः रहस्यं वेत्ति ।

अर्थ—आचार्यजी महाराज शनैः शनैः उपदेश करते थे कि कुछ मनुष्यों ने समझाया है कि यह मन बेकाबू भयङ्कर घोड़ा है । वह जल्दी में कहा गया है । मैं तो मन को परम सहायक मानता हूँ । क्योंकि मन ही आत्मा के रहस्य को जानता है ।

(९)

जगद्विधातृ प्रथमं विधायकम्, विनाशकञ्चापि कथोत्तमोद्गतम् ।
मनोऽनुकूलीकरणाय सन्ततम्, प्रयत्न एषोऽस्तु मनोऽस्त्यतो महत् ॥

अन्वयः—अतः मनः महत् अस्ति, (यतः) इदं कथोत्तमोद्गतम् जगद्विधातृ प्रथमं विधायकम् विनाशकम् च अपि अस्ति, (तस्मात्) मनोऽनुकूलीकरणाय एषः प्रयत्नः अस्तु ।

अर्थ—यह मन महान् है । क्योंकि यह जगत् बनाने वाला पहला विधाता है और कहानियों के उत्तम इतिहास से उत्पन्न है, साथ ही जगत् विनाशक भी यही मन है । इसलिए आपका मन को अनुकूल बनाने के लिए सदा प्रयत्न रहना चाहिए ।

(१०)

ततोमनः सत्यमिदं जगद्वृथा, कथेयमित्येव मनीषिभिर्मता ।
भवद्भिरेवाकलनीयमन्यतः, मनोजमस्त्येव जगद् यतः स्वयम् ॥

अन्वयः—ततः इदं मनः सत्यम् जगत् वृथा इति इयं कथा एव मनीषिभिमता । अन्यतः भवद्भिः अपि एव आकलनीयम् यतः जगत् स्वयम् मनोजम् एव अस्ति ।

अर्थ—इसीलिए यह मन सत्य है, जगत् वृथा है, ऐसी यह बात विवेकियों ने भी मानी है । दूसरे आप भी समझ ही रहे हो कि जगत् स्वयं मन से ही पैदा होता है ।

(११)

भवी यदाऽऽयाति कृतं निवर्त्तितुम्, ऋते शरीरान्न हि तस्य सन्निधौ ।
पुनश्च तस्यैव कला प्रकल्पितम्, विशालमागारमिदं तथापरम् ॥

अन्वयः—यदा जन्मी कृतं निवर्त्तितुं (जगति अस्मिन्) आयाति, तदा तस्य सन्निधौ शरीरात् ऋते (किमपि) न हि (आसीत्) । पुनश्च तस्य एव इदं विशालम् आगारम् अस्ति तथा अपरम् (अपि अस्ति) ।

अर्थ—जब प्राणी किए हुए को भुगतने के लिए इस जगत् में आता है, तब उसके पास में शरीर को छोड़कर, कुछ नहीं होता । किन्तु उसके ही फिर कारीगरी वाले विशाल भवन उसी प्रकार और दूसरे सामान सब बन जाते हैं ।

(१२)

प्रवर्त्ततेऽसौ मनसः समुद्भवः, समस्तसंसार विकासकल्पितः ।
अतोऽहमेवं समितौ समब्रुवम्, मनो विधात्रेव मनः सुहृत् परः ॥

अन्वयः—आचार्य उपदिशन् समर्थयति—यत् मनसः समुद्भवः असौ समस्त संसारविकासकल्पितः प्रवर्त्तते । अतः अहम् एवम् समितौ समब्रुवन् यद् (इदं) मन एव विधातृविद्यते, मनः एव परः सुहृत् अस्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री उपदेश करते हुए समर्थन देते हैं कि मन से पैदा हुआ यह सम्पूर्ण संसार का विकास कल्पित है । इसलिए मैंने सभा में बताया था कि मन ही विधाता है और मन ही बड़ा मित्र है ।

(१३)

सुकर्मणां पुण्यफलोदयं मनः, प्रभुर्महावीर इति समुक्तवान् ।
न रत्नमेक लभते विना मनः, सुदूरमेतत्कथनात् पुनस्त्रयीम् ॥

अवन्यः—प्रभुः महावीरः समुक्तवान् यद् मनः सुकर्मणां पुण्यफलोदयम् अस्ति इति । प्राणी मनः विना एकं रत्नं न लभते, पुनः त्रयीं लभते, एतत् सर्वं कथनात् सुदूरं वर्त्तते ।

अर्थ—भगवान् महावीर ने फरमाया है कि मन सुकर्मों के पुण्यफल का उदय जिससे होता हो-ऐसा है । प्राणी मन के बिना एक रत्न को प्राप्त नहीं कर सकता, तब फिर तीन रत्नों को प्राप्त कर लेगा—यह सब कहने से काफी दूर है । अर्थात् ऐसा हो नही सकता ।

(१४)

अतो मनः साधयितुं सुचञ्चलम्, स्वभावतो योजयितुं सुकर्मभिः ।
रसेऽनुलिप्तं यदि वा भवेदिदम्, महाजयोऽयं जयिनो महारणे ॥

अन्वयः—अतः सुकर्मभिः योजयितुम् इदम् स्वभावतः सुचञ्चलं मनः भवेत्, यदि वा सुकर्मणां रसे अनुलिप्तं भवेत्, तर्हि द्रष्टव्यम्—कियदाश्चर्यं मनःकरोति । किन्तु अहं मन्ये यदि एवं भवेत्-तदा तु महारणे अयं जयिनः महाजयः (अस्ति) ।

अर्थ—इसलिए सत्कर्मों के साथ जब इस चञ्चल मन को जोड़ने के लिए अनुकूल प्रयत्न होगा अथवा सत्कर्मों के रस में यह मन गर्क रहेगा, तब देखेंगे कि यह मन क्या गजब ढ़ाता है ! यदि ऐसा बनता हो तो मैं यह मानूंगा कि एक योद्धा ने महायुद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त करली ।

(१५)

रसोपलब्धेर्यदि मूलमिष्यते, तदोपसाधु प्रति गन्तुमीहताम् ।
यदा सनिष्ठो यतते निरन्तरम्, रसानुभूतिः स्वयमव जायते ॥

अन्वयः—यदि, रसोपलब्धेः मूलम् इष्यते, तदा उपसाधु प्रति गन्तुम् ईहताम् । यदा सनिष्ठः सन् निरन्तरं यतते, तदा रसानुभूतिः स्वयम् एव जायते ।

अर्थ—यदि आत्मरस की प्राप्ति का मूल चाहते हो, तब साधक गुरु की सेवा में पहुँचने का प्रयत्न करना होगा । जब सनिष्ठ होकर मूलजिज्ञासु प्रयत्न करता है, तब रस की अनुभूति स्वयं ही पैदा हो जाती है ।

(१६)

न कोऽपि शक्तो भुवने मनोजनः, रसं विना योजयितुं भवेदसौ ।
रसं सनिष्ठोऽनुभवाय शक्ष्यति, रसस्य निष्ठा जननी सतां मते ॥

अन्वयः—असौ, कः अपि भुवने शक्तः न अस्ति, (यः) रसं विना मनः योजयितुं भवेत् । अतः सनिष्ठः (साधक एव) रसम् अनुभवाय शक्ष्यति । (यतो हि) सताम् मते निष्ठा रसस्य जननी (विद्यते) ।

अर्थ— संसार में ऐसा कोई भी समर्थ पुरुष नहीं है, जो रस के बिना इस मन को अपने साथ लगाए रखे । अतः सश्रद्ध साधक ही रसका अनुभव करने के लिए समर्थ हो पायेगा । क्योंकि सन्तों के सिद्धान्त में रस की जन्मदात्री श्रद्धा है ।

(१७)

अतो मनः पातुमिमं रसं प्रियम्, समीहते नित्यमिदं स्वभावतः ।
परन्तु निष्ठा परमा वियोगिनी, रिरंसुरेषा नितरां भ्रमत्यसौ ॥

अन्वयः—अतः इदं मनः स्वभावतः इमम् प्रियं रसं पातुं नित्यं समीहते । किन्तु असौ एषा रिरंसुः निष्ठा परमा वियोगिनी सती नितरां भ्रमति ।

अर्थ—इसलिए यह मन स्वभाव के कारण इस प्रिय रस को पीने के लिए सदा लालायित रहता है । किन्तु वही यह रमणशील श्रद्धा एक वियोगिनी बनकर मारी-मारी फिरती है । अतः समय पर मन को रस नहीं मिल पाता तो यह भी विवश होकर चकराने लगता है । यह इसका व्यङ्ग्यार्थ है ।

(१८)

रसं विना चञ्चलतामुपेत्य तत्, प्रयत्नमन्यं कुरुते यथास्थिति ।
रसं प्रदातुं मनसे सुखार्थिनः, भवन्त्वतस्ते सततं समाहिताः ॥

अन्वयः—रसं विना तत् (मनः) चञ्चलताम् उपेत्य यथास्थिति (रसं प्राप्तुम्) अन्यं प्रयत्नं कुरुते । अतः ते सुखार्थिनः मनसे रसं प्रदातुं सततं समाहिताः भवन्तु ।

अर्थ—बिना रस के वह मन अधीर होकर स्थिति के अनुसार रस की प्राप्ति के लिए दूसरा प्रयत्न करने लगता है । इस कारण से वे सुख के चाहने वाले अथवा कल्याणार्थी पुरुष मन को रस देने के लिए सदा सावधान रहें ।

(१९)

अतो विकल्पान् परिहाय दूषितान्, सुकल्पमेकं सुरसे निमज्जितुम् ।
निधाय चित्ते सततं भ्रमन्तु ते, न कोऽपि किञ्चित् प्रतिकर्त्तुमीहते ॥

अन्वयः—अतः दूषितान् विकल्पान् परिहाय सुरसे निमज्जितुम् एकं सुकल्पं चित्ते निधाय ते सततं भ्रमन्तु, (यतः तेषां) कः अपि किञ्चित् प्रतिकर्तुं न ईहते ।

अर्थ—अत एव दूषित विकल्पों को छोड़कर सुरस में डुबाने के लिए एक सुकल्प को हृदय में रखकर वे आत्मकल्याणार्थी सदा घूमें, क्योंकि फिर उनका कोई भी कुछ बिगाड़ करने का प्रयत्न नहीं करेगा ।

(२०)

समाप्य चित्तस्य विवादसंग्रहम्, मुनिप्रगल्भोऽन्यदिनस्य भाषणे ।
अभीष्टचेष्टाघटनापटीयसम्, तमात्मकं ख्यातुमतो व्यकल्पयत् ॥

अन्वयः—चित्तस्य विवादसंग्रहं समाप्य मुनिप्रगल्भः सः आचार्यः श्रीमान् अमरसिंहः अतः अन्यदिनस्य भाषणे तम् अभीष्टचेष्टाघटनापटीयसम् आत्मकम् आत्मानं वा ख्यातुम् व्यकल्पयत् ।

अर्थ—जनता के चित्त की उलझनों को समाप्त कर मुनिश्रेष्ठ आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज ने अब दूसरे दिन के भाषण में उस मन चाहे जैसे कार्य करने में अत्यन्त प्रवीण आत्मा को प्रकट करने के लिए इच्छा व्यक्त की ।

(२१)

अतोऽद्य संसारविधानकारणम्, स्वभाव विद्योतितरत्नमेतकम् ।
तमात्मनामानमहं सदातनम्, विचार चर्चाविषयीकृतं ब्रुवे ॥

अन्वयः—अतः अद्य अहं विचारचर्चाविषयीकृतं तं संसारविधानकारणं स्वभावविद्योतितरत्नम् सदातनम् आत्मनामानम् एकं ब्रुवे ।

अर्थ—इसलिए क्योंकि मैंने आज विचार की चर्चा का जो विषय नहीं था, फिर भी विषय मानकर, आज मैं उस संसार के बनाने के कारण, स्वभाव से चमकने वाले रत्न के समान अजर-अमर आत्मा जिसका नाम है, ऐसे एक को बताना चाहता हूँ ।

(२२)

अयं सदात्मा सकलैर्विबोधितः, सुविज्ञवर्य्यैः प्रथमैर्मनीषिभिः ।
तथापि युक्त्या विदितं स्वरूपिणम्, महान्तमात्मानमिमं समादधे ।।

अन्वयः—सदा प्रथमैः सकलैः सुविज्ञवर्य्यैः मनीषिभिः अयम् आत्मा विबोधितः अस्ति, तथापि (अहं) युक्त्या इमं स्वरूपिणं विदितं महान्तम् आत्मानम् समादधे ।

अर्थ—सदा पूर्व के सभी सुविज्ञों में से भी सुविज्ञ विवेकियों ने इस आत्मा को समझाया है, तथापि मैं युक्ति के साथ इस विशिष्ट विख्यात महान आत्मा को समाहित किया चाहता हूँ ।

(२३)

अयं विशुद्धः परमोऽतिनिर्मलः कषायरागादिभिरेव साविलः ।
विकृत्य रूपं परिवर्त्ततेयदा, शरीरसंयोगजनुर्मलं यथा ।।

अन्वयः—अयं परमः अतिनिर्मलः विशुद्धश्च आत्मा विद्यते, किन्तु कषायरागादिभिः एव (अयमात्मा) साविल. जायते, तदा विकृत्य रूपं परिवर्त्तते, यथा शरीरसंयोगजनुः मलं भवति ।

अर्थ—यह परम अतिनिर्मल और विशुद्ध आत्मा है, किन्तु कषाय, राग, आदियों से आविल हो जाता है, तब विकृत होकर रूप बदलता है। जैसे शरीर के संयोग से पैदा होने वाला मल होता है ।

(२४)

अयं सुकर्त्ता परमोविकर्तृकः, तथापि सारोपपरा इमे समे ।
करौ, शरीरं, करणानि चादयः, मनः समेता हि विकारकारिणः ।।

अन्वयः—अयमात्मा सुकर्त्ता, परमः विकर्तृकः (अपि) अस्ति । तथापि इमे सर्वे सारोपपराः करौ, शरीरं, करणानि चादयः विद्यन्ते । यतः इमे सर्वे मनः समेताः हि विकारकारिणो भवन्ति ।

अर्थ—यह आत्मा महान कर्त्ता है और बड़ा उपद्रवी है । इतने पर भी यह समझना चाहिए कि ये सब विशेषण रस आत्मा के आरोप-परक हैं। क्योंकि यह वास्तव में विशुद्ध है । जिस प्रकार मन के साथ मिलकर ही हाथ, शरीर और इन्द्रियाँ आदि विकार करने वाली हैं । वस्तुतः ये न बिगाड़ते और न बिगड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार आत्मा की स्थिति है ।

(२५)

पुनश्च मुक्तानवतारिणः समान्, वदन्ति ये ते भ्रमवादिनो जनाः ।
न कर्ममुक्तो जनिमावलम्बते, यतो हि जन्मास्ति विकर्मणः फलम् ॥

अन्वयः—आचार्यः जनभ्रान्तिं निरस्यति—पुनश्च कतिपये ये मुक्तान् अवतारिणः समान् वदन्ति, ते जनाः भ्रमवादिनः (सन्ति)। यतो हि कर्ममुक्तः (जीवः) जनिम् न आवलम्बते, जन्म तु विकर्मणः फलम् अस्ति।

अर्थ—आचार्यश्री जनभ्रान्ति को निरस्त करते हैं कि कुछ जो मुक्तों को अवतारी के समान बताते हैं, वे मनुष्य भ्रान्त हैं। क्योंकि कर्ममुक्त जीव जन्म का कभी आलम्बन नहीं करता, जन्म तो विकर्म का परिणाम है।

(२६)

अनादिकालात् समटन्त्यनेकशः, नितान्तमात्मान इतस्ततः परे ।
इतीदृशोऽसीमित संख्यका इमे, वदन्ति ते केवलिनो महाशयाः ॥

अन्वयः—अनेकशः परे आत्मानः अनादिकालात् इतस्ततः नितान्तं समटन्ति। ईदृशः आत्मानः इमे असीमितसंख्यकाः (सन्ति)। इति ते महाशयाः केवलिनः वदन्ति।

अर्थ—अनेकानेक अन्य आत्माएँ अनादिकाल से लेकर इधर-उधर सदा घूमती चली आ रही हैं। और ऐसी आत्माएँ ये असीमित संख्या की हैं—ऐसा वे महाशय जो केवलज्ञानी हैं, फरमाते हैं।

(२७)

अथापरस्मिन्दिवसे महागुरुः, जनानुपेतान् विषयानुसारिणम् ।
क्रमं समुल्लङ्घ्य सुबोधरीतितः, सुयोगमाहागतजीवकर्मणोः ॥

अन्वयः—अथ अपरस्मिन् दिवसे महागुरुः अमरसिंहः विषयानुसारिणं क्रमम् उल्लङ्घ्य उपेतान् जनान् सुबोधरीतितः आगतजीवकर्मणोः सुयोगम् आह।

अर्थ—तब फिर दूसरे दिन आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज ने विषयानुसारी क्रम को छोड़कर आए हुए श्रावकों को समझाने के लिए सुबोधरीति से, उत्पन्न जीव और कर्म के सुयोग की व्याख्या करने लगे।

(२८)

अयं हि जीवः कुरुते शुभाशुभम्, स्वभावतः कर्मफलं तथाप्नुते ।
इदं महाश्चर्यकरं तु दृश्यते, कृतेऽशुभे कर्मणि चेष्यते शुभम् ॥

अन्वयः—जीवः हि अयम् शुभाशुभम् कुरुते, स्वभावतः च जीवः कर्मफलम् (अपि) तथा (एव) आप्नुते। किन्तु इदं महाश्चर्यकरं दृश्यते, यत् (जीवेन) अशुभे कर्मणि कृते सति शुभम् (फलम्) इष्यते।

अर्थ—यह जीव ही शुभ-अशुभ कर्म करता है और स्वभाव से जीव भी वैसा ही कर्मफल भोगता है। किन्तु यह महाश्चर्यकर हो ऐसा दिखता है कि जीव के द्वारा अशुभ कर्म किए जाने पर शुभ फल चाहता है।

(२९)

न कर्म तं प्रेरयति स्वतो विधिम् विधातुमात्मानमिमं सदातनम्।
स कर्मबद्धः शुभमेव वाऽशुभ, विधिं विधातुं जगति प्रवर्त्तते ॥

अन्वयः—कर्म तम् इमं सदातनम् आत्मानं स्वतः विधिं विधातुं न प्रेरयति, किन्तु सः कर्मबद्धः आत्मा जगति शुभं व अशुभंविधिं विधातुं प्रवर्त्तते।

अर्थ—कर्म उस सदातन आत्मा को अपनी ओर से क्रिया करने के लिए प्रेरणा नहीं देता, किन्तु वह कर्मबद्ध आत्मा संसार में शुभ अथवा अशुभ क्रिया करने के लिए प्रवृत्त होता है।

(३०)

अतोऽयमर्थोभवति प्रभावितः, शुभाशुभैरेवहि कर्मपुद्गलैः ।
युतो भवञ् जीव इति स्वयं ततः, सुखी च दुःखी परिणाममेत्यसौ ॥

अन्वयः—अतः अयम् अर्थः प्रभावितः भवति, यद्धि शुभाशुभैः कर्मपुद्गलैः युतः भवन् जीवः ततः असौ 'अहं सुखी वर्त्ते च अहं दुःखी वर्त्ते' इति परिणामम् एति।

अर्थ—इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि शुभ और अशुभ कर्मों के पुद्गलों से युक्त हुआ जीव खुद 'मैं सुखी हूँ और मैं दुःखी हूँ' ऐसा परिणाम प्राप्त करता है।

(३१)

यथा हि जीवा विविधा इमे समे, महाविचित्रा प्रकृतिश्च निश्चिता ।
तथा तु कर्माणि समान्यनादयः, विकल्पमेषां नहि जैनशासने ॥

अन्वयः—यथा हि इमे समे विविधाः जीवाः अनादयः वर्त्तन्ते तथा तु च महाविचित्रा निश्चिता प्रकृतिः अनादिः, समानि कर्माणि च अनादीनि वर्त्तन्ते । जैनशासने एषां प्रकृति-कर्म-जीवानाम् (अनादिस्थितौ) विकल्पं नहि (अस्ति)।

अर्थ—जिस प्रकार से ये सब अनेक जीव अनादि हैं, तो ठीक यह महाविचित्र सिद्धान्त सिद्ध प्रकृति भी अनादि है और सभी कर्म अनादि ही हैं। जैन शासन में इन प्रकृति, कर्म और जीवों की अनादि स्थिति में कोई विकल्प नहीं है।

(३२)

कषाययोगावथ कर्ममूलकौ, यदात्मना सार्धमथानयोर्द्वयोः ।
समागमोऽयं प्रथितः स बन्धकः, कषायिनोऽन्ये गणितादस्तदन्यत् ॥

अन्वयः—कषाययोगौकर्मबन्धस्य हि मूलम् स्तः, यदा आत्मना सार्धम् अनयोः द्वयोः कषाय-योगयोः समागमः (भवति), अयं सः एव बन्धकः बन्ध एव वा प्रथितः विद्यते । कषायिनः (अपि) अन्ये गणिताः सन्ति तदन्यत् अस्ति ।

अर्थ—कषाय और योग ये दोनों बन्ध की मूल है। जब आत्मा के साथ कषाय और योग इन दोनों का समागम होता है, तब वही बन्ध कहा जाता है। कषायी भी गिने हुए हैं, किन्तु वह अभी प्रतिपाद्य नहीं है।

(३३)

अयं सदात्मा सकलैः समन्वितैः, सुदर्शन-ज्ञानचरित्रकर्मभिः ।
विमुच्यतेऽतः श्रमणा इमे समे, निरन्तरं तां त्रितयीमुपासते ॥

अन्वयः—सकलैः समन्वितैः सुदर्शन ज्ञानचरित्रकर्मभिः अयम् आत्मा सदा विमुच्यते । अतएव इमे समे श्रमणाः तां त्रितयीम् निरन्तरम् उपासते ।

अर्थ—सभी सम्मिलित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक्चरित्रकर्मों से यह आत्मा शुद्ध हो जाती है। इसीलिये ये सब श्रमणजन उस त्रितयी की निरन्तर उपासना करते हैं।

(३४)

ततः प्रशस्तोज्ज्वलकीर्त्तिमण्डलम्, समे जना दर्शनलाभलालसाः ।
मुनिं समावृत्य गुणाञ् जिघृक्षवः, स्तुवन्ति देवेन्द्रमिवेन्द्रवन्दिनः ॥

अन्वयः—ततः समे दर्शनलाभलालसाः गुणान् जिघृक्षवः जनाः प्रशस्तोज्ज्वल कीर्त्तिमण्डलं मुनिम् आचार्यम् अमरसिंहम् समावृत्य इन्द्रवन्दिनः इव देवेन्द्रं स्तुवन्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री के उपदेश समाप्त होने पर—सभी दर्शन के लाभ की इच्छा रखने वाले गुणों के जिघृक्षु श्रावकजन पवित्र कीर्त्ति से व्याप्त मुनि आचार्य श्रीमान् अमरसिंहजी महाराज को घेर कर इन्द्र के वन्दियों के समान देवेन्द्र की स्तुति करने लगे ।

(३५)

रसस्य विस्तारवतीं सरस्वतीम् ,
प्रवाहयन्ति श्रुतितत्त्ववेदिनः ।
अहं यदास्याः पयसो जिघृक्षया ,
स्खलामि तस्यां कवयो हसन्ति ते ॥

अन्वयः—श्रुतितत्त्ववेदिनः कवयः रसस्य विस्तारवतीं-सरस्वतीं प्रवाहयन्ति, यदा अहं अस्याः सरस्वत्याः पयसो जिघृक्षया अस्मि तदा तस्यां स्खलामि, अतः ते हसन्ति ।

अर्थ—श्रुति के तत्त्व के वेत्ता कविजन रस की विस्तारवती सरस्वती बहाने लगे । जब मैं इस सरस्वती के जल को लेने की इच्छा से तैयार होता हूँ, तब उस सरस्वती में खिसल पड़ता हूँ, इससे वे हँसते हैं ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
सप्तमः सर्गः

❀

अष्टमः सर्गः

(१)

सदोरकर्णाश्रितपत्तिमन्मुखम्, गुरुं तमूर्णौघधराधिकन्धरम् ।
तडिच्छटाक्षुण्णपटीविशेषया, विभान्तमेनं मुनयो नमन्ति ते ॥

अन्वयः—तम् ऊर्णौघधराधिकन्धरं सदोर - कर्णाश्रितपत्तिवन्मुखं तडिच्छटाक्षुण्णपटीविशेषया, विभान्तम् एनं गुरुं ते मुनयः नमन्ति ।

अर्थ—उन ऊन के ओघ को रखने वाले साधन को कन्धरा पर धारण कर रखा है जिन्होंने ऐसे, डोरे के साथ कर्णों से आश्रित पत्ति वाला है मुख जिनका ऐसे, बिजली की छटा निरन्तर स्थिर हो पछेवडी से चमकते हुए इन गुरुदेव को वे मुनिजन जो आपश्री के शिष्य हैं, वन्दना करने लगे ।

(२)

ततः क्रियां नित्यविधिप्रतिष्ठितां, प्रलेखनां कर्त्तुमिमां प्रवर्त्तते ।
तथा मुनीश्चापि यथोदितामसौ, विशेषतः प्रेरयितुं मुनीश्वरः ॥

अन्वयः—ततः असौ मुनीश्वरः नित्यविधिप्रतिष्ठितां क्रियां प्रलेखनाम् इमां कर्त्तुं तथा च मुनीन् यथोदितां कर्त्तुम् विशेषतः प्रेरयितुं प्रवर्त्तते ।

अर्थ—तदनन्तर वे आचार्यश्री नित्यविधि के रूप से प्रतिष्ठित क्रिया प्रलेखना को करने के लिए, तथा और मुनियों जैसा कि कहा गया है, करने के लिए विशेषतः प्रेरित करने के लिए प्रवृत्त हुए ।

(३)

प्रलेखनान्ते समयेन भाविनीम्, असौ विधातुं ननु बाह्यभूमिकाम् ।
मुनीन् समाहूय विनोदयन्मुनिः, प्रयातुमिच्छासदृशं तदुक्तवान् ॥

अन्वयः—प्रलेखनान्ते असौ मुनिः समयेन भावनीं बाह्यभूमिकां विधातुं मुनीन् समाहूय ननु इच्छासदृशं प्रयातुं तत् विनोदयन् उक्तवान् ।

अर्थ—प्रलेखना के बाद उन मुनि महाराज ने समय से होने वाली बाह्य भूमिका को करने के लिए मुनियों को बुलाकर अब इच्छानुसार जाने के लिए (तैयार हो जाइये) यदि शङ्का हो तो, ऐसा विनोद करते हुए ।

सर्गेऽस्मिन्नपि 'वंशस्था' एवास्ति । लक्षणं तूक्तमेवपूर्वम् ।

(४)

उपस्थितानानयितुं मुनीनयम्, प्रवर्त्तयन् वाचमवोचदालयान् ।
तदा हि प्राप्तुं प्रतियन्तु गोचरीम्, विकीर्णकेशच्छुरितामलच्छविः ॥

अन्वयः—तदा विकर्णकेशच्छुरितामलच्छविः अयम् आचार्यः उपस्थितान् मुनीन् प्रवर्त्तयन् गोचरीम् आनयितुम् आलयान् प्राप्तुं प्रतियन्तु हि वाचम् अवोचत् ।

अर्थ—तब उपस्थित मुनियों को प्रवृत्त करते हुए, बिखरे से केशों की छिटकती हुई स्वच्छ छवि वाले इन आचार्यश्री ने गोचरी लाने के लिए घर-घर पहुँचने को जाइये, इस प्रकार बात कही ।

(५)

गृहं गृहं यन्ति यथाप्रकल्पितम्, विधातुमिच्छासदृशीं च गोचरीम् ।
विधाय सर्वे मुनयो यथाव्रतम्, इमामि मे ते प्रतियन्त्युपाश्रयम् ॥

अन्वयः—ते सर्वे मुनयः यथा प्रकल्पितं इच्छासदृशीं च गोचरीं विधातुं गृहं गृहं यन्ति, इमे मुनयः इमां गोचरीं यथाव्रतम् विधाय उपाश्रयम् प्रतियन्ति ।

अर्थ—गुरुदेव के आदेश से वे सब मुनिजन प्रकल्पित के अनुसार इच्छानुकूल गोचरी करने को घर-घर पहुँचते हैं । ये मुनिजन गोचरी को व्रत के अनुसार कर उपाश्रय लौटते हैं ।

(६)

उपाश्रयं प्राप्य नता इमे समे, धरन्ति पात्राणि गुरोस्तदान्तिके ।
मुनीश्वरस्तान्यवलोक्य सस्मितम्, पुनर्गुरुस्तानशितुं समुक्तवान् ॥

अन्वयः—तदा उपाश्रयं प्राप्य इमे समे नताः मुनयः गुरोः अन्तिके पात्राणि धरन्ति । पुनः मुनीश्वरः गुरुः तानि पात्राणि सस्मितम् अवलोक्य तान् मुनीन् अशितुं समुक्तवान् ।

अर्थ—तब उपाश्रय पहुँचकर ये सब नम्र मुनिजन गुरु पास में अपने पात्रों को रख देते हैं । फिर आचार्य गुरुदेव ने उन पात्रों को मुस्कान के साथ देखकर उन मुनियों को अशनार्थ आदेश किया ।

(७)

ततो दिनान्ते समये प्रतिक्रमम्, विधिं विधातुं समुपस्थिता इमे ।
कृते विधौ ते मुनयः सुभावतः, गुरुं महात्मानमिमं व्युपासते ॥

अन्वयः—ततः इमे मुनयः दिनान्ते समये प्रतिक्रमं विधिं विधातुं समुपस्थिताः (अभवन्) । विधौ कृते सति ते मुनयः सुभावतः इमं महात्मानं गुरुं व्युपासते ।

अर्थ—तदनन्तर दिनान्त समय पर ये मुनिजन प्रतिक्रम (प्रतिक्रमण) विधि का सम्पादन करने के लिए उपस्थित हुए । प्रतिक्रमण के समाप्त होने पर वे मुनिजन श्रद्धा से इन महात्मा गुरुदेव की विशेष उपासना करने लगे ।

(८)

विशिष्ट सेवासमये महाशयाः, गुरोः सकाशे विविधाशयाश्रयाम् ।
अशेषशङ्का शमनाय मानसीम्, विरोधिशङ्कामधिगन्तुमीशते ॥

अन्वयः—महाशयाः (मुनयः) विशिष्ट सेवासमये अशेषशङ्काशमनाय गुरोः सकाशे मानसीं विविधाशयाश्रयां विरोधिशङ्काम् अधिगन्तुम् ईशते ।

अर्थ—गम्भीर हृदय के मुनिजन विशिष्ट सेवा के समय पर सम्पूर्ण सन्देहों को शान्त करने के लिए गुरुदेव के पास में मन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक अभिप्राय हैं आश्रय जिसके विरोधियों की शङ्का को समझने के लिए समर्थता प्राप्त करते हैं ।

(९)

ततश्शयानः श्रुतिशेमुषापतिः, विरोधिशङ्काशमनाय सुन्दरम् ।
विचाररत्नं सकलं प्रदेवितुम्, मुनीशवर्यो निकषं व्यबोधयत् ॥

अन्वयः—ततः शयानः श्रुतिशेमुषीपतिः मुनीशवर्यः विरोधिशङ्काशमनाय सुन्दरं सकलं विचाररत्नं-प्रदेवितुं निकषम् व्यबोधयत् ।

अर्थ—तदन्तर पौढ़े हुए श्रुतिबुद्धि के स्वामी आचार्य महाराज ने विरोधियों के सन्देहों को शान्त करने के लिए सुन्दर कलाओं के साथ विचार रूपी रत्न को उत्तेजित करने के लिए कसौटी बतादी ।

(१०)

विलक्षणं तं निकषं विबुध्यते, निषेदिवांसोऽतिशयं व्यलासिषुः ।
परस्परं नाम हसन्ति सस्मयम्, कियन्महत्त्वं परमं हि नो गुरोः ॥

अन्वयः—ते मुनयः तं विलक्षणं निकषं विबुध्य निषेदिवांसः सन्तः अतिशयं व्यलासिषुः । (ते च मुनयः) परस्परं-सस्मयं हसन्ति, यत् नः गुरोः हि कियत् परमं महत्वं नाम ।

अर्थ—वे मुनिजन उस अनोखी कसौटी जानकर बैठे-बैठे अतिशय की चर्चा कर उठे । और वे ही मुनिजन मुस्कान के साथ परस्पर में हँसने लगे कि हमारे गुरुदेव का कितना बड़ा महत्व है । जिसको हम अब तक नहीं समझ पाए, यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(११)

अहर्निशं संयमिनां सतामिमम् क्रमं निरीक्ष्यातिशयं शरीरिणाम् ।
समे परं विस्मितमानसा इमे, जनाः प्रशंसन्ति जिनेन्द्रशासनम् ॥

अन्वयः—शरीरिणां संयमिनां सताम् अहर्निशम् इमम् अतिशयं क्रमं-निरीक्ष्य इमे समे विस्मितमानसाः जनाः जिनेन्द्रशासनं परंप्रशंसन्ति ।

अर्थ—शरीरधारी संयमी सन्तों के रात-दिन इस अतिशय क्रम को देखकर ये सब आश्चर्यचकित मनुष्य जिन भगवान् के प्रशस्त धर्म की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि धर्म हो तो ऐसा (धर्म) हो ।

(१२)

इदं महाश्चर्यकरं सुजीवनम्, यशश्च दिल्लीप्रतिसद्म विस्तृतम् ।
प्रसङ्गशङ्काङ्कुरयुक्तिमद्वचः, जनायथेच्छं कथयन्ति चानिशम् ॥

अन्वयः—इदं महाश्चर्यकरं सुजीवनम्, यशश्च दिल्लीप्रतिसद्म विस्तृतं जातम् । जनाः च यथेच्छं प्रसङ्गशङ्काङ्कुरयुतिमत् वचः अनिशं कथयन्ति ।

अर्थ—यह मुनिजन-सम्बन्धी अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रशस्त जीवन और यश दिल्ली नगर के घर-घर में फैल गया । और जनता क्रम से सन्देह पर सन्देह जोड़े हुए कथानक इच्छानुसार हमेशा सुनाने लगे ।

(१३)

यदा समेषां विषयीभवन्नयम्, महामुनिर्गौरव-सौरभं वहन् ।
तदाऽनुभूतो यवनाधिभूभृता, बहादुरेणावगतश्च संश्रुतः ॥

अन्वयः—गौरव-सौरभं वहन् यदा समेषां विषयीभवन् अयं महामुनिः (अभवत्) । यदा यवनाधिभूभृता बहादुरेण (अपि) अयम् अनुभूतः, अवगतः संश्रुतः च जातः ।

अर्थ—गौरव की सुगन्ध को वहन करते हुए जब सभी के विषय जैसे बने ये आचार्यजी महाराज मुगल बादशाह बहादुरशाह के द्वारा भी आपश्री अनुभूत, अवगत और संश्रुत हुए ।

(१४)

तदायमासीच्च बहादुरोऽधिपः तनूजनेर्गर्भकथाव्यथाधरः ।
अतो महाक्रोधवशेन तेन सा, तनूजनिर्मृत्युपथाय कल्पिता ॥

अन्वयः—तदा च अयम् अधिपः बहादुरः तनूजनेः गर्भकथा व्यथाधरः आसीत् । अतः महाक्रोधवशेन तेन बहादुरेण सा तनूजनिः मृत्युपथाय कल्पिता (अभवत्) ।

अर्थ—और उस समय यह बादशाह बहादुरशाह पुत्री के गर्भ की कहानी की व्यथा को धारण किए हुए था । इससे अत्यन्त क्रोध के अधीन हुए उस बहादुरशाह ने उस पुत्री को मृत्युदण्ड सुना दिया था ।

(१५)

अनेक यत्नैरवबोधितोऽप्यसौ, दृढोऽभवद् दण्डमिमं व्यवस्थितुम् ।
तदा स्थितोऽयं निकषा बहादुरम्, न्यवेदयत्तं खिवसी महोदयः ॥

अन्वयः—(यदा) असौ अनेकयत्नैः अवबोधितः अपि इमं दण्डं व्यवस्थितुं दृढः अभवत् । तदा बहादुरं निकषा स्थितः अयं खिवसीमहोदयः तं बहादुरशाहं न्यवेदयत् ।

अर्थ—वह अनेक यत्नों से समझाया-बुझाया हुआ भी इस मृत्युदण्ड की व्यवस्था करने के लिए जब दृढ़ रहा, तब बहादुरशाह के पास बैठे हुए दीवान खिवसीजी ने उस बहादुरशाह से निवेदन किया ।

(१६)

प्रसिद्धभण्डारिकुलावतंसकः, महीभृतो योधपुरस्य कारणात् ।
अयं प्रमन्त्री खिवसी महोदयः, बहादुरं सम्मिलितुं तदागमत् ॥

अन्वयः—तदा अयं प्रसिद्ध भण्डारिकुलावतंसकः प्रमन्त्री खिवसी-महोदयः जोधपुरस्य महीभृतो कारणात् बहादुरं सम्मिलितुं आगमत् ।

अर्थ—तब उस समय ये प्रसिद्ध भण्डारी कुल के भूषण दीवान श्री खिवसीजी जोधपुर के महाराज की वजह से बहादुरशाह से मिलने के लिए आए थे ।

(१७)

बहादुरं तं युवतिद्वयेऽप्यसौ, रिरंसुके गर्भ उपात्तविग्रहः ।
भवत्यहो मे गुरुदेव उक्तवान्, निवेदयन्नेवमभाषतेति सः ॥

अन्वयः—रिरंसुके युवतिद्वये सति असौ उपात्तविग्रहः गर्भः अपि भवति एवम् अहो मे गुरुदेव उक्तवान् इति निवेदयन् सः खिवसीमहोदयः तं बहादुरम् अभाषत ।

अर्थ—कामार्त्त युवतिद्वय के होने पर यह शरीरधारी गर्भ भी होता है, इस प्रकार अहो मेरे गुरुदेवश्री ने फरमाया है—ऐसा निवेदन करते हुए उन खिंवसीजी ने उस बहादुरशाह से कहा था ।

(१८)

अथेति सत्यं यदि ते भवेदिदम्, तदादिशत्सोऽविरतं प्रतीक्षताम् ।
वधं सुतायाः कृमिजं परीक्षितुम्, किमेति तथ्यं वचसश्च ते गुरोः ॥

अन्वयः—अथ ते इदं सत्यं यदि भवेत् तदा सः सुतायाः वधम् अविरतं प्रतीक्षताम् इति कृमिजं गर्भं परीक्षितुम् आदिशत् । ते गुरोः च वचसः किं तथ्यम् एति ।

अर्थ—यदि कहीं तेरा यह सत्य हो—इस आशङ्का से उस समय उस बहादुर-शाह ने पुत्री के कत्ल की अब प्रतीक्षा करो—ऐसा कृमिज गर्भ की परीक्षा करने के लिए, आदेश किया और तेरे गुरु के वचन का क्या तथ्य प्राप्त होता है ? यह भी ज्ञात हो जायेगा यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(१९)

तथेति काले विगते यथोदितम्, गुरोर्वचः सत्यमियाय साम्प्रतम् ।
यतो हि सर्वैःस बहादुरैर्जनैः, निरीक्षितो राजसगर्भजः स्वयम् ॥

अन्वयः—विगते काले गुरोः यथोदितं वचः साम्प्रतं सत्यम् इयाय । यतो स बहादुरैः सर्वैः जनैः स्वयं राजसगर्भजः इति तथा निरीक्षितः ।

अर्थ—समय बीतने पर गुरुदेव के कथनानुसार बात अब सत्य हुई । क्योंकि बहादुरशाह के साथ सभी मनुष्यों ने स्वयं रज के गर्भ से पैदा ऐसा बताया हुआ देखा ।

(२०)

अतः स्वयं तद्वचसो यथायथम्, प्रभावमन्तःकरणे निधाय सः ।
बहादुरोऽसौ खिवसीसहायितः ददर्श देवेन्द्रगुरुं तदामरम् ॥

अन्वयः—अतः स्वयं तद्वचसः यथायथं प्रभावम् अन्तःकरणे निधाय तदा सः असौ खिवसीसहायितः बहादुरः देवेन्द्रगुरुम् अमरं ददर्श ।

अर्थ—इसलिए स्वयं उनके वचन के यथार्थ प्रभाव को अन्तःकरण में रखकर तब खिवसीजी के साथ वही यह बहादुरशाह देवेन्द्र के गुरु अमरसिंहजी महाराज को देखने पहुँचा ।

(२१)

दयानिधानं यशसोऽमलच्छविम्, विकारगम्भीरसमुद्रमज्जितम् ।
जनोघमुत्तारयितुं धृतव्रतम्, तदानमत्तं मुनिपुङ्गवं नृपः ॥

अन्वयः—तदा नृपः बहादुरशाहः तं दयानिधानं यशसः अमलच्छवि विकारगम्भीरसमुद्रमज्जितं जनोघम् उत्तारयितुं धृतव्रतं मुनिपुङ्गवम् अनमत् ।

अर्थ—तब राजा बहादुरशाह ने उस परम दयालु, यश की पवित्र मूर्त्ति, विकार के गम्भीर समुद्र में डूबे हुए जनसमुदाय को पार उतारने के लिए व्रत धारण करने वाले आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज को नमस्कार किया ।

(२२)

महामुनीन्द्रादमरादिहागतात्, तदायमात्मानमुपेत्य शिष्यताम् ।
उपस्थिते सन्मुनिमण्डलेऽमले, गुरोर्हि भक्तं समघोषयत् स्वयम् ॥

अन्वयः—इह आगतात् महामुनीन्द्रात अमरात् शिष्यताम् उपेत्य तदा उपस्थिते अमले सन्मुनिमण्डले अयम् आत्मानं गुरोः भक्तं स्वयं हि समघोषयत् ।

अर्थ—यहाँ पधारे हुए आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज से शिष्यता प्राप्त कर तब उपस्थित पवित्र सन्मुनिमण्डल के रहते हुए इस बहादुरशाह ने अपने आपको गुरुदेव का भक्त स्वयं ही घोषित किया ।

(२३)

तदा दयालुर्मुनिपुङ्गवोऽधिपम्, बहादुरं पृच्छति धर्ममङ्गलम् ।
नृपः प्रसन्नो दयया मुनेरिमम्, गुरुं समादेशयितुं न्यवेदयत् ॥

अन्वयः—तदा दयालुः मुनिपुङ्गवः अधिपं बहादुरं धर्ममङ्गलं पृच्छति । मुनेः दयया प्रसन्नः नृपः इमं गुरुं समादेशयितुं न्यवेदयत् ।

अर्थ—उस समय दयालु आचार्यश्री ने राजा बहादुरशाह से धर्म-मङ्गल की पूछताछ की । मुनि की दया के कारण प्रसन्न हुए राजा ने आदेश करने के लिए निवेदन किया ।

(२४)

सदाप्रसन्नेन सतामुना हृदा, बहादुरोऽयं दयितुं च जीवितम् ।
प्रजाजनं धर्मपथेन सेवितुम्, प्रणोदितोऽभूद् भृशमानतस्ततः ॥

अन्वयः—ततः अमुना सदा प्रसन्नेन सता भृशम् आनतः बहादुरः जीवितं हृदा दयितुं प्रजाजनं च धर्मपथेन सेवितुं प्रणोदितः अभूत् ।

अर्थ—तदनन्तर इन सदा प्रसन्न सन्त के द्वारा परमविनीत यह बहादुरशाह जीवित पर दया रखने के लिए और प्रजा को धर्म के मार्ग से पालने के लिए प्रेरित हुआ ।

(२५)

गुरोर्यथादेशमहं यथायथम्, विधातुमेवं प्रयतेय शासने ।
विना निदेशं यदि राज्यशासने, हस्तस्य न क्षेपमहं सहे पुनः ॥

अन्वयः— अहं गुरोः यथादेशं विधातुं शासने यथायथम् एव प्रयतेय। यदि राज्यशासने निदेशं विना (हस्तक्षेपो भवति), तदा अहं पुनः हस्तस्य क्षेपं न सहे।

अर्थ—मैं गुरुदेव के आदेश के अनुसार करने के लिए शासन में जैसा चाहिए वैसा ही प्रयत्न करूंगा। यदि राजा के शासन में बिना निदेश के हस्तक्षेप होता है, तब मैं उस हस्त के क्षेप को नहीं सह सकता।

(२६)

अयं हि भण्डारिपदाभिशंसितः, ततः प्रसङ्गानुमितेन चेतसा ।
गुरोर्मरुं देशमितः प्रतीरणम्, व्यजिज्ञपत्तं पृथिवीपुरन्दरम् ॥

अन्वयः—ततः प्रसङ्गानुमितेन चेतसा भण्डारिपदाभिशंसितः अयं खिवसी महोदयः, इतः गुरोः ईरणम् मरुं देशं प्रति भविष्यति इति तं पृथिवीपुरन्दरं व्यजिज्ञपत्।

अर्थ— तब फिर प्रसङ्ग से अनुमित चित्त से भण्डारिपदोक्त इन्हो खिवसीजी ने—यहां से गुरुजी का विहार मारवाड़ की ओर होगा ऐसा उस बादशाह बहादुरशाह को ज्ञात कराया।

(२७)

अतः प्रशंसासहितेन चेतसा, समादिशत्तं खिवसीमहोदयम् ।
गुरो र्यदृच्छासहितं व्यवस्थितुम्, मरोर्धराधीशमहं स्वतोऽलिखम् ॥

अन्वयः—अतः (सः) बहादुरशाहः प्रशंसासहितेन चेतसा तं खिवसी महोदयं समादिशत्—यत् अहं स्वतः मरोः धराधीशम् गुरोः यदृच्छासहितं व्यवस्थितुम् अलिखम्।

अर्थ—इसलिए उस बहादुरशाह ने मय प्रशंसा के हृदय से उन खिवसीजी को सूचित किया कि गुरुदेव की मर्जी के साथ प्रबन्ध करने के लिए मैंने स्वयं मारवाड़ को लिख भेजा है।

(२८)

यथेच्छमिच्छुर्गमनस्य चेद् भवेत्, तदेव नेदं समभीप्सितं मम ।
यतो हि सन्तः सततोपकारिणः सदा सतां दर्शनमिच्छवो वयम् ॥

अन्वयः—अग्रेऽपि शाहस्तं सूचयति—चेत् यथेच्छं गमनस्य गुरुः इच्छुः भवेत् तदा एव (अहमेतत्कर्त्तुमिच्छामि, किन्तु) इदं मम समभीप्सितं न (अस्ति)। यतो हि सन्तः सततोपकारिणः भवन्ति, अतः वयं सदा तेषां सतां दर्शनम् इच्छवः स्मः।

अर्थ—आगे भी बहादुरशाह सूचित करता है कि यदि इच्छानुसार पदार्पण के गुरुदेव इच्छुक हों, तभी मैं यह किया चाहता हूँ, किन्तु यह मेरा चाहा हुआ नहीं है। क्योंकि सन्त निरन्तर उपकारी होते हैं। अतः हम सदा उन सन्तों के दर्शनाभिलाषी रहते हैं।

(२९)

अतः स्थितिं दूरहितार्थसाधने, विचार्य मन्त्री खिवसीमहोदयः ।
विधौ गुरुं योजयितुं हिताय तम्, विनेतुमेवं यतते निरन्तरम् ॥

अन्वयः—अतः स्थितिं विचार्य मन्त्री खिवसी महोदयः दूरहितार्थ-साधने विधौ हिताय तं गुरुं योजयितुम् एवं विनेतुं निरन्तरं यतते।

अर्थ—इसलिए स्थिति को देखकर दीवान खिवसीजी साहब दूरगामी फल-वाले कार्य के लिए अपने गुरुदेव को योजित करने के लिए ऐसी विनति में ही लगे रहते थे।

(३०)

यतोऽपि सत्यं यदि वर्त्तते पुनः, तथापि कार्यं समतीव दुष्करम् ।
मरोर्धरायां यतयः प्रपञ्चिनः, किमप्यपूर्वं तनुयुर्विडम्बनम् ॥

अन्वयः—यदि अपि सत्यं वर्त्तते, तथापि कार्यं समतीव दुष्करम् अस्ति। यतः प्रपञ्चिनः यतयः मरोः धरायां सन्ति, (ते) किमपि अपूर्वं विडम्बनं तनुयुः।

अर्थ—यद्यपि सत्य है, तथापि कार्य बहुत ही कठिन है। क्योंकि प्रपञ्ची यतिजन मारवाड़ की भूमि पर रहते हैं। वे कुछ भी अपूर्व विडम्बना फैला देंगे।

(३१)

अथ प्रबन्धाय हितप्रयोजने, विहारकार्ये परमोपयोगिनम् ।
पुनस्तमादेशमुपाय हेतुकम्, प्रलभ्य हर्षं भजते महोदयः ॥

अन्वयः—अथ हित प्रयोजने विहारकार्ये प्रबन्धाय तं परमोपयोगिनम् उपायहेतुकम् आदेशं प्रलभ्य पुनः महोदयः हर्षं भजते ।

अर्थ—बहादुरशाह के लिखित आदेश मिलने पर—हित-उपकार प्रयोजन वाले विहारकार्य के विषय में प्रबन्ध करने के लिए उस परम उपयोगी उपायरूप हेतु आदेश को प्राप्त कर फिर दीवान खिवसी महोदय प्रसन्न हुए ।

(३२)

यतो मरौ ते यतयः प्रवञ्चकाः, विहारकार्ये दधति प्रसङ्कटम् ।
असूचयत्तं खिवसीमहोदयम्, मुनिर्महानेवमिदं तु पूर्वतः ॥

अन्वयः—यतः महान् मुनिः एवम् इदं तु पूर्वतः तं खिवसी महोदयम् असूचयत् यत् मरौ प्रवञ्चकाः यतयः विहारकार्ये प्रसङ्कटं दधति ।

अर्थ—क्योंकि पूज्य मुनि महाराज ने इस प्रकार यह तो पहले ही इस दीवान खिवसी को सूचित कर दिया था कि मारवाड़ में प्रवञ्चक यतिजन विहार-कार्य में महान् संकट पैदा करते हैं ।

(३३)

पुनश्च हस्तीकृत सन्नियोजनम्, प्रबन्धमभ्येत्य दुरूहनिग्रहम् ।
पथा प्रयातुं मरुदेशमुर्वरम्, धर्मं व्यवस्थापयितुं मुनिर्बभौ ॥

अन्वयः—हस्तीकृत सन्नियोजनं प्रबन्धम् अभ्येत्य पथा दुरूहनिग्रहं मरुदेशं प्रयातुम् उर्वरं धर्मं व्यवस्थापयितुं मुनिः बभौ ।

अर्थ—हस्तगत किया है सुन्दर नियोजन जिसका ऐसे प्रबन्ध को अधिगत मार्ग से अतर्कित है निग्रह जिसका ऐसे मारवाड़ देश को पहुँचने के लिए उपजाऊ धर्म को व्यवस्थित करने के लिए मुनिश्री दमक उठे ।

(३४)

भ्रान्तं तथापि महिमानमुपेयिवांसम् ,
जैनं जनं निगदितुं मुनयः परे ते ।
सन्तीति तं मुनिजनेषु परोऽहमेकः ,
शक्नोमि तत्किमपि वक्तुमलं परेण ॥

अन्वयः—'ते परे मुनयः सन्ति' इति मुनिजनेषु परः एकः अहम् तं भ्रान्तं तथापि महिमानम् उपेयिवांसं जैनं जनं निगदितुं शक्नोमि, तत् किं परेण अपि वक्तुम् अलम् ।

अर्थ—'वे दूसरे मुनिजन हैं' ऐसा मुनियों में एक ही हूँ, जो उस भ्रान्त इतने पर भी प्रसिद्ध जैन जन को कहने के लिए समर्थ हूँ । क्या वह दूसरे भी कहा जा सकता है । अर्थात् नहीं ।

(३५)

लोका दिगम्बरमुनिं धृतशुक्लवस्त्रम् ,
जानन्त्यपि प्रतिमुनिं न परं तमन्यम् ।
साधोरुपासकमिमं श्रितवक्त्र-पत्तिम् ,
जानन्तु तं मुनिरहं प्रयते मरौ ते ॥

अन्वयः—लोकाः दिगम्बर मुनिं जानन्ति, धृतशुक्लवस्त्रं मुनिम् प्रति अपि जानन्ति, (किन्तु) तं धृतशुक्लवस्त्रम् अन्यम् श्रिततुण्डपत्तिं साधोः उपासकम् इमं परं मुनिं न जानन्ति । मुनिः अहं मरौ तं मुनिं ते लोकाः जानन्तु' (इति) प्रयते ।

अर्थ—मनुष्य दिगम्बर मुनि को जानते हैं, शुक्लवस्त्रधारी मूर्त्तिपूजक मुनि को भी जानते हैं, किन्तु उस शुक्ल वस्त्रधारी दूसरे मुखपति वाले श्रमणोपासक इस दूसरे अर्थात् विशिष्ट मुनि को नहीं जानते । मुनि अमरसिंह मैं 'मारवाड़ में भी उस मुनि को वे मनुष्य जानें' ऐसा प्रयत्न करता हूँ ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
अष्टमः सर्गः

❀

नवमः सर्गः

(१)

ये सन्ति देवसदृशो गरिमाणमाप्तम्
धर्मं प्रतिष्ठितमरे लघिमानमन्ये ।
प्राप्तुं चरन्ति विकृतान् यतिनो जनांस्तान्,
रोद्धुं कृतोद्यमसमांस्तु मुनीन् नमामि ॥

अन्वयः—ये देवसदृशः सन्ति, (ते मुनयः) गरिमाणम् आप्तं प्रतिष्ठितं धर्मं प्राप्तुं चरन्ति, अरे अन्ये यतिनः तु (तमेव) धर्मं लघिमानं प्राप्तुं चरन्ति। तान् विकृतान् यतिनः जनान् रोद्धुं ये कृतोद्यमसमाः मुनयः सन्ति, तान् देवसदृशः कृतोद्यमसमान् मुनीन् (पुष्कर मुनिः) अहं नमामि।

अर्थ—जो देवों के समान हैं, वे मुनिजन गौरवापन्न प्रतिष्ठित धर्म को प्राप्त करने के लिए आचरण करते हैं, दुःख है कि दूसरे यतिजन तो उसी धर्म को लाघव प्राप्त हो, ऐसा आचरण करते हैं, ऐसे उन विकृत यतिजन को रोकने के लिए जो कृतोद्यम सदृश मुनिजन रहे, ऐसे उन देवतुल्य कृत प्रयत्न जैसे मुनियों को (पुष्कर मुनि) मैं प्रणाम करता हूँ।

(२)

आसीदसौ जयपुरस्य कथानकेन
लोकेऽपि सिद्ध इव भूमिगतः प्रतीतः ।
भक्ता इमं त्वमरसिंह मुनिं मुनीशम्,
नन्तुं गुरोश्चरणयोः समुपागमंस्ते ॥

अन्वयः—लोके जयपुरस्य कथानकेन अपि भूमिगतः सिद्धः इव असौ प्रतीतः आसीत्। ते भक्ताः तु गुरोः चरणयोः नन्तुम् इमं मुनीशम् अमरसिंह मुनिं समुपागमन्।

अर्थ—संसार में जयपुर के कथनोपकथन से भी भूमि पर पधारे हुए सिद्ध के समान जान लिए गये थे। वे भक्त तो गुरुदेव चरणों में प्रणाम करने के लिए इन आचार्यश्री अमरसिंहजी के पास पहुँचे थे।

सर्गेऽस्मिन् 'वसन्ततिलका तभौ जौ गौ।'

(३)

जातो महान् जयपुरे पटवाकुलीनः ,
श्रीरङ्गलालधनिकः कुरुते प्रतिज्ञाम् ।
द्रव्यस्य संग्रहमतस्त्वधिकं न कुर्याम् ,
सीमां तदा पुनरयं यतते निकृष्टाम् ॥

अन्वयः—जयपुरे जातः पटवाकुलीनः महान् श्रीरङ्गलालधनिकः प्रतिज्ञां कुरुते यद् (अहं) तु द्रव्यस्य संग्रहम् अधिकं न कुर्याम् । अतः तदा अयम् (द्रव्यस्य) पुनः सीमां निकृष्टां यतते ।

अर्थ—जयपुर में उत्पन्न हुए पटवा वंश के बड़े धनी श्री रंगलालजी ने प्रतिज्ञा की कि गुरुदेव ! अब मैं तो धन का संग्रह अधिक नहीं करूँगा । इसलिए ये द्रव्य की सीमा बहुत कम करने का प्रयत्न करने लगे ।

(४)

बोध्योऽभवन्ननु पुनर्मुनिनामुनासौ ,
द्रव्यस्य संग्रहमिमं ननु शोचय त्वम् ।
यस्माददः समधिकं धनमेतदेवम् ,
दानेऽधिकं पुनरतो व्ययमेतु नित्यम् ॥

अन्वयः—पुनः अमुना मुनिना असौ धनिक श्रीरंगलालः बोध्यः अभवत्, यत्ननु त्वम् इमं द्रव्यस्य संग्रहं शोचय । सीमां संकुचितां न कुर्याः इत्यर्थः । यस्मात् अदः समधिकं धनं (भवेत्) अतः एवम् एतत् धनं दाने अधिकं व्यम् नित्यं पुनः एतु ।

अर्थ—सेठजी के भाव को समझे हुए उन मुनि महाराज के द्वारा उनको समझाया गया कि तुम इस द्रव्य के संग्रह की सीमा सोच लो । जिससे कि यदि यह धन अधिक होगा तो फिर वह दान आदि में दिया जा सकेगा और पुण्य का कार्य चलता रहेगा ।

(५)

सर्वे तदानुभविनोऽस्य महामुनेस्ते ,
संवीक्ष्य तस्य विभवं क्षणशोविवृद्धम् ।
श्री रंगलालधनिकस्य मनोरहस्यम् ,
सीमाभि-भंग करणे प्रकटं प्रथन्ते ।

अन्वयः—तदा ते सर्वे अनुभविनः तस्य श्री रङ्गलालधनिकस्य क्षणशः विवृद्धं विभवं संवीक्ष्य अस्य महामुनेः सीमाभिवृद्धिकरणे मनोरहस्यं प्रकटं प्रथन्ते ।

अर्थ—तब वे सब अनुभवी पुरुष, श्रीरंगलाल धनाढ्य के क्षण-क्षण में बढ़ते हुए धन-सम्पत्ति आदि को देखकर इन आचार्यश्री के द्रव्य संग्रह की सीमा के बढ़वाने करने में मन के रहस्य को प्रकट करने लगे ।

(६)

साकं महामुनिरयं मुनिमण्डलेन ,
प्रस्थाय चिच्छति पुनर्नगरादितस्तम् ।
मध्येगतं त्वजयमेरुमपीह दृष्ट्वा ,
चण्डावल प्रति पुरं त्वरया विहर्त्तुम ।।

अन्वयः—सम्प्रति अयं महामुनिः मुनिमण्डलेन साकम् इतः नगरात् प्रस्थाय पुनः इह तु तं मध्येगतम् अजयमेरुम् अपि दृष्ट्वा चण्डावलं पुरं प्रति विहर्त्तुम् इच्छति ।

अर्थ—सम्प्रति ये आचार्यश्री अपने मुनि मण्डल के साथ इस जयपुर नगर से प्रस्थान कर और फिर यहाँ पर उस इतिहास प्रसिद्ध मध्यवर्त्ती अजमेर को देखकर चण्डावल ग्राम की ओर विहार की इच्छा करने लगे ।

(७)

श्रीमन्मुनीन्द्रमुनिशुभ्रपदारविन्दम् ,
चण्डावलं नगरकं प्रति वृद्धिमेति ।
श्रुत्वेति हृष्टहृदयाः स्वजना विरेजुः ,
दुःखं शनैः पुनरिदं यतिभिर्विमृष्टम् ॥

अन्वयः—श्री मन्मुनीन्द्र मुनिशुभ्र पदारविन्दं (कर्तृ) नगरकं चण्डावलं प्रति वृद्धिम् एति-इति श्रुत्वा हृष्टहृदयाः स्वजनाः विरेजुः । किन्तु यतिभिः पुनः शनैः इदं दुःखमेव विमृष्टम् ।

अर्थ—श्रीमान् आचार्यश्री अमरसिंह मुनि के स्वच्छ अथवा पवित्र चरणकमल उपग्राम चण्डावल की ओर बढ़ रहे हैं—ऐसा सुनकर भक्तजन परम प्रसन्न हो उठे । किन्तु यतियों ने फिर धीरे-धीरे इसको दुःख ही माना अथवा सोचा ।

(८)

स्थाने प्रभावमतुलं प्रसमीक्ष्य तीक्ष्णम् ,
तेषां मतौ विकृति सञ्ज्वलनं यतीनाम् ।
जातं ततो मनसि ते निरतं ज्वलन्तः ,
मृत्युं मुने रचयितुं प्रयता अभूवन् ॥

अन्वयः—आचार्यस्य अतुलं प्रभावं स्थाने तीक्ष्णम् प्रसमीक्ष्य तेषां यतीनां मतौ विकृतिसञ्ज्वलनं जातम्, ततः ते मनसि निरतं ज्वलन्तः मुनेः मृत्युं रचयितुं प्रयताः अभूवन् ।

अर्थ—आचार्यश्री अमरसिंहजी के अनुपम प्रभाव को स्थान पर तीक्ष्ण विचार कर उन यतियों की बुद्धि पर विकार की जलन बन गया । इससे वे मन में एक साथ जल उठे । (अतएव) वे आचार्यश्री की मृत्यु के षड्यन्त्र में संलिप्त हो गए ।

(९)

ये सन्ति दुष्टमतयो विषमा दुरन्ताः ,
एवं सदैव विकृतिं परमां लभन्ते ।
कच्चित् प्रयत्नविफलाः परिणाममन्यम् ,
भोक्तुं व्रजन्ति नियतं दुरितं सहन्ते ॥

अन्वयः—ये दुरन्ताः विषमाः दुष्टमतयः सन्ति, ते एवम् एव सदा परमांविकृतिं लभन्ते । कच्चित् ते एव प्रयत्नविफलाः सन्तः, अन्यं परिणामं भोक्तुं व्रजन्ति, (तदन्ते) ते नियतं दुरितं (च) सहन्ते ।

अर्थ—यह एक व्यवहार की बात है कि जो दुरन्त, विषम और उधमी होते हैं, वे ऐसे ही बड़े कुढ़ैल बन जाते हैं । सम्भवतः वे ही अपने इरादे में विफल हों, दूसरे नतीजे उठाते हैं । और हो सकता है कि वे ही निश्चित पाप भोगते हैं ।

(१०)

ख्यातां विपन्न-हृदया अधिसोजतं ते ,
यत्नेन मस्जिदगृहे वसतिं विधातुम् ।
भूताधिवासनियते मरणं विचिन्त्य ,
सन्तं निवासयितुमेतमतो यतन्ते ॥

अन्वयः—ते विपन्नहृदयाः यतयः अधिसोजतं भूताधिवासनियते मस्जिदगृहे, मरणं विचिन्त्य यत्नेन ख्यातां वसतिं विधातुम्, अतः एतं सन्तं (तत्र) निवासयितुं यतन्ते ।

अर्थ—वे ही विपन्नहृदय के यतिजन सोजत में जिन्दवाली मस्जिद में मृत्यु को सोचकर कि जो इसमें रहता है, उसको जिन्द मार डालता है—यत्न से 'आप यहाँ ही विराजिए' कहकर इन सन्तजी को मस्जिद में ठहराने के लिए यत्न करने लगे ।

(११)

दुष्टा इमे यदि कृतौ सफला भवेयुः ,
जायेततन् जगदिदं विफलं पुनस्तु ।
निश्चेतुमस्मि पुनरेवमिदं हि सत्यम् ,
नित्यं सदा विजयते न तु चानृतं तत् ॥

अन्वयः—इमे दुष्टाः यदि कृतौ सफलाः भवेयुः तदा तु पुनः इदं जगत् तत् विफलं जायेत । पुनः अहम् 'इदं सत्यम् हि तदा नित्यं विजयते, न च तत् अनृतम्' एवं निश्चेतुं तु अस्मि ।

अर्थ—यह व्यवहार की ही बात है कि—ये दुष्ट यदि अपनी करतूत में सफल हो जाते तो फिर यह जगत् विफल हो जाता ! इसलिए मैं—यह सत्य ही सदा जीतता है, और यह झूठ हारता है—इस प्रकार निश्चय करने के लिए समर्थ हूँ ।

(१२)

धर्मं विहाय यतयश्चरितुं कुकृत्यम् ,
भक्तानिमान् प्रवितथं गमयन्ति भावम् ।
तस्मादिमं मुनिवरं मुनिभिः समेतम् ,
नंष्टुं तदा विकरणैर्विविधैर्यतन्ते ॥

अन्वयः—यतयः धर्मं विहाय कुकृत्यं चरितुम् इमान् भक्तान् प्रवितथं भावं गमयन्ति । तदा ते तस्मात् विविधैः विकरणैः मुनिभिः समेतम् इमं मुनिवरं नंष्टुं यतन्ते ।

अर्थ—यतिजन धर्म को छोड़कर कुकृत्य करने के लिए इन अपने भक्तों को झूठा भाव समझाते हैं । तब वे मुनियों के द्वारा वास्तविक भाव के समझाने के कारण, अनेक उपायों से मुनियों के साथ इन आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करने लगे ।

(१३)

आसीदयं यतिजनै रचितेषु तेषु
प्रोक्तेषु केवलमतः स उपाय एकः ।
येन स्वयं मुनिरयं मरणं लभेत
तर्केत कोऽपि निधने यतिनो न तस्य ॥

अन्वयः—अतः यतिजनैः रचितेषु प्रोक्तेषु तेषु केवलम् सः एकः अयम् उपायः (अवशिष्टः) आसीत् —येन अयं मुनिः स्वयं मरणं लभेत, कः अपि च तस्य (आचार्यस्य) निधने यतिनः न तर्केत ।

अर्थ—इसलिए अब यतियों के रचे गए कथित उन उपायों में से केवल यही एक उपाय बाकी था कि जिससे ये मुनिराज स्वयं मृत्यु को प्राप्त करें और कोई भी उन आचार्यश्री के मरण पर यतिजन को तर्क न कर सके ।

(१४)

वस्तुं तदा मुनिजनेषु महाविशिष्टः
आयात्यसावनुमतिं पुर एव नेतुम् ।
यत्नोऽप्ययं विफल एव भवेद् यतीनाम्,
इत्येव बोधयितुमेवमिहागतोऽयम् ॥

अन्वयः—तदा असौ मुनिजनेषु महाविशिष्टः वस्तुं पुरः एव अनुमतिं नेतुम् आयाति । यतीनाम् अयं यत्नः अपि विफलः एव भवेत् इति एवम् बोधयितुम् एव अयम् इह आगत (अस्ति) ।

अर्थ—तब वे मुनिजनों में परम आदरणीय आचार्यश्री निवास करने के लिए पूर्व में ही अनुमति प्राप्त करने को पहुँचे । यतियों का यह षड्यन्त्र भी विफल हो—ऐसा इस प्रकार बतलाने के लिए ही वे यहाँ मस्जिद में उपस्थित हुए ।

(१५)

धस्रो महामुनिसनाथविराजितेषु ,
सोढुं भयङ्करमुपद्रवमेव मातः ।
सायं प्रतिक्रमविधौ मुनिषु प्रवृद्धः ,
भूतस्य तस्य शनकैर्विषमोपसर्गः ॥

अन्वयः—इह मस्जिदगृहे महामुनिसनाथविराजितेषु मुनिषु धस्रः भयङ्करम् उपद्रवं सोढुम् एव यातः । सायं प्रतिक्रमविधौ सति तस्य भूतस्य शनकैः विषमोपसर्गः प्रवृद्धः (अभवत्) ।

अर्थ—इस मस्जिद के घर में आचार्य श्री के साथ विराजित मुनियों के रहते हुए दिन तो भयंकर उपद्रव को सहने के लिए चलता हुआ । सायं में प्रतिक्रमण के समाप्त होने पर उस जिन्द का धीरे-धीरे विषम उपसर्ग बढ़ने लगा ।

(१६)

सन्तं विभीषयितुमाकृतिमाविधूय ,
भूतो भयङ्करमुखः करपाद-घातैः ।
शारीरिकीं स्थितिमतीव विकृत्य नृत्यन् ,
ब्रूते भवानिह कथं रमते यथेच्छम् ॥

अन्वयः—भयङ्करमुखः भूतः आकृतिम् आविधूय करपादघातैः सन्तं विभीषयितुं शारीरिकीं स्थितिम् अतीव विकृत्य नृत्यन् ब्रूते—इह भवान् यथेच्छं कथं रमते ।

अर्थ—भयङ्करमुख का जिन्द आकृति को कँपाकर हाथ और पैर की चोटों के साथ आचार्यश्री को डराने की इच्छा के लिए शरीर की हालत को खूब बिगाड़ कर नाचता हुआ पूछने लगा कि इस मस्जिद में हजरत कैसे मौज उड़ा रहे हैं ?

(१७)

नीत्या भयङ्करमशेषमथोपसर्गम्
मौनं विधाय सहते मुनिपुङ्गवोऽसौ ।
बीजाक्षरैः सह जपन् स्तुति-मन्त्र-वृन्दम्
भूतस्तदा पुनरयं विरराम रात्रौ ॥

अन्वयः—तदा असौ मुनिपुङ्गवः अशेषं भयङ्करम् उपसर्गं नीत्या मौनं विधाय बीजाक्षरैः सह स्तुति-मन्त्र-वृन्दं जपन् सहते। अथ पुनः अयं भूतः रात्रौ विरराम।

अर्थ—उस समय उन आचार्यश्री ने पूर्ण भयङ्कर उपसर्ग को नीति के साथ चुप्पी रखकर बीजाक्षरों के साथ स्तुति और मन्त्रों को जपते हुए सह लिया। तदनन्तर फिर यह जिन्द रात्रि में शान्त होकर बैठ गया।

(१८)

सन्तं महान्तमनुभूय विचारमग्नः
ब्रूते कृताञ्जलिरयं गरिमाणमाप्तम् ।
भूतः स्वयं कथयितुं श्रयतेऽभिलाषम्
लज्जे परं मनसि ते विपदं प्रदातुम् ॥

अन्वयः—गरिमाणम् आप्तं महान्तम् सन्तम् अनुभूय अयं विचार-मग्नः भूतः स्वयं कथयितुम् अभिलाषं श्रयते। कृताञ्जलिः च सन् ब्रूते यत् ते विपदं प्रदातुं (अहं) मनसि परं लज्जे।

अर्थ—गौरवशाली महान् सन्त अनुभव कर यह घबड़ाया हुआ जिन्द स्वयं अपनी इच्छा से कहने लगा और हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगा कि आपको कष्ट देने के लिए मैं अपने मन में बड़ा लज्जित हूं।

(१९)

कष्टं कदापि यवनो भवते न दद्याम् ,
सोऽहं पुनश्च विफलोऽपि फलं ददामि ।
दोषस्य तस्य च कृते यदि कोऽपि दण्डः ,
दीयते तत्र भवता तमहं सहेय ॥

अन्वयः— यवनः सः अहं कदापि भवते कष्टं न दद्याम्, पुनश्च विफलः सन् फलं ददामि । तस्य च दोषस्य कृते यदि तत्रभवता कः दण्डः अपि दीयेत तर्हि अहं तं दण्डं सहेय ।

अर्थ—मुसलमान होकर मैं कभी आपको कष्ट नहीं दूँगा । और फिर विफल रहकर मैं आपको भेंट देता हूँ । और मेरे अपराध के लिए यदि आपश्री के द्वारा कोई दण्ड दिया जाता हो तो उस दण्ड को मैं अवश्य बर्दाश्त करूंगा ।

(२०)

जातः प्रसन्न हृदयोऽहमपि प्रसन्नम् ,
श्रीमन्तमत्र शयितुं यदि वापि वस्तुम् ।
सन्तं कदापि विपरीतमतो न मन्स्ये ,
सद्यो विहाय विकृतिं मनसोऽद्य यामि ॥

अन्वयः—अहम् अपि प्रसन्नहृदयः जातः (अस्मि) । अतः प्रसन्नं सन्तं श्रीमन्तम् अत्र शयितुं यदि वा वस्तुम् अपि (अहं) कदापि विपरीतं न मन्स्ये । (अहं) मनसः विकृतिं विहाय अद्य सद्यः यामि ।

अर्थ—मैं भी प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए प्रसन्न हुए श्रीमान् को यहाँ सोने अथवा रहने को भी मैं कभी उलटा नहीं मानूंगा । मैं अपने हृदय की बुराई को छोड़ आज अभी जा रहा हूँ ।

(२१)

अद्य प्रभृत्यहमिमान् यवनान् स्वतोऽतः ,
स्थानं त्विदं परिजिहासयितुं विधास्ये ।
अस्मात्परं मुनिजनाः सततं वसेयुः ,
प्रोच्येत्यसौ त्वरितमेव ततः प्रयातः ॥

अन्वयः—अतः अहं तु अद्यप्रभृति इमान् यवनान् इदं स्थानं स्वतः परिजिहासयितुं विधास्ये (येन) अस्मात् परम् (अत्र) मुनिजनाः सततं वसेयुः इति प्रोच्य असौ भूतः ततः त्वरितम् एव प्रयातः ।

अर्थ—इसलिए मैं तो आज से इन मुसलमानों को इस स्थान को अपने आप छुड़वा देने के लिए उद्यत करूँगा । जिससे कि इसके बाद मुनिजन यहाँ सदा रह सकें, ऐसा कह कर वह जिन्द उस मस्जिद से शीघ्र ही चल दिया ।

(२२)

सूर्योदये विशदभासि विचारपापाः ,
सन्तं दिने विकृतबुद्धय एव बोद्धुम् ।
आयान्ति जातमिति किं विगते निवासे ,
दृष्ट्वा मुनिं परिहसन्ति परस्परं ते ॥

अन्वयः—विशदभासि सूर्योदये विकृतबुद्धयः विचारपापाः विगते दिने निवासे किं जातम् इति सन्तम् बोद्धुम् एव आयान्ति, (किन्तु) ते मुनिं दृष्ट्वा परस्परं परिहसन्ति ।

अर्थ—स्वच्छ कान्तिवाले सूर्य के उदय होने पर बिगड़ी बुद्धि के ढोंगी, गत दिन में मुनियों के निवास के विषय में 'क्या हुआ' इससे सन्त को समझने के लिए आते हैं । किन्तु वे मुनिराज को देखकर एक दूसरे की खिल्ली उड़ाने लगते हैं ।

(२३)

हासं विहाय विकृताः प्रतियन्ति भक्ताः ,
प्रष्टुं पुनर्विकृतिनो यतिनो जनांस्ते ।
जातं कुतस्तु निधनं न मुनेरिदं यत् ,
यूयं स्थ दूषितमता यतयोऽत एवम् ॥

अन्वयः—एवं पुनः हासं विहाय ते विकृताः (यतीनां) भक्ताः विकृतिनः यतिनः जनान् प्रष्टुं प्रतियन्ति, यत् मुनेः इदं निधनं कुतः न जातम् ? अतः यतयः यूयम् दूषितमताः स्थः ।

अर्थ—इस प्रकार फिर हँसी-मजाक छोड़कर बिगड़े हुए वे यति भक्त विकृत यतिजनों से पूछते हैं कि तुम कहते थे कि मुनिजी को इस प्रकार निश्चितरूप में संसार से मिटा दिया जायेगा—तो फिर मुनिजी का निधन किस कारण से न हो पाया ? इसलिए तुम यति लोग अपसिद्धान्ती हो । अर्थात् तुम्हारी बात का कोई भरोसा नहीं है ।

(२४)

रुष्टा विरुद्धगतयो यतिनोदितास्ते ,
नित्यं परस्परमतो गमनस्य मार्गम् ।
रुन्धन्ति यान्तु यतयो यदि वा वसन्तु ;
शान्तिं भजन्त्विति पुनर्वद वा व्रजेतः ॥

अन्वयः—अतः यतिनोदिताः विरुद्धगतयः रुष्टाः सन्तः ते परस्परं गमनस्य मार्गं रुन्धन्ति । रुध्यमानं प्रेरयन्ति यत् त्वम्—यतयः यान्तु यदि वा वसन्तु, किन्तु शान्तिं भजन्तु इति वद वा त्वम् इतः व्रज ।

अर्थ—इसलिए यतिप्रेरित उलटे नाराज हुए वे अब परस्पर में जाने के रास्ते को रूँध देते हैं और रुँधे हुए व्यक्ति को प्रेरित करते हैं कि अब तू, यति लोग जाएँ यदि वा रहें, किन्तु वे शान्त रहें—ऐसा बोल, अथवा यहाँ से भाग ।

(२५)

इत्थं विवेकिन इमे सरलाः प्रसन्नाः ,
भक्तास्तदा विकृतिनो यतिनो निषेद्धुम् ।
गच्छन्ति जातु सकलं निहितं रहस्यम् ;
किं वा भवेदिह यदा यदि वा प्रतीयुः ॥

अन्वयः—तदा इमे सरलाः प्रसन्नाः विवेकिनः भक्ताः विकृतिनः—यतिनः निषेद्धुं गच्छन्ति, इत्थं जातु यदि वा ते मुनिभक्ताः सकलं निहितं रहस्यं प्रतीयुः यदा इह किं वा भवेत् !

अर्थ—तब ये सीधे-साधे प्रसन्न विवेकी भक्त विकृतयतियों को मना करने पहुँचते हैं और इस प्रकार (कहते हैं) कि कदाचित् यदि उन मुनिभक्तों को सब छिपा हुआ रहस्य मालूम पड़ जाए, तब फिर क्या होगा ? अर्थात् द्वेष की आग फैल जायेगी, तब लेने-के-देने पड़ जायेंगे ।

(२६)

तस्मादिमे सुमतयो यतिनां कुसङ्गम् ,
भक्ता व्रजन्ति परिहाय मुनेः समीपम् ।
पृच्छन्ति तं मुनिवरं सुमतिं ग्रहीतुम् ,
दुष्टा भवन्ति सुजनाः समयानुसारम् ॥

अन्वयः—तस्मात् इमे सुमतयः यतिभक्ताः यतिनां कुसङ्गं परिहाय मुनेः समीपं व्रजन्ति । (ते च भक्ताः) तं मुनिवरं सुमतिं ग्रहीतुं पृच्छन्ति । यतो हि दुष्टाः समयानुसारं सुजनाः भवन्ति ।

अर्थ—इससे ये समझदार यतियों के भक्त अब यतियों के कुसङ्ग छोड़कर मुनि महाराज की सेवा में पहुँच जाते हैं । और वे भक्त सद्ज्ञान प्राप्ति के लिये मुनि राजश्री से प्रश्न करते हैं । क्योंकि दुष्ट भी समय के अनुसार अच्छे पुरुष बन जाते हैं ।

(२७)

जैनास्तदागमविधिं प्रणिपत्य सत्तुं म् ;
धर्मं सनातनममुं समुपासताद्यम् ।
चक्रं विहाय वितथं यतिनां समेषाम् ,
आयान्ति ते मुनिजनस्य पदेषु नन्तुम् ॥

अन्वय—तदा जैनाः आगमविधिं सत्तुं म् अमुम् आद्यं सनातनं धर्मं समुपासत । समेषां यतिनां वितथं चक्रं विहाय ते मुनिजनस्य पदेषु नन्तुम् आयान्ति ।

अर्थ—उस समय आगमों के विधान का अनुसरण करने के लिए उस अनादि से सदा चले आने वाले धर्म की उपासना की । सभी यतियों के झूठे जंजाल को छोड़ कर वे मुनियों के चरणों में नमन करने के लिए आए ।

(२८)

सर्वे ततो मुनिवरं सुसतामधीशम् ,
ज्ञातुं विलक्षसदृशः शतशो यतन्ते ।
ज्ञात्वा भवन्ति शरणागमिनोविशिष्टाः ,
शिष्या इमे प्रमुखतः सदुपासकास्ते ॥

अन्वयः—ततः सर्वे सुसताम् अधीशं मुनिवरं ज्ञातुं विलक्षसदृशः शतशः (जनाः) यतन्ते । ज्ञात्वा (च) इमे प्रमुखतः सदुपासकाः शरणागमिनः विशिष्टाः शिष्याः भवन्ति ।

अर्थ—तदनन्तर सभी मनुष्य सन्तशिरोमणि मुनिवर को जानने के लिए आश्चर्यचकित जैसे सैकड़ों ही बार प्रयत्न करने लगे । और जानकर ये मुख्यरूप में सच्चे उपासक शरणागत विशिष्ट शिष्य बन गये ।

(२९)

एवं महामुनिरयं प्रथमो विधाता ;
जातो मरोर्भुवि धराधिपमौलिवन्द्यः ।
सद्धर्मधारकशिरोमणिरेवभूमौ ,
शास्ता बभूव जगतो जिनशासनस्य ॥

अन्वयः—एवं मरोः भुवि अयं महामुनिः धराधिपमौलिवन्द्यः प्रथमः विधाता जातः । भूमौ एव जिनधर्मशासनस्य जगतः सद्धर्मधारकशिरोमणिः शास्ता बभूव ।

अर्थ—इस प्रकार मारवाड़ की पृथ्वी पर ये आचार्य श्री अमरसिंहमुनि महाराज राजाओं की मौलि से वन्दनीय प्रथम श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के विधाता हुए । पृथ्वी पर ही जिनधर्मशासन के जगत् के सद्धर्मधारकों के अग्रणी आचार्य आप थे ।

(३०)

ख्याति मुनेरतिशयामतुलां निशम्य ,
सोढुं समे यतिजना विफला बभूवुः ।
सम्भूय घोषमपरं रटितुं प्रवृत्ताः ,
शास्त्रानुसारि कथनं न मुनेस्तदैतत् ॥

अन्वयः—मुनेः अतुलाम् अतिशयां ख्याति निशम्य सोढुं समे यतिजनाः विफलाः बभूवुः, तदा (ते) सम्भूय अपरं घोषं रटितुं प्रवृत्ताः (यत्) मुनेः एतत् कथनं शास्त्रानुसारि न (अस्ति) ।

अर्थ—आचार्य श्री अमरसिंहमुनि महाराज की अद्वितीय अतिशय प्रशंसा को सुनकर सहन करने के लिए सभी यतिजन असफल हुए, तब वे एकत्र होकर एक नारा रटने लगे कि मुनिराजश्री का यह उपदेश शास्त्र के अनुसार नहीं है ।

(३१)

यत्ने पराजयममुं परिभाव्य चित्ते ,
भक्तान् विभावयितुमेव तथा हि घोषम् ।
कुर्वन्ति ते विवदितुं मुनिनैव साकम् ,
दुष्टाः सदैव सुजनान् प्रतिकर्त्तुमीशाः ॥

अन्वयः—यत्ने सति अमुं पराजयं चित्ते परिभाव्य एव ते भक्तान् विभावयितुम् घोषं हि तथा मुनिना साकम् विवदितुम् एव कुर्वन्ति । (यतो हि) दुष्टाः सुजनान् प्रतिकर्त्तुं सदा एव ईशाः (भवन्ति) ।

अर्थ—यत्न के होने पर उस पराजय को हृदय में विचार कर ही वे यतिजन भक्तों को समझाने के लिए नारा, वैसे ही कि मुनि महाराज के साथ शास्त्रार्थ होगा ही, लगाने लगे । क्योंकि दुष्ट पुरुष भद्र पुरुषों का प्रतीकार करने के लिए सदैव समर्थ हैं ।

(३२)

एवं सदैव नियतं प्रचरन्ति सर्वे ;
नालाति कोऽपि यतिनां कथनाय वृत्तम् ।
तस्मात्तथा मुनिरयं स्वयमेवमूचे ,
प्रायध्वमस्म्यहमतीव तु तत्परोऽपरः ॥

अन्वयः—कः अपि यतिनां कथनाय वृत्तं न आलाति, एवं सर्वे ते नियतं प्रचरन्ति । तस्मात् अयं मुनिः एवं तथा स्वयम् ऊचे, यत् यूयं प्रायध्वम्, अहं तु अपरः अतीव तत्परः अस्मि ।

अर्थ—कोई भी यतियों के कहने के लिए समाचार नहीं लाता, इस प्रकार सब वे पक्का प्रचार करते हैं । उससे सावधान हो, आपश्री अमरसिंह मुनिजी ने भी स्वयं ललकार फरमाया कि तुम आओ तो, दूसरे मैं तो आवश्यकता से अधिक तैयार बैठा हूँ ।

(३३)

श्रुत्वा मुनेर्वचनमद्भुतमेव मत्त्वा ,
हासं विधाय चरमे त इमे यतीनाम् ।
स्वोधानमून् यतिवरान् गदितुं यथोक्तम् ।
दूताः प्रयान्ति च तदा प्रतिबोधनाय ॥

अवन्यः—तदा एव मुनेः वचनं श्रुत्वा अद्भुतं मत्वा हासं च विधाय इमे यतीनां चरमे ते अमून् स्वीयान् यतिवरान् यथोक्तं गदितुं (दूतान् नियुक्तवन्तः) । (अतस्ते) दूताः प्रतिबोधनाय प्रयान्ति ।

अर्थ—उसी समय मुनि महाराज के वचन, सुनकर, अद्भुत मान और मजाक उड़ा इन अतितुच्छ यतियों ने ही उन अपने श्रेष्ठ यतियों को उक्त का अतिक्रमण न कर बताने लिए दूतों को नियुक्त किया। अब वे दूत सूचना देने को चल दिये ।

(३४)

पूर्वं तु ते कलयितुं प्रभवो न जाताः ,
दूतान् निरीक्ष्य यतयः कथयन्ति सर्वे ।
वक्तुं किमर्थमिति ते प्रचरन्ति मिथ्या ,
जातं तथापि समये करणीयमास्ते ॥

अन्वयः—पूर्वं तु ते कलयितुं प्रभवः न जाताः (आसन्) । (किन्तु अन्ते सर्वे यतयः दूतान् निरीक्ष्य कथयन्ति, ते (स्वीयाः यतयः) किमर्थं वक्तुमिति' मिथ्या प्रचरन्ति । अस्तु-जातं यज् जातम्, तथापि समये (यत्) करणीयम् आस्ते, तत्तु करणीयमेव) । अयमाक्षिप्तोऽर्थः) ।

अर्थ—पहले तो वे यतिवर बात का रस लेने के लिए तैयार ही नहीं हुए, किन्तु अन्त में दूतों को आया हुआ देख सभी यति कहने लगे कि 'ये किसलिए, क्यों' ऐसा झूठा प्रचार करते है कि हम शास्त्रार्थ करेंगे । अस्तु—जो हुआ सो हुआ, फिर भी समय पर जो करने लायक होगा, वह तो करना ही होगा । अच्छा, आप लोग तो जाइये । (यह आक्षिप्त अर्थ है ।)

(३५)

एते समस्तयतयः समवेत्य याताः ,
शास्त्रस्य तत्त्वमतिवाहयितुं यतन्ते ।
मिथ्या मुनेः कथनमस्ति विचारदृष्टेः ,
तस्माद् वयं निचिनुमः कथनं विरुद्धम् ॥

अन्वयः—समवेत्य याताः एते समस्तयतयः शास्त्रस्य तत्त्वम् अतिवाहयितुं यतन्ते । विचारदृष्टेः मुनेः कथनं मिथ्या अस्ति । तस्मात् वयं कथनं विरुद्धं निचिनुमः ।

अर्थ—एकत्र हुए ये समस्त यतिजन शास्त्र के आशय को अतिवाहित करने का प्रयत्न करने लगे (और आगे कहने लगे) कि विचार की दृष्टि से मुनिजी का कहना मिथ्या है । इससे हम मुनिजी के कथन को शास्त्र के विरुद्ध चुनते हैं ।

(३६)

तत्राधिशास्त्रमपि तेऽधिकृतं न मन्तुम् ,
शक्ता इमे यतिजनाः कथयन्ति मिथ्या ।
भक्तास्तदा मुनिमिमं प्रथयन्ति वक्तुम् ,
प्रष्ठं महातिशयितं जयिनं विवादे ॥

अन्वयः—इमे यतिजनाः तत्र अधिशास्त्रम् अधिकृतम् अपि मन्तुं शक्ताः न (सन्ति) । (अपितु) ते (तत्) मिथ्या अपि कथयन्ति । तदा (एतत्सर्वं निरीक्ष्य) भक्ताः इमं प्रष्ठं महातिशयितं मुनिं विवादे जयिनं वक्तुं प्रथयन्ति ।

अर्थ—यतिजन उस शास्त्र के अधिकृत विषय को भी मानने के लिए समर्थ ही नहीं हुए, इतना ही नहीं, अपितु वे उसको मिथ्या भी कहने लगे । तब यह सब देखकर भक्तों ने इन अग्रणी सर्वविशिष्ट मुनि महाराज को विवाद में विजयी कहने के लिए प्रशंसा करने लगे ।

(३७)

श्रुत्वा जयं मुनिवरस्य विहाय कार्यम् ,
गच्छन्ति तं मुनिममुं जयिनं प्रशस्तुम् ।
शक्तो महामुनिरयं प्रथते विचित्रम् ।
शास्त्र-प्रमाणमपि ते श्लथयन्ति सत्यात् ॥

अन्वयः—मुनिवरस्य जयं श्रुत्वा (जनाः) कार्यं विहाय अमुं मुनिं तं जयिनं प्रशस्तुं गच्छन्ति । किन्तु अयं शक्तः महामुनिः विचित्रं प्रथते यत् ते शास्त्रप्रमाणम् अपि सत्यात् श्लथयन्ति ।

अर्थ—आचार्यश्री की जय-जयकार सुन, कार्य को छोड़ श्रावक उन मुनिजी को जो विजयी हुए हैं, उनको प्रशस्त सिद्ध करने को उद्यत हो गए । किन्तु समर्थ आचार्यश्री आश्चर्य करने लगे कि वे शास्त्र के प्रमाण को भी सत्य से गिराते हैं ।

(३८)

सत्यं कदापि मनुते न मताग्रहीनः ,
रोद्धुं जनं प्रयततेऽत्र ततः परं किम् ।
भूमौ स्थितश्च मधुपो लभते हिमांशुम् ,
बद्धो यथा शिखरिणः शिखरं ग्रहीतुम् ॥

अन्वयः—अत आग्रही ईनः पुरुषः कदापि सत्यं न मनुते, अपि तु मतान्तरं जनं रोद्धुं प्रयतते, अतः परं किम् ? कथनीयमिति शेषः । स्थितिरियमीदृशी परिलक्ष्यते—यथा मधुपः भूमौ स्थितः अपि हिमांशुं लभतेः बद्धश्च यथा शिखरिणः शिखरं ग्रहीतुं प्रयतते ।

अर्थ—संसार में मताग्रही पुरुष कभी सत्य को स्वीकार नहीं करता, अपितु मानने वाले को दबाने के लिए प्रयत्न करता है, इससे अधिक क्या कहा जाए ! इतना शेष है । स्थिति यह ऐसी दिखती है कि जैसे शराबी भूमि पर पड़ा हुआ भी चन्द्र को हस्तगत करता हो और जैसे कि बँधा पड़ा भी कोई पर्वत की चोटी पकड़ने के लिए उद्यत हो ।

(३९)

अन्ते यतीनभिहितान् सहसाऽवमन्तुम् ,
श्रद्धालवो मुनिजनेषु विशिष्टमेनम् ।
पूज्यं विधाय वचनानुचरा यतीनाम् ,
जाताः स्वतन्त्रगतयः ससुखं विहर्त्तुम् ॥

अन्वयः—अन्ते अभिहितान् यतीन् अवमन्तं यतीनां वचनानुचराः श्रद्धालवः (जनाः) सहसा मुनिजनेषु विशिष्टम् एनं मुनि पूज्यं विधाय ससुखं विहर्त्तुं स्वतन्त्रगतयः जाताः ।

अर्थ—अन्त में उक्त यतियों को अवमानित करने के लिए यतियों के वचनानुचर श्रद्धालु पुरुषों ने एक साथ मुनियों में विशिष्ट इन मुनि महाराज को पूज्य बनाकर आनन्द से विहरण के लिए इच्छाविहारी हो गये ।

(४०)

भूमौ मरोरुपकृतेर्गरिमाणमाप्तुम् ,
जैनं जनं विहितपद्धतिमेव सर्त्तुम् ।
यत्नं विधाय परमं मुनिमण्डलेशः ,
वन्द्योऽभवत्स्वयमहो प्रथमो मुनीशः ॥

अन्वयः—मरोः भूमौ उपकृतेः गरिमाणम् आप्तुं जैनं जनं विहित पद्धतिम् एव सर्त्तुं परमं यत्नं विधाय मुनिमण्डलेशः प्रथमः मुनीशः अहो स्वयं वन्द्यः अभवत् ।

अर्थ—मारवाड़ की भूमि पर उपकार के गौरव को प्राप्त करने के लिए, जैनजन को विहितपद्धति का अनुसरण करने के लिए, पर्य्याप्त यत्न कर मुनिमण्डल के भाग्य विधाता प्रथम आचार्य अहो स्वयं वन्द्य श्री अमरसिंह मुनि महाराज हुए ।

(४१)

मार्गे प्रशस्तसुगमे प्रसरन्ति सर्वे ,
दुष्टे महाभयभरे पदमादधानः ।
भीतिं विहाय रमते विरलस्तथाऽयम् ;
जातो मरौ मुनिवरोऽनवरः पदातिः ॥

अन्वयः—सर्वे प्रशस्तसुगमे मार्गे प्रसरन्ति, किन्तु भीतिं विहाय महाभयभरे दुष्टे मार्गे पदम् आदधानः विरलः रमते, तथा मरौ अयम् अमरसिंह मुनिः अनवरः मुनिवरः पदातिः जातः।

अर्थ—सब निष्कण्टक सरल मार्ग पर आनन्द से चलते हैं, किन्तु डर को भगाकर अत्यन्त भय से पूर्ण मार्ग पर पैर रखते हुए विरल ही रमते हैं, उसी प्रकार मारवाड़ में ये श्री अमरसिंह मुनिराज महान् आचार्य होकर अकेले पैदल-पैदल विहरे।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
नवमः सर्गः

❀

दशमः सर्गः

(१)

सम्प्रत्यसौ मुनिवरो मनुजान् यतीनाम् ,
अन्याञ्जनानपि सदातनजैनधर्मम् ।
सम्बोध्य युक्तिसहितं श्लथितप्रपञ्चम् ,
यातुं सहैव मुनिभिः कुरुते प्रतीक्षाम् ॥

अन्वयः—सम्प्रति असौ मुनिवरः यतीनां मनुजान् अन्यान् जनान् अपि युक्तिसहितं श्लथितप्रपञ्चं सदातनजैनधर्मम् सम्बोध्य मुनिभिः सह यातुमेव प्रतीक्षां कुरुते ।

अर्थ—सम्प्रति ये मुनिराज यतियों के मनुष्यों को और दूसरे मनुष्यों को भी युक्तियों के साथ हटा दिया है प्रपञ्च जिससे, ऐसे सदातन जैन धर्म को भली तरह से समझा कर मुनिजन के साथ जाने के लिए ही उद्यत हैं ।

(२)

अग्रेऽपि तं सततमागतजैनधर्मम् ,
जैनं तथेतरमिमं जनमप्यभिन्नम् ।
व्याहृत्य स प्रयतते पुनरप्यतस्तम् ,
गन्तुं मुनिर्यतिनिदेशितमन्यदेशम् ॥

अन्वयः—अग्रे अपि सः मुनिः सततं तम् आगतजैनधर्मम् इमं जैनं तथा इतरं जनम् तथा अभिन्नम् अपि व्याहृत्य अतः पुनः अपि तम् यतिनिदेशितम् अन्यदेशं गन्तुं प्रयतते ।

अर्थ—आगे भी उन मुनिराजश्री ने सदा से उस आए हुए जैनधर्म को इस जैन को जो भूल रहा था, तथा दूसरे मनुष्य को जो कि जानता ही न था, और फिर अभिन्न जो कि अपने राष्ट्र का अङ्ग है, उसको स्पष्ट बताकर इस स्थान से फिर, उस, यतियों से निदेश प्राप्त किए हुए दूसरे स्थान को जाने के लिए प्रयत्न किया ।

---

० सर्गेऽस्मिन्नपि 'वसन्ततिलका' एवास्ति । लक्षणं तूक्तमेव ।

(३)

पालीपुरादि नगरेषु तथापरेषु ,
स्थानेषु तेषु यतिदुर्गमयेष्वतोऽसौ ।
गत्वा पुनर्जनगणे तममेव धर्मम् ,
गन्तुं प्रबोध्य मुनिरिच्छति देशमन्यम् ॥

अन्वयः—पालीपुरादि नगरेषु, अपरेषु स्थानेषु तथा तेषु यतिदुर्गमयेषु (स्थानेषु अपि) गत्वा असौ मुनिः जनगणे तं धर्मम् एव प्रबोध्य पुनः अन्यं देशं गन्तुम् इच्छति ।

अर्थ—पाली आदि नगरों में, दूसरे स्थानों में उसी प्रकार से उन यतियों के गढ़ कहलाने वाले स्थानों में भी पहुँच कर उन मुनिमहाराज ने जनता के रहते हुए उसी सदातन जैन धर्म को प्रबोधित कर फिर दूसरे स्थान को जाने की इच्छा करने लगे । कहने का अर्थ यही है कि मुनिराज श्री ने मारवाड़ के प्रतिग्राम में स्थानकवासी श्रमणोपासक जैन धर्म की धूम मचा दी ।

(४)

भक्ता मुनिं विनयिनो गुरुणा सहेमम् ,
चागत्य प्रत्यहमहो विनिवेदयन्ते ।
शान्त्या सुखेन भगवन् यदि सम्भवोऽयम् ,
भूमिं स्पृशन्तु मुनयो मरुराजधान्याः ॥

अन्वयः—प्रत्यहम् आगत्य विनयिनः भक्ताः इमं मुनिं निवेदयन्ते, अहो भगवन् ! यदि अयं सम्भवः भवेत् तर्हि शान्त्या सुखेन च मुनयः गुरुणा सह-मरुराजधान्याः भूमिं स्पृशन्तु ।

अर्थ—प्रतिदिन पहुँचकर विनयी भक्त इन मुनिराज से निवेदन करने लगे कि भगवन् ! यदि यह सम्भव हो सके तो सुख और शान्ति से गुरुदेव के साथ मुनि-जन मारवाड़ की राजधानी अर्थात् जोधपुर की भूमि को स्पर्श अथवा परसें ।

(५)

ज्ञाता तदागमविधेः प्रतिबोधकोऽपि ,
श्रेष्ठश्च सन्नयमतः स्थितिमेव बोद्धुम् ।
निश्चित्य भक्तविनतेर्मिषतः प्रतस्थे ,
सिंहो महामुनिरिवावनिनिर्भयोऽसौ ॥

अन्वयः—तदा आगमविधेः ज्ञाता आगमविधेश्च श्रेष्ठः प्रतिबोधकः सन् अपि अतः अयम् स्थितिम् बोद्धुम् निश्चित्य भक्तविनतेः मिषतः एव असौ महामुनिः अवनिनिर्भयः सिंहः इव प्रतस्थे ।

अर्थ—उस समय आगमों की विधि के ज्ञाता और आगमों की विधि के श्रेष्ठ बोधक सन्त होकर ये स्थिति को जानने का निश्चयकर भक्तों की विनति के बहाने से ही वे आप आचार्यश्री पृथिवी पर निर्भय सिंह के समान चल दिए ।

(६)

राज्ये महामुनिरयं परिवीक्ष्य जैनम् ,
धर्मं प्रतिष्ठितमपि प्रतिभावितं तम् ।
सम्भाविनं परमिमं पुनरेव नीतौ ,
पूज्यस्थितिं दृढयितुं स्वयमागतोऽसौ ॥

अन्वयः—अयं महामुनिः राज्ये प्रतिष्ठितम् अपि जैनं धर्मं प्रतिभावितं परिवीक्ष्य तम् इमं परं सम्भाविनं नीतौ पुनः पूज्यस्थितिम् एव दृढयितुम् असौ स्वयम् आगतः ।

अर्थ—ये आचार्य श्री राज्य में प्रतिष्ठित हुए भी जैनधर्म को प्रतिभावित देखकर उसी को बड़ा सम्भावी व्यवहार में आदरणीय स्थिति को ही दृढ़ करने के लिए वे स्वयं पदार्पित हुए ।

(७)

श्रुत्वा तदा मुनिवरं मुनिभिः समेतम् ,
प्रायान्तमेव तमिमं कृतये पुरोऽसौ ।
श्रेष्ठैः पुनः सहचरैरधिकारिभिश्च
साकं त्रिरेव नमते खिवसीमहौकाः ॥

अन्वयः—तदा असौ महौकाः खिवसीः तं मुनिवरं मुनिभिः समेतम् इमम् पुरः कृतये पुनः सहचरैः अधिकारिभिः च साकं त्रिः एव नमते ।

अर्थ—उस समय प्रतिष्ठित दीवान खिवसीजी साहब उन आचार्य श्री को मुनियों के साथ आपकी अगवानी करने के लिए फिर साथियों और अधिकारियों के साथ वारत्रय वन्दना करने लगे ।

(८)

राज्ञो निदेशमुपवासयितुं विबुध्य ,
प्रासादगोमुखगृहे ससुखं मुनीशम् ।
आवास्य सोऽपि खिवसीर्मुनिभिः सहैव ;
कार्यं विधातुमपि किं प्रययौ तु राज्ञः ॥

अन्वयः—राज्ञः निदेशम् उपवासयितुं विबुध्य प्रासादगोमुखगृहे मुनिभिः सह एव मुनीशं ससुखम् आवास्य सः खिवसीः अपि तु राज्ञः किम्अपि कार्यं विधातुं प्रययौ ।

अर्थ—राजा के निदेश को ठहराने के लिए समझकर राजमहल के द्वार के घर में मुनियों के साथ ही आचार्य श्री को आवासित कर वे खिवसीजी भी राजा के किसी कार्य को करने के लिए प्रयाण कर गये ।

(९)

भक्तैरपीह सततं श्रयितं मुनीशम्,
संवीक्ष्य ते विमनसो ज्वलिता अभूवन् ।
तस्मादिमे नृपममुं विनिवेदयन्तः,
प्रोचुर्वयं मुनिमिमं न सहेम वस्तुम् ॥

अन्वयः—इह प्रासादगोमुखगृहे अपि सततं श्रयितं मुनीशं संवीक्ष्य ते विमनसः ज्वलिताः अभूवन् । तस्मात् इमे ज्वलिताः अमुं नृपं विनिवेदयन्तः प्रोचुः, यत् वयम् इमं मुनिं (इह गृहे) वस्तुं न सहेम ।

अर्थ—यहाँ महलों के द्वार के घर में भी निरन्तर आश्रयित आचार्यश्री को देखकर कुढ़ैल दरबारी लोग जल उठे । इससे जले हुए ये स्थानीय राजा से अर्ज करते हुए बोले कि हम तो इन मुनिजी को इन महलों के द्वार के घर पर रहने को नहीं सह सकेंगे ।

(१०)

किं कारणं मुनिवरस्य निवासनेन,
सर्वे भवन्त इतरे ज्वलिता बभूवुः ।
ऊचुः समे नृपमिमं सहसैव वस्तुम्,
सन्तं भवन्तमुपरीति कथं सहेम ॥

अन्वयः—राजा पृच्छति तान् राजकीयान् मुनिवरस्य निवासनेन भवन्तः इतरे सर्वे ज्वलिता बभूवुः, (अस्य) कारणं किम् (अस्ति) ? (तदा) ते समे इमं नृपं सहसा एव ऊचुः, यत् भवन्तम् उपरि (वयं) सन्तं वस्तुं कथं सहेम ? इति ।

अर्थ—राजा ने उन राजकीय लोगों से प्रश्न किया कि—आचार्यश्री के यहाँ ठहरा देने से आप दूसरे सभी जल उठे, इसका क्या कारण है ? तब वे सभी इस राजा को एक साथ कहने लगे, कि आपके ऊपर हम मुनि को रहते हुए कैसे सह सकेंगे—ऐसा ।

(११)

तस्मादयं नृपवरोऽपि तदैव रुष्टः
प्रोवाच तान् मुनिमिमं विनिवेदयन्तु ।
गच्छन्तु तावदितरत् ससुखं भवन्तः
स्थानं भवद्भ्य उचितं ननु बोधयामः ॥

अन्वयः—तदा अयं नृपवरः अपि तस्मात् एव रुष्टः भवन् तान् प्रोवाच, यत् (भवन्तः) इमं मुनि विनिवेदयन्तु तावत् यत् भवन्तः इतरत् स्थानं गच्छन्तु, ननु वयं भवद्भ्यः उचितं बोधयाम !

अर्थ—उस समय पर इस अच्छे राजा ने भी उसी से क्रुद्ध होते हुए उन राजकीय मनुष्यों से कहा कि आप इन मुनि महाराज से निवेदन कीजिए कि आप सब दूसरे स्थान को जाइये । यदि कोई शङ्का हो तो हम आप सबके लिए उचित स्थान बता दें ।

(१२)

तत्ते मुनीशमपरं छल-छद्म पूर्णम्
भूताधिवाससहितं भुवि मन्दिरं तत् ।
वस्तुं वदन्ति कियदित्यह सुन्दरं तत्
स्थानं प्रदर्श्य सहसा प्रविहस्य याताः ॥

अन्वयः—तत् ते भुवि अपरं छलछद्मपूर्णं भूताधिवाससहितं तत् मन्दिरं वस्तुं स्थानं प्रदर्श्य अह यत् कियत् सुन्दरं स्थानम् (अस्ति) इति वदन्ति (ते च) सहसा प्रविहस्य याताः ।

अर्थ—तदनन्तर वे राजदरबारी दूसरी जगह पर छल और छद्म से पूरे, भूत के निवास से युक्त महामन्दिर को रहने के लिए दिखला कर—अहा ! यह कितना सुन्दर स्थान है ! ऐसा कहने लगे और वे एक साथ हँसकर चल दिये ।

(१३)

रात्रौ महामुनिमिमं दृढकाष्ठ पट्टे ,
भूतः शयानमभितः प्रतिबोद्धुमीष्टे ।
प्राणान् जिहासितुमितीच्छसि तच्छयस्व ,
नेच्छा पुनर्गृहमतः प्रतिगच्छ शीघ्रम् ।

अन्वयः—रात्रौ भूतः दृढकाष्ठपट्टे शयानम् इमं महामुनिम् अभितः प्रतिबोद्धुम् ईष्टे—यदि त्वं प्राणान् जिहासितुम् इच्छसि, तत् त्वं शयस्व, यदि प्राणान् हातुम् इच्छा न (अस्ति)। (तर्हि) पुनः अतः गृहं शीघ्रं प्रतिगच्छ, इति ।

अर्थ—रात्रि होने पर भूत, दृढ़ काष्ट के पट्टे पर शयन करते हुए इन आचार्यश्री को सब ओर से समझाने को उद्यत हुआ। कहने लगा कि यदि तुझे अपने प्राणों के त्यागने की इच्छा है तो तू शयन कर। और यदि प्राणों के परित्याग की इच्छा नहीं है तो फिर यहाँ से तू अपने घर को शीघ्र लौटजा, ऐसा ।

(१४)

किन्त्वेव भूत इति सोऽपि महाकरालः ;
सन्तं महाशयमिमं व्यथते निरन्तम् ।
दुःखं विषह्य परमं च मुनीश्वरोऽसौ ,
भूतं विवश्य विषमं जयते जपन्यः ॥

अन्वयः—प्रथमं तु भूतः एव इति, सः अपि महाकरालः। स एतादृशः भूतः इमं महाशयं सन्तं निरन्तं व्यथते, किन्तु असौ महामुनीश्वरः परमं दुःखं विषह्य, विषमं भूतं च विवश्य यः जपन् (विजयते) जयते।

अर्थ—वह पहले तो भूत है, वह भी महाभयङ्कर है, वह ऐसा भूत इन महाशय मुनिराज को कष्ट देता है, किन्तु वे महामुनि महाराज महाकष्ट सहन कर और विषम भूत को काबू में कर ये जपते-जपते विजयी हो गए।

(१५)

भूतेन तेन न पुनर्मुनिरेव कृष्टः,
पट्टो दृढोऽपि शकलेषु विखण्डितोऽसौ ।
हेतुस्त्वयं मुनिरसौ शयितस्तदासीत्,
क्रुद्धोऽपतत्पुनरतोऽपि च खण्डितोऽद्य ॥

अन्वयः—तेन भूतेन पुनः मुनिः एव न कृष्टः किन्तु दृढः पट्टः अपि असौ शकलेषु विखण्डितः (अभवत्) । अस्य पट्टस्य खण्डने अयं तु हेतुः, तदा असौ मुनिः पट्टे शयितः आसीत् शयाने मुनौ पुनः क्रुद्धः भूतः अपतत् । अतश्च (स) पट्टः खण्डितः अद्य अपि विद्यते ।

अर्थ—उस भूत ने न फिर वह मुनि ही सताया अपितु दृढ़ लकड़ी का पट्टा भी टुकड़ों में बाँट दिया । इस पट्टे के टूटने में कारण यह था कि ये मुनि महाराज पट्टे पर लेटे हुए थे, लेटे हुए मुनिजी पर वह क्रुद्ध कूद पड़ा, जिससे पट्टा खण्डित हुआ आज भी वहाँ पड़ा है ।

(१६)

अन्ते मुनिं वदति भूतविशेष एषः,
प्रीतोऽस्म्यहं वद यथेति च तेऽनुकूलम् ।
कुर्यामहं तदपि ते वचनं ममैतत्,
स्थानं विहाय तदिदं स्वत एव यामि ॥

अन्वयः—अन्ते एषः भूतविशेषः मुनिं वदति यत् अहं प्रीतः अस्मि इति, यथा च ते अनुकूलं भवेत् तत् अपि अहं ते (अवश्यं) कुर्याम्, मम एतत् वचनम् अस्ति । तत् (अहं) स्वतः एव इदं स्थानं विहाय यामि ।

अर्थ—अन्त में यह भूत मुनि महाराज से कहने लगा कि (आपके व्यवहार से) मैं प्रसन्न हूँ—ऐसा । और जैसा आपके अनुकूल होगा, वह मैं अवश्य करूँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है । इसलिए मैं आपकी इच्छा के अनुकूल ही अपने आप इस स्थान को छोड़कर जा रहा हूँ ।

(१७)

अत्रान्तरे पुनरयं खिवसीर्महौकाः ,
कार्यान्निवृत्य विरतो यतते च राज्ञः ।
द्रष्टुं गुरुं व्रजति तं न तु पश्यतीमम् ,
खिन्नो भवत्यत इतस्तु गुरोः प्रवासात् ॥

अन्वयः—अत्रान्तरे अयं महौकाः खिवसीः राज्ञः कार्यात् निवृत्य विरतः सन् गुरुं द्रष्टुं यतते, तं च द्रष्टुं व्रजति, किन्तु इमं गुरुं तत्र न पश्यति । गुरोः इतः प्रवासात् तु खिन्नः भवति ।

अर्थ—इसी बीच में ये प्रतिष्ठित खिवसीजी साहब राजा के कार्य से लौटकर उदासीन हुए गुरु के दर्शन के लिए सोचने लगे और उसके दर्शन के लिए गए, किन्तु इनको वे न देख सके । गुरुदेव के यहाँ से पधारने के कारण तो वे दुःखी भी हुए ।

(१८)

स्थानान्निवृत्य खिवसीः पुनरेति सन्तम् ,
द्रष्टुं गुरुं स समुनि प्रनिवासितं तम् ।
ज्ञात्वा रहस्यमथ तत् प्रतिकर्त्तुमेतत् ,
संवीक्ष्य धीरहृदयः समयं चिखेद ॥

अन्वयः—स्थानात् निवृत्य सः धीरहृदयः खिवसीः पुनः तं प्रनिवासितं सन्तं समुनिं गुरुं द्रष्टुम् एति । अर्थात् रहस्यं ज्ञात्वा एतत् प्रतिकर्त्तुं संवीक्ष्य समयं चिखेद ।

अर्थ—पहले निवासस्थान से लौट कर वे गम्भीर खिवसीजी फिर उन प्रनिवासित हुए मुनियों के साथ गुरुदेव के दर्शन के लिए वहाँ पहुँचे, (जहाँ पर कि उनको प्रनिवासित किया गया था) तदनन्तर रहस्य को जानकर कि इसका प्रतिकार कैसे होगा ? अच्छी तरह सोच-विचार कर समय के लिए दुःखी हुए ।

(१९)

दृष्ट्वा गुरुं प्रणमति त्रिरथाऽपराधम् ,
स्वीकृत्य सोऽप्यवदतः खिवसीर्विधिज्ञः ।
कुर्यां किमत्र विवशोऽगममागतोऽहम् ,
राज्ञो विशेषवचनाद् बहिराशुकारी ॥

अन्वयः—अथ सः विधिज्ञः खिवसीः गुरुं दृष्ट्वा त्रिः प्रणमति, अपराधं स्वीकृत्य अपि अवदत्, यत् राज्ञःविशेषवचनात् विवशः अहं बहिः अगमम्, अतः अत्र किं कुर्याम् ? (सम्प्रति) अहम् आगतः आशुकारी (अस्मि) ।

अर्थ—तब उन विधिज्ञ खिवसीजी ने गुरुदेव के दर्शन कर सतिखुत्तो प्रणाम किया और अपराध स्वीकार कर अर्ज करने लगे कि दरबार के आदेश से विवश होकर मैं बाहिर गया था । इसलिए इस विषय में मैं क्या कर सकता था ? अब मैं आया हूँ, और शीघ्र ही जो करना चाहिए, वह करता हूँ ।

(२०)

वासस्य तस्य विषये खिवसीर्महौकाः ,
सन्तं निरीक्ष्य मनसा व्यथितेन वन्द्यम् ।
पप्रच्छ किन्तु बहुधा प्रथमो मुनीनाम् ,
हर्षं व्यजीजनदयं सदने निवस्तुम् ॥

अन्वयः—महौकाः खिवसीः व्यथितेन मनसा वन्द्यं-सन्तं तस्य वासस्य विषये पप्रच्छ, किन्तु अयं मुनीनां प्रथमः सदने निवस्तुं बहुधा हर्षं व्यजीजनत् ।

अर्थ—पूर्णप्रतिष्ठित खिवसीजी साहब ने अपने भारी मन से आदरणीय सन्तश्री को उनके महलों के द्वार के ऊपर विराजने के विषय में प्रश्न किए, किन्तु इन आचार्य श्री ने भूत मन्दिर के विषय में निवास करने को अनेक प्रकार से हर्षजनक बताया ।

(२१)

जातास्तदा मुनिममुं प्रसितं विलोक्य ,
कृत्ये विशिष्टकुटिलाः सकलाः सलज्जाः ।
कार्यं कृतं न फलितं त्विति, शोचयद्भिः ,
दुष्टैरधोमुखमिवाकुलितं व्यधायि ॥

अन्वयः—तदा कार्ये प्रसितम् अमुं मुनिं विलोक्य सकलाः विशिष्ट-कुटिलाः सलज्जाः जाताः । कार्यं तु कृतं (किन्तु) न फलितम् इति शोचयद्भिः दुष्टैः आकुलितम् इव अधोमुखं व्यधायि ।

अर्थ—उस समय पर धर्मकार्य में संलग्न उन मुनि महाराज को देखकर सभी प्रमुख कुटिल लज्जित हो गए । कार्य तो किया, किन्तु फलित नहीं हुआ-ऐसा सोचने वाले दुष्टों के द्वारा आकुल-व्याकुल जैसे हो, ऐसा नीचे मुखकर लिया गया ।

(२२)

कृत्ये कृते विफलितेऽपि जना निकृष्टाः ,
चित्ते विशेषविकृतिं विषमां विभूय ।
अन्यद् दुरन्तदुरितं रचितुं प्रभूतम् ,
कुर्वन्ति पापमपरं विसृपा इवोत्काः ॥

अन्वयः—निकृष्टाः जनाः कृते कृत्ये विफलिते अपि चित्ते विषमां विशेषविकृतिं विभूय अन्यत् प्रभूतं दुरन्तदुरितं रचितुम् अपरं पापम्, उत्काः विसृपाः इव कुर्वन्ति ।

उत्कण्ठित सर्प के समान नीच पुरुष किये गए कार्य के विफलित होने पर भी चित्त में विषम विशेष विकृति को बढ़ाकर दूसरे बड़े मुश्किल से अन्त होने वाले पाप को रचने के लिए दूसरे जिस से बड़े पाप न हों ऐसे पाप करते हैं । यह निम्न प्रकृति के मनुष्यों का स्वभाव है ।

(२३)

अत्रान्तरे स पटवाभिधरङ्गलालः ,
सन्तं महामुनिममुं वदितुं प्रवृत्तः ।
उक्तस्य मानमभिधाय ततो भजेऽहम् ,
कोटेः परं परिकरं भवतोऽनुमन्ये ॥

अन्वयः—अत्रान्तरे सः पटवाभिधः रङ्गलालः सन्तम् अमुं महामुनिं वदितुं प्रवृत्तः (अभवत्)। ततः भवतः उक्तस्य मानम् अभिधाय ततः अहं कोटेः परं परिकरम् अनुमन्ये।

अर्थ—वार्तालाप के बीच में जयपुर (राजस्थान) के प्रख्यात पटवावंश सेठ श्री रंगलालजी उन सन्तशिरोमणि महाराज को बताने लगे कि आप श्री के कथन के अनुसार परिग्रह के मान को कहकर ही कोटि रुपयों से अधिक सम्पत्ति का मैं अधिकारी हुआ ऐसा अनुमान करता हूँ। (क्योंकि ये सीमित धनराशि के परिग्रह को स्वीकार करना चाहते थे, तब आचार्य श्री ने परिग्रह की राशि को मर्यादा के साथ करने का संकेत किया। परिणाम स्वरूप धन अधिक प्राप्त हुआ। और उस अधिक धन के कारण ही इन्होंने बड़े-बड़े धन-दान किए, यह बात जयपुर के दानियों के इतिहास में आज भी प्रसिद्ध है)।

(२४)

यान्तं समण्डलममुं चरितुं सपर्य्यामि ,
जैना जना नगरवासिन एव सन्तम् ।
श्रद्धानताः प्रणयिनः स्थगितुं विहारम् ,
आवेदयन्ति सकलाः श्रमणेषु गण्यम् ॥

अन्वयः—सपर्य्यां चरितुम् एव अमुं श्रमणेषु गण्यं समण्डलं यान्तं सन्तं श्रद्धानताः जैनाः प्रणयिनः नगरवासिनः सकलाः एव विहारं स्थगितुम् आवेदयन्ति।

अर्थ—भाव-भक्ति से पूजा करने के लिए ही उन श्रमणों में गण्य मुनियों के मण्डल के साथ पधारते हुए सन्त महाराज से श्रद्धानत जैन-प्रणयी जोधपुर नगरवासी सभी विहार को स्थगित करने के लिए प्रार्थना करने लगे।

(२५)

क्षेत्रं विधाय विकृतं विपुलं विशुद्धम् ,
प्रष्ठः स्वयं मुनिवरेषु विधिं यथोक्तम् ।
सर्त्तुं महामुनिरयं समवोचदग्र्यम् ,
सङ्घाधिकारिणममुं रचितुं प्रबन्धम् ॥

अन्वयः—विकृतं विपुलं क्षेत्रं विशुद्धं विधाय अयं मुनिवरेषु प्रष्ठः महामुनिः यथोक्तं अग्र्यं विधिं सर्त्तुम् अमुं सङ्घाधिकारिणं प्रबन्धं रचितुं स्वयं समवोचत् ।

अर्थ—बिगड़े हुए विशाल क्षेत्र को विशुद्ध कर मुनिवरों के अग्रणी आचार्य श्री यथोक्त अग्रिम विधि को अनुसृत करने के लिए उस संघ के अधिकारी को प्रबन्ध की रचना के लिए स्वयं कहने लगे ।

(२६)

सर्वे विहारसमयं समवेक्ष्य गन्तुम् ;
पश्चादिमे मुनिवरस्य समण्डलस्य ।
चित्ते निधाय सफलां सुगुणाविरक्तिम् ,
वन्द्यं गुरोः प्रतिपदं समुपासते ते ॥

अन्वयः—विहारसमयं समवेक्ष्य इमे सर्वे समण्डलस्य मुनिवरस्य पश्चात् गन्तुं समुपासते । सुगुणाः (च) ते गुरोः सफलां विरक्तिं चित्ते निधाय वन्द्यं महामुनिं प्रतिपदं समुपासते ।

अर्थ—विहार के समय को निहार कर वे सब श्रावक मण्डल के साथ मुनिवर के पीछे चलने को एकत्र हुए और वे सुगुण मनुष्य गुरुदेव श्री की सफल विरक्ति को हृदय में रखकर वन्दनीय आचार्य श्री की पद-पद पर सेवा-शुश्रूषा करने लगे । अस्तु-उपासना सभी ने की, किन्तु ध्येय भिन्न रहे ।

(२७)

अन्ते विहारसमये मुनिदर्शनाय ,
श्रद्धा-प्रसून-मधुपोऽजितसिंहनामा ।
देशस्य तस्य मरुधरप्रथितस्य राजा, ,
हर्ष प्रसत्ति-सुगमश्च समागतोऽसो ॥

अन्वयः—अन्ते च विहारसमये तस्य मरुधरप्रथितस्य देशस्य असौ श्रद्धाप्रसूनमधुपः अजितसिंहनामा हर्ष-प्रसत्ति-सुगमः राजा (अपि) समागतः (अभूत्)।

अर्थ—और अन्त में विहार के समय पर उस मरुधर कहे जाने वाले देश का, वह श्रद्धा के पुष्पों के मधु को पीने वाले अजितसिंह जिनका नाम था, हर्ष और प्रसन्नता जिनको सुगम थीं, ऐसे राजाजी भी आए थे।

(२८)

राजाप्ययं कृतनतिर्मुनिराजमूचे ,
द्रष्टुं भवन्तमनिशं पुनरेव रोचे ।
सत्यं वदामि बहुशश्च मुनीनपश्यम् ,
पश्याम्यहं न सदृशं मुनिमेवमन्यम् ॥

अन्वयः—अयं कृतनतिः राजा अपि मुनिराजम् ऊचे—यत् अहं भवन्तं पुनः अनिशम् एव द्रष्टुं रोचे । अहं च सत्यं वदामि यत् बहुशः मुनीन् अपश्यम्, (किन्तु) अहम् एवम् अन्यं मुनिं सदृशं न पश्यामि ।

अर्थ—इन प्रणाम किये हुए राजा साहब ने भी आचार्य महाराज से कहा कि मैं फिर आपश्री को सदैव देखने की चाह रखता हूँ। और सच कहता हूँ कि मैंने अनेक बार मुनियों को देखा, किन्तु मैंने ऐसा दूसरा मुनि आपकी बराबरी का नहीं देखा।

(२९)

राज्ञि स्तुतिं विदधति प्रथयन्ति चान्ये ,
भक्ता वदन्ति गुरवः शिथिलान् क्षमन्ताम्।
शृण्वन्ति तेऽपि गमनं परिवर्त्तयन्तु ,
सन्तः स्थिरं न परिवर्त्तयितुं सहन्ते ॥

अन्वयः—स्तुतिं विदधति राज्ञि सति अन्ये (अपि) स्तुतिं प्रथयन्ति, भक्ताः च वदन्ति—यत् हे गुरवः ! (अस्मान्) शिथिलान् क्षमन्ताम् । (सहैव) ते । (मुनयः) गमनं परिवर्त्तयन्तु इति अपि शृण्वन्ति । (किन्तु) सन्तः स्थिरं (विषयं) परिवर्त्तयितुं (कदापि) न सहन्ते ।

अर्थ—विहार के समय जब जोधपुर-नरेश स्तुति कर ही रहे थे कि दूसरे भी स्तुति करने लगे और भक्तजन कहने लगे—गुरुजन ! हम शिथिलों की त्रुटि को भी क्षमा कीजिए । साथ ही मुनिजन भी सुन रहे थे कि कृपया विहार को परिवर्त्तित कर दीजिए । किन्तु यह सब जानते हैं कि मुनिजन स्थिर बात को बदलने के लिए कभी तैयार नहीं होते ।

(३०)

तस्मादयं तु मुनिसंघयुतो मुनीशः ,
स्थानादनन्यमहिमा विविधप्रदेशान् ।
गन्तुं जनान् विहितधर्मविधौनियोक्तुम् ,
शान्तः स्वभावसरलः कुरुते विहारम् ॥

अन्वयः—अयं तु मुनिसंघयुतः अनन्यमहिमा स्वभावसरलः शान्तः मुनीशः तस्मात् स्थानात् विविध प्रदेशान् गन्तुं विहितधर्म-विधौ जनान् नियोक्तुं विहारं कुरुते ।

अर्थ—ये मुनियों के साथ परमप्रसिद्ध स्वभाव सरल और शान्त आचार्यश्री उस स्थान से अनेक स्थानों का स्पर्श करने के लिए विहित धर्म की क्रिया में मनुष्यों को नियुक्त करने के लिए विहार प्रारम्भ कर देते हैं ।

(३१)

धर्मस्य पूज्ययशसोऽस्य मुनेः सुशिष्यः ,
धन्यो मुनिश्रुतयशा मुनिसङ्गमेतुम् ।
आयादिमं मुनिमवाप्य न गन्तुमिच्छुः ,
दृष्ट्वाऽमिलन्मुनिमिमं चलितुं नगोरम् ॥

अन्वयः—विहारमार्गे एव कस्मिंश्चिद् ग्रामे पूज्ययशसः मुनेः श्री धर्मदासस्य सुशिष्यः धन्यः मुनिः मुनिश्रुतयशाः सन् मुनिसङ्गम एतुम् (इह) आयात्, किन्तु (तस्मिन् ग्रामे) इमं श्रीमन्तम् अमरसिंहमुनिं न अवाप्य धन्यः मुनिः गन्तुम् इच्छुः (यदा अभवत्, तदा) इमम् श्रीमन्तम् अमरसिंह मुनिं दृष्टवा (धन्यः मुनिः) नगोरं चलितुम् अमिलत् ।

अर्थ—विहार के मार्ग में ही किसी एक ग्राम में पूज्य मुनि श्री धर्मदासजी के सुशिष्य धन्ना मुनिजी मुनि महाराज की प्रशंसा को सुनते हुए मुनि महाराज के साहचर्य को प्राप्त करने के लिए यहाँ पहुँचे, किन्तु उस ग्राम में इन श्रीमान् अमरसिंह मुनिजी को न पाकर जाने को तैयार हुए तब उन्होंने इन मुनि महाराज को (देखा), देखकर धन्ना मुनिजी नागोर को चलने के लिए मिले ।

(३२)

सर्वे नमन्ति सविधि प्रथमं मुनीनाम् ,
आयान्तमेनमिव तं गणगौतमाभम् ।
सन्तोऽपि ते सुयशसः कथयन्ति शान्ताः ,
माङ्गल्यवाचममुकं प्रथितं महान्तम् ॥

अन्वयः—सर्वे एनम् अपरं गणगौतमाभम् इव आयान्तं मुनीनां प्रथमं सविधि नमन्ति । ते सुयशसः शान्ताः सन्तः अपि अमुकं प्रथितं महान्तं माङ्गल्यवाचं कथयन्ति ।

अर्थ—सभी इनको दूसरे गणधर गौतम की कान्ति वाले के तुल्य आते हुए उन मुनियों के आचार्य को विधि के साथ प्रणाम करते थे । वे प्रसिद्ध शान्त सन्त भी इन प्रख्यात मुनि को महान् मङ्गलवाक् बताते थे ।

(३३)

श्रुत्वा परां मुनिवरस्य यशः प्रशस्तिम् ,
सर्वे प्रशस्तमुनयोऽपि तपोधरं ते ।
श्रोतुं मुनिं महितधर्मधराधुरीणम् ,
पृच्छन्ति योधपुर-कीर्तिकथां विलोक्य ॥

अन्वयः—सर्वे प्रशस्तमुनय, अपि मुनिवरस्य परां यशः प्रशस्तिं श्रुत्वा ते महितधर्मधराधुरीणं तपोधरं मुनिं विलोक्य योधपुर-कीर्तिकथां श्रोतुं पृच्छन्ति ।

अर्थ—सब प्रसिद्ध मुनिजन भी आचार्यश्री की बड़े यश की विशेषता सुनकर वे पवित्र एवं आदृत धर्म की भूमि के भारवाही तपस्वी मुनि को देखकर जोधपुर की कीर्ति कथा को सुनने के लिए प्रश्न करने लगे ।

(३४)

तस्मादिमे विविधकीर्त्तिधरा मुनीशाः ,
आर्याश्च ताः सहभुजः समभोगवृत्यः ।
ख्याताः समेत्य सकलाः समसूत्रबद्धाः ,
जातास्ततः प्रभृति ते सहभोगभाजः ॥

अन्वयः—इमे विविधकीर्त्तिधराः मुनीशाः सहभुजः ताः च आर्याः समभोगवत्यः सकलाः समसूत्रबद्धाः समेत्य तस्मात् ते ततः प्रभृति सहभोग-भाजः ख्याताः जाताः ।

अर्थ - ये अनेक प्रशंसाओं के धारण करनेवाले सन्त सहभोजी और वे सतियाँ सहभोजी सभी जो समान सूत्र-आगमों से बँधे हुए थे इन मुनि महाराज के साथ मिलकर आहार में सम्मिलित होकर ही वे उस समय से लेकर आज तक सहभोगी प्रसिद्ध हुए चले आ रहे हैं ।

१—भोगशब्दः—जैनमुनिसमाचरणे, आहारार्थकः प्रसिद्धः ।

(३५)

धन्यो मुनिप्रवरमेत्य मुनिर्महान्तम् ,
शास्त्रस्य सारमखिलं प्रतिबुध्य धीरः ।
नागोर एव मिलितो गुणिभिः प्रशस्तः ,
जातो विशेषमहिमा मुनिसङ्घसेवी ॥

अन्वयः—धीरः धन्यः मुनिः महान्तं मुनिप्रवरम् एत्य शास्त्रस्य अखिलं सारं प्रतिबुध्य नागोरे एव मिलितः गुणिभिः प्रमाणितः विशेषमहिमा मुनि-सङ्घसेवी जातः ।

अर्थ—उस विहारमार्ग के स्थानविशेष नागोर में—धीर मुनि श्रीधन्नाजी, जो आचार्य श्रीअमरसिंहमुनि जी के साथ-साथ अगवानी कर नागोर आए थे—क्योंकि ये कारणविशेष से नागोर में रहते थे, आचार्य श्री की सेवा में आकर और शास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्व को समझकर नागोर में मिले गुणियों से प्रमाणित रह आचार्यश्री की सङ्गति के सेवक प्रसिद्ध हुए ।

(३६)

सौहार्दभावमधिगम्य परस्परं ते ,
सर्वे महाशयममुं मुनिमादरन्ति ।
सोऽयं प्रभालसितमण्डलमध्यमूर्त्तिः ,
शोभामिवैति परिवेषगतो हिमांशुः ॥

अन्वयः—ते सर्वे मुनयः सौहार्दभावम् अधिगम्य अमुं महाशयं मुनिं परस्परम् आदरन्ति । आदृतः सन् स किमिव शोभते—सः प्रसिद्धः आचार्यः अयम् अमरसिंहो मुनिः परिवेषगतः प्रभालसितमण्डलमध्यमूर्त्तिः हिमांशुः इव शोभाम् एति ।

अर्थ—वे सभी मुनिजन सौहार्दभाव अधिगत कर इन महाशय मुनिराज को घेर कर आदृत करते, तो वे उस समय ऐसी शोभा धारण करते थे, जैसे कि चाँदनी युक्त मण्डल के बीच में हो बिम्ब जिसका, ऐसा परिवेषगत चन्द्रमा जैसे शोभा प्राप्त करता है ।

(३७)

नानाप्रदेशपरिधौ गमनं चिकीर्षुः ,
साधूनिमानपि सहैव निनीषुरेषः ।
सम्प्रेष्य वृत्तमभितो जनवृन्दमेतुम् ,
श्रेष्ठं महान् मुनिजनेषु दधाति यत्नम् ॥

अन्वयः—नानाप्रदेशपरिधौ गमनं चिकीर्षुः इमान् साधून् अपि सहैव निनीषुः मुनिजनेषु महान् एषः आचार्यः अमरसिंहः मुनिः अभितः जनवृन्दं एतुं वृत्तं सम्प्रेष्य श्रेष्ठं यत्नं दधाति ।

अर्थ—अनेक स्थानों की परिधि में जाने की इच्छा रखकर इन मुनियों को भी साथ ही ले चलने की इच्छावाले ये आचार्य श्रीअमरसिंहमुनि महाराज, सब ओर जनता के पास पहुँचने का समाचार भेजकर, बढ़िया से बढ़िया यत्न करने लगे ।

(३८)

अन्ते विभिन्नविषयान् प्रविहृत्य देशान् ,
श्रेष्ठो मुनिप्रवरवृन्दमहाभिवन्द्यः ।
हृद्यानवद्यविनतिप्रथितेषु शान्तिम् ,
वर्षाधिवासनिचयेषु विरम्य लेभे ॥

अन्वयः—विभिन्नविषयान् देशान् प्रविहृत्य मुनिप्रवरवृन्दमहाभिवन्द्यः श्रेष्ठः हृद्यानवद्यविनतिप्रथितेषु वर्षाधिवासनिचयेषु सत्सु अन्ते विरम्य शान्तिं लेभे ।

अर्थ—अनेक समस्याप्रधान देशों का विहार कर मुनिवर वृन्द के द्वारा अति अभिवन्दनीय सबसे प्रशस्त आचार्य श्री जी ने प्रिय एवं पवित्र विनतियों से प्रसिद्ध वर्षावास के समूहों के समाप्त होने पर ही अन्त में विराम लेकर शान्त हुए ।

(३९)

अस्य प्रभावमतुलं प्रसमीक्ष्य सन्तः ,
सर्वे नमन्ति विमलप्रतिभामहिम्नः ।
धर्मस्य रूपमधिकं विहितं विमृश्य ,
चान्ते महामुनिममुं गणयन्ति पूज्यम् ॥

अन्वयः—विमलप्रतिभामहिम्नः अस्य अतुलं प्रभावं प्रसमीक्ष्य सर्वे सन्तः (तं) नमन्ति, अन्ते च (अस्य प्रभावादेव) धर्मस्य रूपम् अधिकं विहितं विमृश्य अमुं महामुनिं पूज्यं गणयन्ति ।

अर्थ—विमल प्रतिभा की महिमा के इस मुनिजी के अनुपम प्रभाव को सोच-विचार सभी मुनिजन आपश्री को अभिवन्दन करते हैं। और अन्त में आपश्री के प्रभाव से ही धर्म के रूप को अधिक क्रियान्वित विचारकर उन आचार्यश्री को पूज्य गिनते हैं।

(४०)

एतेन तेन मुनिनाऽमरसिंहनाम्ना ,
ज्योतिर्धरेण सकलं कुहरं यतीनाम् ।
विस्फोटितं विमलकेवलिबोधदीप्तः ,
धर्मः सनातन इह प्रतिबोधितश्च ॥

अन्वयः—तेन एतेन अमरसिंहनाम्ना मुनिना ज्योतिर्धरेण यतीनां सकलं कुहरं विस्फोटितम्, इह च विमलकेवलिबोधदीप्तः सनातनः धर्मः प्रतिबोधितः ।

अर्थ—उन इन्हीं ज्योतिर्धर श्रीमदाचार्यामरसिंहमुनिमहाराज ने सारा यतियों का बिल फोड़ डाला और विमल केवलियों के ज्ञान से दिया हुआ यह सनातन धर्म प्रतिबोधित किया।

(४१)

अन्ते नितान्तविमलो विशदांशुमालः ,
चन्द्रो महाविकटमेघघटाविलीनः ।
संशोभते परमया कलया विहीनः ,
व्योम्नीव देवसदृशो विलयं गतोऽसौ ॥

अन्वयः—अन्ते असौ देवसदृशः आचार्यः विलयं गतः (अपि) संशोभते, यथा नितान्तविमलः विशदांशुमालः महाविकटमेघघटाविलीनः परमया कलया विहीनः चन्द्रः इव व्योम्नि विलयं गतः संशोभते ।

अर्थ—अन्त में वे देव के समान आचार्यश्री विलीन हुए भी शोभा पा रहे हैं, जैसे पूर्ण स्वच्छ स्पष्टकिरणों से वेष्टित भयङ्करकाले मेघ की घटाओं में छिपा हुआ अधिक कला से हीन चन्द्र आकाश में ही लीन होकर भी शोभा पाता है ।

(४२)

अमरसिंहमुनौ रजनीपतौ, विमलकीर्त्तिविभामणिमण्डिते ।
कवलिते सति केतुभयङ्करः, जयति कालबलीव निशाचरः ॥

अन्वयः—विमलकीर्त्तिविभामणिमण्डिते अमरसिंहमुनौ रजनीपतौ कवलिते सति कालबली केतुभयङ्करः निशाचरः जयति ।

अर्थ—विमल कीर्त्ति की विभारूप मणि से शोभित अमरसिंहमुनि चन्द्रमा के कवलित होने पर कालबली केतु भयङ्कर निशाचर के समान जयी है ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
दशमः सर्गः

❀

एकादशः सर्गः

(१)

इयं तु पट्टावलिरस्ति तस्य, प्रकृष्टरूपोत्कटगन्धपुष्पा ।
स्रगेव सम्प्रत्यपि कालकृष्टा, विराजते भारतभूमिभागे ॥

अन्वयः—तस्य महामुनेः श्रीमतोऽमरसिंहस्य इयं पट्टावलिः तु प्रकृष्ट-रूपोत्कटगन्धपुष्पा स्रक् कालकृष्टा एव भारतभूमिभागे सम्प्रति अपि विराजते ।

अर्थ—उन आचार्य श्रीमान् अमरसिंह मुनि महाराज की यह पट्टावलि तो प्रकृष्ट रूप के प्रदीप्त गन्ध के पुष्पों की माला समय से खिची हुई अब तक विद्यमान है ।

(२)

मुनि प्रसिद्धोऽमरसिंहनामा, मरोर्धरायां जिनधर्मवृक्षम् ।
समूलमारोपयिताऽद्वितीयः, नवार्हताचार्यवरो बभूव ॥

अन्वयः—मरोः धरायां समूलं जिनधर्मवृक्षम् आरोपयिता प्रसिद्धः अमरसिंह नामा मुनिः अद्वितीयः नवार्हताचार्यवरः बभूव ।

अर्थ—मारवाड़ की भूमि में जड़ के साथ जिनधर्म के वृक्ष को रोपने वाले प्रसिद्ध श्री अमरसिंह नाम अनुपम नूतन आर्हताचार्य हुए ।

(३)

प्रसुप्तलोकान् सुगमां विलोक्य, सृतिं यथाचारविलुप्तबुद्धीन् ।
जिनप्रबुद्धाहृतसाधुमार्गे, व्यबोधयत्तान् मुनिरेव सत्याम् ॥

अन्वयः—मुनिः एव तान् यथाचारविलुप्तबुद्धीन् प्रसुप्तलोकान् विलोक्य जिनप्रबुद्धाहृतसाधुमार्गे सुगमां सत्यां सृतिं व्यबोधयत् ।

अर्थ—श्री मुनि महाराज ने ही जैसा चाहिये ऐसे आचार की विलुप्त हो गई है बुद्धि जिनकी ऐसे गाढनिद्रित लोगों को केवलि प्रज्ञप्त होने से आदृत, साधु मार्ग में सुगम, सच्चा रास्ता बताया ।

---

० सर्गेऽस्मिन् 'उपेन्द्रवज्रा ज्तौ ज् गौ ग् ।'

(४)

अतोऽस्य संघः परमप्रतिष्ठः मरोर्धरायां प्रथमोऽग्रयायी ।
ततान श्वेताम्बरजैनधर्मे, सदोरकर्णाश्रितवक्त्रवस्त्रः ॥

अन्वयः—अतः अस्य श्वेताम्बरजैनधर्मे मरोः धरायां प्रथमः अग्रयायी परमप्रतिष्ठः सदोरकर्णाश्रित वक्त्रवस्त्रः संघः ततान ।

अर्थ—इसलिए आपश्री का, मारवाड़ की धरती पर श्वेताम्बर जैनधर्म में पहला अग्रगामी परम आदृत डोरे के साथ कानों के सहारे मुख पर वस्त्र वाला संघ विस्तार प्राप्त कर सका ।

(५)

ततः प्रभृत्येव मुनेस्तुनाम्ना, स्वतः प्रसिद्धोऽमरसम्प्रदायः ।
प्रवर्त्तते सम्प्रतिसोऽप्यतीते, विशेषकाले स्थिति कालवोढा ॥

अन्वयः—मुनेः नाम्ना स्वतः प्रसिद्धः अमरसम्प्रदायः ततः प्रभृति विशेषकाले अतीते अपि स्थितिकालवोढा स प्रवर्त्तते एव ।

अर्थ—मुनिश्री जी के शुभनाम से अपने आप प्रसिद्ध हुआ अमर सम्प्रदाय उस समय से आज तक काफी समय बीतने पर भी स्थिति और काल को वहन करता हुआ प्रवृत्त ही है ।

(६)

अयं महावीरविभोर्जिनस्य, अतस्तदैकं दश चेति संख्याम् ।
सुपञ्चकृत्वः पुनरेव संख्याम् प्रपूर्य पट्टस्य स्वतोऽधिकारी ॥

अन्वयः—जिनस्य महावीरविभोः, अतः एकं च दश चेति संख्यां पुनः पञ्चकृत्वः प्रपूर्य अर्थात् पञ्च पञ्चाशतं पूरणीकृत्य, पञ्चपञ्चाशत्तमस्य पट्टस्य अयम् अधिकारी स्वतः अस्ति ।

अर्थ—प्रभु जिनेश्वर महावीर के पचपनवें पाट के आपश्री गणना-क्रम से अपने आप अधिकारी थे । क्योंकि ११ संख्या को पाँच बार आवृत्ति के साथ पूरण प्रत्ययान्त करने पर पञ्च पञ्चाशत्तम (५५) बनता है ।

(७)

दिवं प्रयाते मुनिनायकेऽस्मिन् पुनस्तदा श्री तुलसीमुनीशः ।
अशोभताचार्यपदं मुनीनाम्, गते रवौ चन्द्र इवातिशेते ॥

अन्वयः—अस्मिन् मुनिनायके दिवं प्रयाते सति तदा पुनः श्री तुलसी मुनीशः मुनीनाम् आचार्यपदम् अशोभत, रवौ गते चन्द्रः इव अतिशेते ।

अर्थ—इन आचार्यश्री के स्वर्गारोहण पर तब फिर श्री तुलसीजी महाराज ने मुनियों के आचार्यपद को सुशोभित किया, रवि के अस्त हो जाने पर जैसे चन्द्रमा शोभा पाता है ।

(८)

अयं हि मेवाड वसुन्धरायाः, प्रतापसिंहाधिपपालितायाः ।
गृहे फकीरेन्दुमहाजनस्य, जनि प्रपेदे जुनियाख्यवासे ॥

अन्वयः—अयं हि प्रतापसिंहाभिद्य पालितायाः मेवाड़वसुन्धरायाः जुनियाख्यवासे फकीरेन्दु महाजनस्य गृहे जनिं प्रपेदे ।

अर्थ—ये श्री तुलसीमुनि महाराज महाराणा प्रतापसिंहजी राजा के द्वारा संरक्षित मेवाड़-भूमि के ग्राम जुनियाँ में महाजन श्री फकीरचन्द्रजी के घर में उत्पन्न हुए थे ।

(९)

विवाहितः सन्नपि रागरीतिम् विहाय वव्रे परमां विरक्तिम् ।
अतोऽयमन्ते मुनिदेवसिंहात्, अवाप्य दीक्षां महिमानमाप ॥

अन्वयः—विवाहितः सन् अपि अयं रागरीति विहाय परमां विरक्तिं वव्रे । अतः अन्ते मुनिदेवसिंहात् दीक्षाम् अवाप्य महिमानम् आप ।

अर्थ—विवाहित होते हुए भी आपने राग-रीति को छोड़ परम विरक्ति को स्वीकार किया था । अतः आचार्य श्रीमान् अमरसिंह मुनि महाराज से दीक्षा ग्रहण कर महत्व प्राप्त किया ।

(१०)

महोत्तमं देवसमं गुणीशम्, मुनिं सदावन्दितपादपद्मम् ।
महोपकारी गुरुदेवसिंहः, तदैनमाचार्ययुवानमाह ॥

अन्वयः—तदा महोपकारी गुरुदेवसिंहः महोत्तमं सदावन्दितपादपद्मं देवसमं गुणीशं मुनिं (श्रीतुलसीम्) एनम् आचार्ययुवानम् आह ।

अर्थ—उस समय परम उपकारी गुरुदेवसिंह श्रीअमरसिंहजी महाराज ने परम उत्तम सदागुरुभक्ति में लीन रहने वाले देवतुल्य सर्वथा योग्य मुनि श्रीतुलसीजी को युवाचार्य बना दिया ।

(११)

अतोऽयमग्रे निपुणोऽधिकर्त्ता, बभूव भव्येऽमरसम्प्रदाये ।
प्रभावमस्याधिकमेव मत्वा, नमन्ति सर्वे मुनयो मुनीशम् ॥

अन्वयः—अतः अग्रे अयं निपुणः अधिकर्त्ता भव्ये अमरसम्प्रदाये बभूव । अस्य अधिकं प्रभावं मत्वा एव सर्वे मुनयः मुनीशं (श्रीतुलसीमहाराजं) नमन्ति ।

अर्थ—इसलिए आगे चलकर ये निपुण अधिकारी, भव्य अमरसम्प्रदाय में सिद्ध हुए । इनके अधिक प्रभाव को मानकर सभी मुनिजन (श्रद्धा से) झुक जाते थे ।

(१२)

अयं प्रसिद्धस्तुलसीमुनीशः, विभिन्नदेशेषु विहृत्य धर्मम् ।
विबोध्य जैनं विततायुरन्ते, विभुज्य संस्तारपदं विरेमे ॥

अन्वयः—अयं प्रसिद्धः तुलसीमुनीशः विभिन्नदेशेषु विहृत्य जैनं धर्मं विबोध्य अन्ते विततायुः सन् संस्तारपदं विभुज्य विरेमे ।

अर्थ—ये प्रख्यात श्रीतुलसीजी आचार्य विभिन्न स्थानों पर विहार कर जैन धर्म को समझाकर अन्त में लम्बे आयुष्य होने पर संथारा पचख कर विराम प्राप्त किया ।

(१३)

तदाऽस्य शिष्यो विनयोन्नतोऽसौ, कृताधिशान्तिर्यमिनां वरिष्ठः ।
सुजानमल्लो विदुषां विशिष्टः, जातस्तृतीयोऽमरपट्टधारी ॥

अन्वयः—तदा अस्य असौ विनयोन्नतः, कृताधिशान्तिः, यमिनां वरिष्ठः, विदुषां विशिष्टः, शिष्यः सुजानमल्लः तृतीयः अमरपट्टधारी जातः

अर्थ—श्रीतुलसीमुनि महाराज के काल कर जाने पर उस समय इनके वे परम विनयी, शान्त, परमजितेन्द्रिय, विशिष्टविद्वान शिष्य श्रीसुजानमलमुनिजी महाराज तृतीय अमरपट्टधारी आचार्य हुए।

(१४)

ततस्तदाचार्य इवातिशोभी, गुरुर्बभूवामरसम्प्रदाये ।
मुनिव्रजे शीर्षमणिर्यथायम्, व्यराजत ख्यातिधरे यशस्वी ॥

अन्वयः—ततः अमरसम्प्रदाये आचार्यः अतिशोभी गुरुः इव बभूव। अयं ख्यातिधरे मुनिव्रजे यशस्वी शीर्षमणिः यथा राजते, तथा व्यराजत।

अर्थ—तदनन्तर अमरसम्प्रदाय में ये आचार्य श्रीसुजानमलमुनिजी महाराज अतिशोभाधरी बृहस्पति के समान हुए। ये परमयशस्वी मुनियों के समुदाय में चमकती शिरोमणि जैसे शोभा पाती है, उसी प्रकार आपश्री शोभा पाते थे।

(१५)

जनि नगर्यां सरवाड़नाम्न्याम्, सुपत्तनस्याजयमेरुनाम्नः ।
गतोऽस्ति भण्डारिण एव नाम्नः, सियाजुजानेर्विजयादिचन्द्रात् ॥

अन्वयः—(अयं) सियाजुजानेः विजयादिचन्द्रात् भण्डारिणः नाम्नः सुपत्तनस्य अजयमेरुनाम्नः सरवाड़नाम्न्याम् नगर्यां जनि गतः अस्ति।

अर्थ—आपश्री सियाजुनाम की पत्नी वाले श्री विजयचन्द्रजी भण्डारी से, जिला अजमेर की सरवाड़ नगरी में, उत्पन्न हुए थे।

(१६)

अयं जगाम श्रमणाधिराजः, समण्डलः केवलमेव देशान् ।
विकासशून्यान् गृहविप्रकृष्टान्, विशालमालव्यभुवो मरोश्च ॥

अन्वय—अयं समण्डलः श्रमणाधिराजः केवलं मरोः विशालमालव्यभुवः विकास शून्यान् गृहविप्रकृष्टान् देशान् एव जगाम ।

अर्थ—ये मण्डल के साथ आचार्यश्री केवल मरुभूमि के और विशाल मालव्य की भूमि के अविकसित दूर-दूर घरवाले स्थानों को गए थे ।

(१७)

अतस्ततस्त्या मनुजाः समस्ताः, गतेऽपि कालेऽप्यधुना च नाम्ना ।
सुजानमल्लं मुनिमण्डलेशम्, सदैवमन्तःकरणे स्मरन्ति ॥

अन्वयः—अतः ततस्त्याः समस्ताः मनुष्याः काले गतेऽपि मुनिमण्डलेशं सुजानमल्लं सदा नाम्ना एवम् अन्तःकरणे अधुना अपि स्मरन्ति ।

अर्थ—इसलिए वहाँ के निवासी सभी मनुष्य समय बीतने पर भी आचार्य श्रीमुनिसुजानमलजी महाराज को नाम से सदा उसी प्रकार हृदय में अब भी स्मरण करते चले आ रहे हैं ।

(१८)

महोपकर्त्तारमं मुनीशम्, न केवलं जैनजनाः स्मरन्ति ।
तथा हि चान्ये सकला मनुष्याः, सुजानमल्लं तमपि स्मरन्ति ॥

अवन्यः—न केवलं जैनजनाः हि अमुं महोपकर्त्तारं मुनीशं सुजानमल्लं स्मरन्ति, अन्ये च सकलाः मनुष्याः तथा स्मरन्ति ।

अर्थ—न केवल जैनजन ही उन महोपकारी आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज को दूसरे सभी मनुष्य उसी प्रकार स्मरण करते रहे हैं ।

(१९)

अयं मुनीशोऽमरपट्टधारी, सुजानमल्लोऽपि तथैवमन्ते ।
विशेषसंस्तारपदं विभुज्य, गतः सहर्षं स्वमुनीन् विहाय ॥

अन्वयः—अयम् अमरपट्टधारी मुनीशः सुजानमल्लः अपि अन्ते तथा एवं विशेषसंस्तारपदं विभुज्य स्वमुनीन् विहाय सहर्षं गतः ।

अर्थ—ये अमरपट्टधारी आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज भी उसी प्रकार अन्त में प्रशस्त संथारा प्राप्तकर अपने मुनियों को छोड़ सहर्ष चले गए ।

(२०)

सुजानमल्ले मुनिसंघपूज्ये, दिवं प्रयातेऽमरपट्टधारी ।
बभूव तस्यैव मुनेश्च शिष्यः, चतुर्थ आचार्यवरो जितेशः ॥

अन्वयः—मुनिसङ्घपूज्ये सुजानमल्ले दिवं प्रयाते सति तस्य च मुनेः एव शिष्यः जितेशः अमरपट्टधारी चतुर्थः आचार्यवरः बभूव ।

अर्थ—आचार्य श्रीसुजानमलजी महाराज के स्वर्गारोहण होने पर उन मुनि-महाराज के ही शिष्य श्रीजीतमलजी मुनिराज अमरपट्टधारी चतुर्थ आचार्य हुए ।

(२१)

अयं विशिष्टो विविधक्रियासु, कलाधरोऽभूज्जितमल्लदेवः ।
महाचमत्कारपरासु स्रष्टा, सुलेखनासु प्रथितो मुनीशः ॥

अन्वयः—अयं विविधक्रियासु विशिष्टः कलाधरः महाचमत्कारपरासु सुलेखनासु प्रथितः स्रष्टा मुनीशः जितमल्लदेवः अभूत् ।

अर्थ—ये विविधक्रियाओं में विशिष्ट कलाधर अत्युत्कृष्ट सुन्दर लेखनाओं में यशस्वी स्रष्टा आचार्य श्री जीतमलमुनि महाराज हुए ।

(२२)

अथास्य वैशिष्ट्यमशक्नुवन्तः, जना नरेशं गमयन्ति सन्तम्।
अतो नरेशोऽपि मरोर्धरायाः, परीक्षितुं तं समुपागमत् सः ॥

अन्वयः—अथ जनाः अस्य वैशिष्ट्यम् अशक्नुवन्तः नरेशं सन्तम् गमयन्ति। अतः मरोः धरायाः सः नरेशः अपि तं परीक्षितुं समुपागमत्।

अर्थ—तदनन्तर मनुष्यों ने इनके वैशिष्ट्य को सहन न करते हुए राजा को सन्तश्री के पास पहुँचा दिया। इस प्रेरणा के कारण वह मारवाड़ की भूमि का राजा भी उनकी परीक्षा करने के लिए आया था।

(२३)

जैनानिमान् प्रहसितुं कपटोद्भवं तत् ,
राजानमित्यपि पुनर्जलविन्दुवृत्तम् ।
जीवा भवन्ति शतशो निशितेषुपृक्ते ,
विन्दौ वदन्ति मुनयः पिशुना ब्रुवन्ति ॥

अन्वयः—इमान् जैनान् प्रहसितुं पिशुनाः 'मुनयः वदन्ति, यत् निशितेषु पृक्ते विन्दौ शतशः जीवाः भवन्ति' तत्जलविन्दुवृत्तं कपटोद्भवम् इति राजानं ब्रुवन्ति।

अर्थ—इन जैनजन की हँसी उड़ाने के लिए चुगलखोर—'ये मुनिजन कहते हैं कि तीखे बाण के अग्र भाग पर लगी हुई एक बूंद में शतशः जीव होते हैं—वह जलविन्दु वृत्त कपट से उत्पन्न है'—ऐसा राजा को कहने लगे।

(२४)

उक्तं सविस्मयमिदं सहसा निशम्य ,
ज्ञातुं किमस्ति किमुवा मुनयो वदन्ति ।
इत्थं विचार्यं च पुनर्मुनिमेव गत्वा ,
पृच्छेयमेवमिति तत्स्वयमागतोऽहम् ॥

अन्वयः—राजा कथयति—यत् इदम् उक्तं सविस्मयं निशम्य किम् अस्ति ? किमु वा मुनयः वदन्ति ? पुनः च गत्वा मुनिम् एव तत् एवं पृच्छेयम् इति इत्थं विचार्य अहं ज्ञातुं सहसा स्वयम् आगतः (अस्मि) ।

अर्थ—राजा कहता है कि इस कहे गये को सुनकर कि क्या है ? क्या मुनिजन कहते हैं ? और फिर जाकर मुनिमहाराज से ही वह ऐसा पूछ लूं, ऐसा इस प्रकार सोचकर मैं जानने के लिए एक साथ स्वयं आया हूँ ।

(२५)

राज्ञस्तदोच्चरितमेवमिमं निशम्य ,
प्रश्नं मुनिः स्वयमयं वदतीति तथ्यम् ।
जीवा भवन्ति शतशः पुनरेकबिन्दौ ,
वारो भवन्तमपि सत्यमिदं ब्रवीमि ॥

अन्वयः—तदा एवं राज्ञः इमम् उच्चरितं प्रश्नं निशम्य अयं स्वयं मुनिः वदति, यत् वारः एकबिन्दौ शतशः जीवाः भवन्ति इति तथ्यम् (अस्ति) पुनः अहम् अपि इदं सत्यम् इति भवन्तं ब्रवीमि ।

अर्थ—उस समय इस प्रकार राजा के इस उक्त प्रश्न को सुनकर ये स्वयं मुनिश्री कहने लगे कि पानी की एक बूंद में सैकड़ों जीव होते हैं, यह तथ्य है । फिर मैं भी यह सत्य है, ऐसा आपको बताता हूं ।

(२६)

सत्यं तथाप्यवनिप ! स्वयमेवमेव ,
चित्रे विलिख्य करिणः परिदर्शयामि ।
तस्मादिमं भवत एव तु संशयं तम् ,
शक्तो भवेयमहमित्यपि दूरमेतुम् ॥

अन्वयः—एवं सत्यम् (अस्ति) । तथापि हे अवनिप ! स्वयम् अहम् एव (एकस्मिन्) चित्रे करिणः निलिख्य (भवन्तं) परिदर्शयामि । तस्मात् भवतः तु इमं तं संशयम् अपि अहं दूरम् एतुं शक्तः इति भवेयम् ।

अर्थ—यद्यपि इस प्रकार सत्य है, तथापि राजन् ! स्वयं मैं ही एक चित्र में हाथियों को चित्रित कर आपको दिखलाता हूँ । जिससे आपके तो इसी सन्देह को भी मैं दूर करने के लिए समर्थ हो ही सकूँगा ।

(२७)

चित्रं विलिख्य करिणां मुनिरेव विन्दौ ,
राजानमाह पुनरेवमिमे समेते ।
जीवाः स्थिता अपि तु सूक्ष्मशरीरहेतोः ,
विन्दौ स्थितानपि वयं विषयान् न कुर्मः ॥

अन्वयः—(अयं) मुनिः एव विन्दौ करिणां चित्रं विलिख्य राजानम् आह—यत् इमे समे (करिणः) (सन्ति) किन्तु सूक्ष्मशरीरहेतोः वयं (इमान् करिणः न पश्यामः), एवं पुनः जीवाः स्थिताः अपि (सन्ति), किन्तु सूक्ष्म-शरीरहेतोः विन्दौ स्थितान् जीवान् अपि वयं (चक्षुषः) विषयान् न कुर्मः अर्थात् तान् न पश्यामः ।

अर्थ—इन मुनिजी ने विन्दु में हाथियों के चित्र बनाकर राजा से कहा कि ये सब हाथी हैं, किन्तु सूक्ष्मकाय के कारण से हम इन हाथियों को नहीं देख पाते, इसी प्रकार फिर विन्दु में रहे हुए जीवों को भी हम आँख का विषय नहीं कर पाते, अर्थात् उन जीवों को देख नहीं पाते ।

(२८)

आश्चर्यमेवमपहाय धराधिपोऽयम्
वक्तुं कठोरवचनानि जनान् प्रवृत्तः ।
तत्र स्थितो मुनिरयं क्षमते जनांस्तान्,
राजानमप्यविनयं क्षमितुं प्रयुङ्क्ते ॥

अन्वयः—अयं धराधिपः एवम् आश्चर्यम् अपहाय जनान् कठोर-वचनानि वक्तुं प्रवृत्तः, तत्र अयं स्थितः मुनिः तान् जनान् क्षमते राजानम् अपि अविनयं क्षमितुं प्रयुङ्क्ते ।

अर्थ—इन जोधपुर-नरेश ने इस प्रकार अपने आश्चर्य को दूरकर मनुष्यों को फटकारना शुरू किया तो वहाँ पर इन विराजित मुनिश्री ने उन मनुष्यों को क्षमा किया और जोधपुर-नरेश को भी उनके अविनय को क्षमा कर देने के लिए अपने सामर्थ्य का प्रयोग किया ।

(२९)

सुजानमल्लस्य गुरोरपीदम्, यशो मुनीशस्य प्रसारयन्यः ।
मुनिर्विशिष्टार्जित चित्रविद्यः, जातः प्रसिद्धोऽथिमरुप्रदेशम् ॥

अन्वयः—मुनीशस्य सुजानमल्लस्य गुरोः अपि इदं यशः प्रसारयन् अयं विशिष्टार्जित चित्रविद्यः प्रसिद्धः अथिमरुप्रदेशं जातः ।

अर्थ—आचार्य श्रीसुजानमलजी गुरुदेव के भी इस यश को फैलाते हुए ये प्रमुख प्राप्त चित्र विद्यावाले श्रीजीतमलजी महाराज मरुधर देश में प्रसिद्ध हुए ।

(३०)

सुजानमल्लात् सुपितुः सुपुत्रः, सुमातरि ज्ञातसुभद्रिकायाम् ।
मरौ प्रसिद्धो जितमल्लदेवः, बभूव चित्रेश मुनीश्वरोऽयम् ॥

अन्वयः—अयं मरौ प्रसिद्धः चित्रेशमुनीश्वरः जितमल्लदेवः सुजान-मल्लात् सुपितुः ज्ञातसुभद्रिकायां सुमातरि सुपुत्रः बभूव ।

अर्थ—ये मारवाड़ में चित्र ज्ञानी आचार्य श्री जीतमलजी महाराज सुपिता श्रीसुजानमलजी साहब से जानी-मानी श्रीमती सुभद्रादेवीजी की गोद में सुपुत्र हुए ।

(३१)

न कोऽपि शक्तोऽस्ति जगद् विजेतुम्, तथापि सन्तं जयिनं वदामः ।
न हेतुरन्यो जगति प्रशस्तेः, वयं गुणाना गणनां भजामः ॥

अन्वय—कः अपि जगत् विजेतुं शक्तः न अस्ति, तथापि (वयम्) इमं सन्तं (जगतः) जयिनं वदामः । जगति प्रशस्तेः हेतुः अन्यः (कोऽपि) न अस्ति गुणात् ऋते । (अतः) वयं गुणानां गणनां भजामः ।

अर्थ—कोई भी जगत् को जीतने के लिए समर्थ नहीं हैं, तो भी हम इन मुनि महाराज को विजयी कहते हैं । इसका कारण जगत् में प्रशंसा के अतिरिक्त कोई दूसरा हेतु नहीं हैं । इससे हम गुणों की गणना करते हैं, अर्थात् जो गुणी हैं, वह जयी है, विजेता है ।

(३२)

अतो महान्तं गुणिनं जयन्तम्, गणं गुणानां गणनीयगुण्यम् ।
श्रयामहे तं जितमल्लदेवम्, जितेन्द्रियं ज्ञाननिधिं मुनीशम् ॥

अन्वयः—अतः वयं तं गुणानां गणनीयगुण्यं गणं जयन्तं जितेन्द्रिय-ज्ञाननिधिं महान्तं गुणिनं मुनीशं जितमल्लदेवं श्रयामहे ।

अर्थ—इन सब कारणों से हम उन गुणों के गणना करने योग्य गुणों से युक्त, मुनियों के ज्ञान के कोष, महान् गुणी आचार्य श्री जीतमलजी महाराज को आश्रय मानते हैं, भजते हैं ।

(३३)

दिवं गते श्रीजितमल्लदेवे, विशेषशोभाधरपण्डितेऽस्मिन् ।
ततोऽस्य शिष्यो मुनिशेखरोऽसौ, विशिष्टगीर्ज्ञानमलो बभूव ॥

अन्वयः—अस्मिन् विशेष शोभाधरपण्डिते श्रीजितमल्लदेवे दिवं गते सति ततः अस्य असौ विष्टिगीः शिष्यः ज्ञानमलः मुनिशेखरः बभूव ।

अर्थ—इन कलाधरों में कुशल श्री जीतमलजी महाराज के काल पूरा करने पर उनके पीछे आपके वे प्रभावीवक्ता शिष्य श्री ज्ञानमलजी मुनि आचार्य हुए ।

(३४)

गुणाग्रणीर्धीरमुनिप्रवीणः, सतां विशिष्टोऽपि सुवागधीरः ।
अयं गभीरोऽमरपट्टधारी, विराजतेऽद्यापि यशश्शरीरः ॥

अन्वयः—अयं सतां विशिष्टः सन् अपि सुवाक्, अधीरः सन् धीरमुनि प्रवीणः गुणाग्रणीः सन् गभीरः यशश्शरीरः सन् अमरपट्टधारी अद्य अपि विराजते ।

अर्थ—ये सन्तश्रेष्ठ शुभ वचन बोलते थे, अधीर होते हुए भी धीरमुनियों में प्रवीण थे, गुणों के प्रमुख होते हुए भी गंभीर थे, यश के शरीर वाले होकर भी अमरपट्टधारी बन आज भी विराजमान हैं ।

(३५)

अयं सुपुत्रोऽभवदग्रगण्यः, शुभैषिणोः पूतयशः सुपित्रोः ।
सुमान जोरावरमल्लनाम्नोः, सुसेतरावाँस्थ-गुलेच्छशस्त्योः ॥

अन्वयः—अयं सुसेतरावाँस्थ-गुलेच्छशस्त्योः शुभैषिणोः पूतयशः सुपित्रोः सुमानजोरावरमल्ल नाम्नोः अग्रगण्यः सुपुत्रः अभवत् ।

अर्थ—ये सुन्दर सेतरावां (मारवाड़) के गुलेच्छकुल के शुभेच्छु पवित्र कीर्ति वाले अच्छे माता-पिता शोभन मानदेवी और जोरावरमल नामवालों के अग्रगण्य सुपुत्र थे ।

(३६)

सुलक्षणायाः प्रयशास्तु गर्भे, यदास्थितः श्रीमति मानदेव्याः ।
अयं च जोरावरमल्लपित्रा, प्रमाणितः स्वप्नसुखेन मातुः ॥

अन्वयः—यदा च अयं सुलक्षणायाः मानदेव्याः श्रीमते गर्भे स्थितः, तदा मातुः स्वप्नसुखेन जोरावरमल्लपित्रा तु प्रयशाः प्रमाणितः (कृतः) ।

अर्थ—और जब आपश्री सुलक्षणा श्री मानदेवी के पवित्र गर्भ में स्थित हुए तभी माता के स्वप्न के सुख को देखकर श्री जोरावरमलजी पिता ने तो अत्यन्त यशस्वी बालक होगा, यह प्रमाणित कर दिया था ।

(३७)

विचारका मातुरिहैवमित्थम्, वदन्ति यस्मिन्समये महात्मा ।
सुगर्भमागत्य विराजतेऽसौ, सदा सुखं वर्द्धत एव शृण्मः ॥

अन्वयः—इह विचारकाः (जनाः) इत्थं वदन्ति, यस्मिन् समये असौ महान् आत्मा मातुः सुगर्भम् आगत्य विराजते, तदा सुखम् एव वर्द्धते, एवम् (वयं) शृण्मः ।

अर्थ—यहां विचारवान् मनुष्य इस प्रकार बताते हैं, कि जिस समय माता के पवित्र गर्भ में पहुँचकर वह महान् आत्मा विराजित होती है, तब सुख ही सुख बढ़ता है । ऐसा हम सुनते हैं ।

(३८)

अतो वयं न्यायमुखेन विद्मः, यदा शुभं जन्म धृतं भवेत् सः ।
अवश्यमेवं सुखमागतं स्यात्, यतः समे ते सुखभोगिनः स्युः ॥

अन्वयः—यदा सः शुभं जन्म धृतं भवेत्, तदा एवं सुखम् आगतं स्यात्, यतः ते समे सुखभोगिनः स्युः । अतः (एतत्सर्वं) वयं उक्तेन न्यायमुखेन विद्मः ।

अर्थ—जब उन्होंने शुभ जन्म धारण किया हो, तो अवश्य ऐसा आनन्द आया होगा, जिससे वे सब आनन्दित हुए हों । इसलिए यह सब हम उक्त न्याय द्वारा समझ सकते हैं ।

(३९)

प्रमीयतेऽनेन सुखेन दुःखम्, यदा पितृभ्यामिह दुःखमूढम् ।
भवेदिदं यूनि गते विरक्तिम्, कथं तदेतन् न हि तर्कयेम ॥

अन्वयः—विरक्तिं गते यूनि सति इह पितृभ्यां दुःखम् ऊढं तत् इदं दुःखं सुखेन अनेन प्रमीयते, किन्तु तत् कथं भवेत् इति वक्तुं न शक्नुमः इत्येव केवलं न हि, अपितु (वयं) न तर्कयेम ।

अर्थ—युवा पुत्र के विरक्त होने पर माता-पिता ने दुःख उठाया, वह दुःख इस सुख से समझा जा सकता है । किन्तु वह कैसा होगा, यह कहा नहीं जा सकता । यह केवल इतना ही नहीं, अपितु हम उस दुःख को अनुमान से भी नहीं जान सकते ।

(४०)

तथापि दीक्षानुमतिं ददाते, सुताय तौ यौ पितरौ विमुग्धौ ।
कथं भवेद् दार्ढ्यमहं विरक्तेः, सुतस्य तन् नानुमितिं दधामि ॥

अन्वयः—तथापि तौ पितरौ सुताय दीक्षानुमतिं ददाते, यौ पितरौ विमुग्धौ भवेताम् । तस्य सुतस्य विरक्तेः दार्ढ्यं कथं भवेत् । तत् अहं तु अनुमितिं न दधामि ।

अर्थ—तो भी वे माता-पिता दीक्षा की अनुमति दे देते हैं, जो माता-पिता पूर्ण मुग्ध हों ! उस पुत्र की विरक्ति की कैसी दृढता होगी, उसका मैं तो अनुमान भी नहीं लगा सकता ।

(४१)

क्रमेण वैशिष्ट्यमुपेत्य यामे, गुरुः पुनः पञ्चमपट्टधारी ।
यतोऽमरेन्द्रस्य मुनेः सभायाम्, स्तुतिं दधन्मृत्युमवाप्य नाकम् ॥

अन्वयः— (पुनः) अयं क्रमेण मुनेः अमरेन्द्रस्य पञ्चमपट्टधारी गुरुः श्रीज्ञानमल्लः संयमे वैशिष्ट्यम् उपेत्य सभायां स्तुतिं दधत् मृत्युम् अवाप्य नाकं गतः ।

अर्थ—फिर ये क्रम से मुनि अमरेन्द्र के पञ्चम पाट के धारक आचार्यश्री ज्ञानमलजी महाराज संयम के विषय में गौरव धारण कर भक्तों की सभा में उपदेशार्थ पाट पर विराजे हुए भक्तामरादिस्तोत्र पढ़ते हुए मृत्यु प्राप्तकर स्वर्गाधिकारी हुए ।

(४२)

गुरुः प्रयाते दिवमेष षष्ठः, प्रशस्तसंस्तारमये स्तुतान्ते ।
कृते मुनौ ज्ञानमलेऽमरस्य, स्थितोहि पट्टे मुनिपूर्णिमेशः ॥

अन्वयः—प्रशस्त संस्तारमये स्तुतान्ते कृते सति ज्ञानमले मुनौ दिवं प्रयाते अमरस्य पट्टे षष्ठः गुरुः हि एषः मुनिपूर्णिमेशः स्थितः (अभवत्) ।

अर्थ—प्रशस्त संस्तार युक्त स्तुति करते-करते अन्त हो ऐसे संस्तार के किए जाने पर श्रीज्ञानमलजी मुनि महाराज के स्वर्गारोहण के पीछे मुनिश्री अमरसिंह जी महाराज के पाट पर छठे आचार्य ये ही मुनि श्रीपूनमचन्दजी महाराज स्थित हुए ।

(४३)

अयं मुनिः पूर्णिमचन्द्रनामा बभूव देवेन्द्र इव प्रशस्तः ।
महायशाः पूर्णिमचन्द्र एवम्, विराजते साधुविहायसीनः ॥

अन्वयः—अयम् ईनः पूर्णिमचन्द्रनामा मुनिः देवेन्द्रः इव प्रशस्तः बभूव । महायशाः सन् एवं पूर्णिमचन्द्रः साधुविहायसि विराजते ।

अर्थ—ये समर्थ श्री पूनमचन्दजी नाम के मुनि इन्द्र के समान प्रशंसनीय थे । महायश वाले होने से साक्षात् पूर्णिमा के चन्द्र बन मुनियों के आकाश में सोहते थे ।

(४४)

अयं तु जालोर पदाधिवासि–, प्रसिद्धगान्धीकुलजान्महार्यात् ।
जनि गतोऽभूदुमजीपितुः सः, सुशील-फूलाँजननीशुभाङ्के ॥

अन्वयः– अयं सः जालोरपदाधिवासि प्रसिद्ध गान्धी कुलजात् महार्यात् उमजीपितुः सुशील फूलाँजननी शुभाङ्के जनि गतः अभूत् ।

अर्थ—ये ही जालोर स्थान के रहने वाले प्रसिद्ध गान्धी वंश के महाजन श्रीउमजी नाम के पिता से सुशील फूलां नाम की माता की पावन गोद में उत्पन्न हुए थे ।

(४५)

अनेक देशेषु विशेषदृष्टिम्, स्वयं समाधाय ततः प्रतस्थे ।
विहृत्य धर्मस्य विविच्य रूपम्, मुनीश इद्धेषु जनान् प्रवक्तुम् ॥

अन्वयः—ततः स्वयं विशेषदृष्टिं समाधाय धर्मस्य रूपं विविच्य (अयं) मुनीशः इद्धेषु अनेकदेशेषु विहृत्य जनान् प्रवक्तुं प्रतस्थे ।

अर्थ—तदनन्तर स्वयं विशेष दृष्टि को समाहित कर धर्म का विवेचन कर ये आचार्य श्रीपूनमचन्दजी महाराज सम्पन्न अनेक स्थानों में विहार कर श्रावकों को प्रवचन देने के लिए एक स्थान से दूर स्थान पर पहुँचे ।

(४६)

जनाः समेतं विबुधेशतुल्यम्, महान्तमाचार्यमगाध धैर्यम् ।
महोपकर्त्तारमिवादिनाथम्, नमन्ति सत्कृत्य दिवौकसस्ते ॥

अन्वयः—ते जनाः विबुधेशतुल्यं अगाधधैर्यं महान्तम् आचार्यम्, समेतं महोपकर्त्तारम् आदिनाथं दिवौकसः इव सत्कृत्य नमन्ति ।

अर्थ—वे श्रावक इन्द्र तुल्य अगाधधैर्यशाली महान् आचार्य को, आते हुए महोपकारी भगवान् आदिनाथ को देवता जैसे सत्कार कर अभिवन्दन करते हैं, वैसी ही सत्कार कर प्रणाम करते थे ।

(४७)

ततः प्रयाते दिवमेव तस्मिन्, मुनीश्वरे पूर्णिमचन्द्रदेवे ।
विशिष्टशिष्यो मुनिजेठमल्लः बभूव तत्पट्टपदाधिकारी ॥

अन्वयः—ततः तस्मिन् मुनीश्वरे पूर्णिमचन्द्र देवे दिवं प्रयाते सति तत्पट्टपदाधिकारी विशिष्टशिष्यः मुनिजेठमल्लः एव बभूव ।

अर्थ—तत्पश्चात् उन आचार्य श्री पूनमचन्दजी महाराज के स्वर्गारोहण पर उनके पाट के अधिकारी प्रमुख शिष्य श्रीजेठमलजी मुनि महाराज हुए ।

(४८)

यतोऽस्य शिष्याः परमा विशिष्टाः, गुणोत्तराः पञ्च बभूवुरत्र ।
तथापि पञ्चस्वयमेव वृद्धः, बभूव पट्टस्य ततोऽधिकर्त्ता ॥

अन्वयः—यतः अस्य परमाः विशिष्टाः गुणोत्तराः पञ्च शिष्या बभूवुः । तथापि अत्र पञ्चसु अयम् एव वृद्धः, ततः पट्टस्य अधिकर्त्ता अयमेव बभूव ।

अर्थ—क्योंकि इन श्री पूनमचन्दजी आचार्यश्री के बड़े होनहार पाँच शिष्य थे, तो भी इन पाँचों में वृद्ध श्रीजेठमलजी मुनि महाराज ही थे, इससे इनको ही पाट का अधिकारी बनाया गया ।

(४६)

गुणाग्रणीः सिद्धिपदोन्नतश्रीः, स्वतोविशिष्टोऽमरसम्प्रदाये ।
महामुनिः सोऽयमलंकृतश्रीः, विराजते भक्तगणस्य मौलौ ॥

अन्वयः—सः अयं गुणाग्रणीः, सिद्धिपदोन्नतश्रीः, अमरसम्प्रदाये स्वतः विशिष्टः, अलंकृतश्रीः, महामुनिः भक्तगणस्य मौलौ विराजते ।

अर्थ—वे ही गुणविशिष्ट सिद्धि के स्थान की शोभा बढ़ाने वाले मुनि श्रीअमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय में स्वयं प्रमुख शोभा की भी शोभावाले ये आचार्य श्रीजेठमलजी मुनिराज श्रावक समुदाय के मस्तक पर शोभित हैं ।

(५०)

कथा अनेकाः परमा विचित्राः, मुनेः प्रशस्तस्य तु जीवनस्य ।
प्रचर्चिताः सन्ति तथापि तासाम्, परा कथा मृत्युदिनस्य तस्य ॥

अन्वयः—मुनेः प्रशस्तस्य जीवनस्य तु परमाः विचित्राः अनेकाः कथाः प्रचर्चिताः सन्ति, तथापि तासां (कथानां) तस्य मृत्युदिनस्य कथा परा (विद्यते) ।

अर्थ— आत्मार्थी श्रीजेठमलजी मुनि के प्रशस्त जीवन की तो बड़ी अनोखी कथाएँ अथवा कहानियाँ काफी चर्चाओं का कारण बनी हुई है, तो भी उन कहानियों में से मृत्यु के दिन की कहानी बड़ी अनोखी है ।

(५१)

स्वघोषिते मृत्युदिने समस्ताः, जनाः समायान्ति दिदृक्षवस्ते ।
प्रतीक्षमाणा वचसो विशेषम्, निरीक्ष्य तेऽन्ते स्मयमेव जग्मुः ॥

अन्वयः—ते दिदृक्षवः समस्ताः जनाः स्वघोषिते मृत्युदिने वचसः विशेषं प्रतीक्षमाणाः (आसन्) । अन्ते ते वचसः विशेषं निरीक्ष्य स्मयम् एव जग्मुः ।

अर्थ—वे सभी दिदृक्षु मनुष्य स्वघोषित मृत्यु के दिन के विषय में बात की सचाई की प्रतीक्षा करते हुए थे, अन्त में वे बात की सचाई देखकर आश्चर्य चकित हो गए ।

(५२)

यतः स्वयं तेन दिनत्रयस्य, शुभस्य संस्तारमिमं विहर्त्तुम् ।
प्रभाषितं ज्येष्ठमलेन लब्धम्, भविष्यतः श्रेष्ठफलं यथोक्तम् ॥

अन्वय—यतः तेन ज्येष्ठमलेन शुभस्य दिनत्रयस्य इमं संस्तारं विहर्तुं स्वयं प्रभाषितम् (आसीत्)। (पुनः) तेनैव भविष्यतः यथोक्तं श्रेष्ठफलं लब्धम्।

अर्थ—क्योंकि उन आत्मार्थी श्रीजेठमलजी मुनि महाराज ने स्वयं कहा था कि मैं तीन दिन का संथारा करने के लिए हूँ। फिर जैसा भी उन्होंने कहा था, वैसा ही भविष्य का श्रेष्ठफल उन्होंने पाया।

(५३)

अतो जनास्ते धृतसाक्ष्यभावाः, परस्परं यान्ति विवक्षवोऽमी ।
अहो यथोक्तं चरितं सदास्य, न याति मिथ्यावचनं मुनीनाम् ॥

अन्वयः—अतः ते धृतसाक्ष्यभावाः जनाः, अमी परस्परं विवक्षवः यान्ति, अहो ! अस्य चरितं यथोक्तं विद्यते। यतोहि मुनीनां वचनं मिथ्या न याति।

अर्थ—इसलिए वे सब कुछ साक्ष्य के अनुभवी मनुष्य परस्पर में कहते हुए चले जा रहे हैं कि क्या ही उत्तम इन मुनिराज का चरित्र है ! कुछ कहते नहीं बनता ! क्योंकि मुनियों का कहा हुआ कभी गलत नहीं होता।

(५४)

महामुनेस्तस्य यशः प्रशस्तम्, विभाति भूमाविह भक्तिमत्सु ।
सदा जनेषु क्षणशः स्मरत्सु, समक्षमक्षणः फलमाप्नुयामः ॥

अन्वयः—तस्य महामुनेः प्रशस्तं यशः इह भूमौ क्षणशः स्मरत्सु भक्तिमत्सु विभाति। वयम् अक्षणः समक्षं फलम् सदा आप्नुयामः।

अर्थ—उन महामुनि श्री का प्रशस्त यश, इस भूमि पर क्षण भर के लिए स्मरण करते हुए भक्तिमान् पुरुषों में देदीप्यमान है। हम आँख के सामने परिणाम सदा प्राप्त कर सकते हैं।

(५५)

इमं मुनिं वर्णयितुं पुनर्यते, न चेतसस्तोषमहं यतो लभे ।
गुणा अनेके पुनरेकलो मुनेः, वदेयमित्येवमृते मुनेः कथम् ॥

अन्वयः—यतः अहं चेतसः तोषं न लभे, (अतः) पुनः इमं मुनिं वर्णयितुं यते । मुनेः अनेके गुणाः सन्तिः पुनः (अहम्) एकलः अस्मि, पुनरपि अहं वर्णयितुमिच्छामि—अहं वदेयम् इति एवम् ऋतेमुनेः अहं कथं वदेयम्-इति भवन्तः स्वतः तर्कयन्तु इति व्यङ्ग्योऽर्थः ।

अर्थ—इन मुनिराज का गुण-वर्णन करते हुए हृदय को सन्तोष नही होता, क्योंकि गुण तो अनेक हैं, और मैं अकेला हूँ । अतः उन मुनिराज की कृपा के बिना मैं कैसे यह कार्य कर सकता हूँ ।

(५६)

अतोऽस्य शेषं चरितस्य मे मुनेः, पिपूर्मि सर्गे समयेन सङ्गतम् ।
अधीत्य जानन्तु विशेषतां मुनेः, अहं मुनेर्भृङ्ग इवाङ्घ्रिपद्मयोः ॥

अन्वयः—अतः अस्य मुनेः चरितस्य शेषं समयेन सर्गे सङ्गतं पिपूर्मि । भक्ताः सङ्गतं शेषम् अधीत्य मुनेः विशेषतां जानन्तु । अहं तु मुनेः अङ्घ्रि-पद्मयोः भृङ्गः इव (अस्मि) । किमहं वदेयमधिकम् ।

अर्थ—इसलिए इन मुनिमहाराज के वर्णन के शेष को समय से सर्ग में सङ्गत जिस प्रकार हो, वैसा कर पूरा कर रहा हूँ । श्रावकजन सङ्गत शेष को समझकर मुनिमहाराज की विशेषता को पहिचानने का प्रयत्न करें । मैं तो मुनिराज के चरण कमलों का भ्रमर हूँ और अधिक क्या बताऊँ !

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
एकादशः सर्गः

❀

द्वादशः सर्गः

(१)

नमो नमस्ते प्रभवे मुनीनाम्, चमत्कृतेर्जेठमलाय कर्त्रे ।
वृतव्रताय श्रितसंयमाय, प्रशस्तगुप्तेः समितेश्च पत्ये ॥

अन्वयः—ते मुनीनां प्रभवे, श्रितसंयमाय, वृतव्रताय, प्रशस्तगुप्तेः समितेः च पत्ये, चमत्कृतेः कर्त्रे जेठमलाय नमः नमः (अस्तु)।

अर्थ—उन मुनियों के प्रभु, संयमी, व्रती, प्रशस्त गुप्ति और समिति के धारक और चमत्कृति के कर्त्ता श्रीजेठमलजी मुनिराज के लिए बार-बार प्रणाम हो।

(२)

अयं विशिष्टो मुनिषु क्रियासु, प्रवीण एव प्रथितोऽद्भुतेऽपि ।
विधौ धृतश्रीरमरस्य संघे, प्रतूयतेऽसौ मुनिभिः समस्तैः ॥

अन्वयः—अयं (श्रीज्येष्ठमल्लो मुनिः) मुनिषु विशिष्टः, क्रियासु प्रवीणः, अद्भुतेऽपि विधौ प्रथितः, असौ धृतश्रीः समस्तैः मुनिभिः अमरस्य सङ्घे प्रस्तूयते।

अर्थ—ये श्रीज्येष्ठमल्लजी मुनिराज, जो अमर सम्प्रदाय के संघ के नेता थे, मुनियों में असाधारण, क्रियाओं में प्रवीण, अद्भुत कृति के विषय में विख्यात और श्रीधर, वे समस्त मुनिमहाराजों के द्वारा श्रीअमरसिंहमुनि महाराज के संघ में प्रार्थित हैं। अर्थात सभी मुनिजन उनकी स्तुति करते हैं और उनको आदर्श मुनि के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(३)

अथ प्रभाते मुनिषु प्रभुं तम्, नमन्ति भक्ताः परमप्रसन्नाः ।
समाप्नुवन्ति प्रभुतां प्रभूताम्, न कोऽपि नैराश्यफलं दधाति ॥

अन्वयः—अथ प्रभाते परमप्रसन्नाः भक्ताः तं मुनिषु प्रभुं नमन्ति। ते भक्ताः प्रभूतां प्रभुतां समाप्नुवन्ति, कः अपि (च) नैराश्यफलं न दधाति।

अर्थ—सर्वप्रथम प्रभात में उन आत्मार्थी श्री को परमप्रसन्न भक्त प्रणाम करते हैं, और वे ही प्रसाद प्राप्त करने पर अत्याकर्षक प्रभुत्व को प्राप्त करते हैं अथवा उसकी समाप्ति करते हैं। देखा गया है कि उनका कोई भी भक्त आज तक निराश नहीं हुआ।

(४)

अहन्तु पश्यामि मरोर्धरायाः, सुराजवंश्या अपि राजपुत्राः ।
गुरुं स्वकीयं मुनिमेव मत्त्वा, विशेषभक्त्या परमादरन्ति ॥

अन्वयः—अहं तु पश्यामि यत् मरोः धरायाः सुराजवंश्याः राजपुत्राः अपि (एनं) मुनिं स्वकीयं गुरुं मत्त्वा विशेषभक्त्या परम् आदरन्ति ।

अर्थ—मैं देखता हूँ कि मारवाड़ की भूमि के अच्छे राजघरानों के राजपूत सरदार भी इन मुनि महाराज को अपना गुरु मानकर विशेष भक्ति से (आपश्री का) बड़ा आदर करते थे ।

(५)

कियन्महत्त्वं ननु तस्य नाम्नः, जपेऽस्ति तावद् यदि दृश्यतां तत् ।
न केवलं प्रत्यय एव वाचः, जपे फलप्रत्यय एव हेतुः ॥

अन्वयः—ननु तस्य नाम्नः, जपे कियत् महत्त्वम् अस्ति ! तावत् यदि (तत् न दृश्यते) (तर्हि) तत् दृश्यताम् । केवलं वाचः प्रत्ययः एव न (अस्ति)। जपे सति फलप्रत्ययः हेतुः (अस्ति) ।

अर्थ—आत्मार्थी श्रीजेष्ठमल्लजी अथवा श्रीजेठमलजी मुनि महाराज के नाम के जप में कितना क्या महत्त्व है, ऐसी शङ्का हो कि वह नहीं देखा जाता, तो फिर देखिए, केवल कहने का विश्वास नहीं है, तो नाम जप कीजिए—जप करने पर फल का विश्वास ही हेतु है, अर्थात् फल अवश्य प्राप्त होगा ।

(६)

अतः शुभां तस्य मुनेः स्तुतिं ताम्, करोम्यहं भक्तजनैः सहैभिः ।
शिवं भवेद् येन मनीषितं तत्, यतो गुरुर्देवदयालुरेषः ॥

अन्वयः—यतः एषः गुरुः देवदयालुः (अस्ति) । अतः अहं तस्य मुनेः तां शुभां स्तुतिम् एभिः भक्तजनैः सह करोमि, येन तत् मनीषितं शिवं भवेत् ।

अर्थ—क्योंकि ये गुरु महाराज देवों के समान दयालु हैं । इससे मैं उन मुनिराज की उस मङ्गलमय स्तुति को इन भक्त पुरुषों के साथ करता हूँ, जिससे कि वह मनचीता फल प्राप्त हो ।

(७)

भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् ।
वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः–हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचन-सिद्ध-गुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—अजी भक्तजी ! आप कलिसमय के वीर अर्थात् मुनिजन को अतिक्रमण न करते हुए वचनसिद्ध गुरुदेवों में गम्भीर मुनिवर श्रीजेठमलजी महाराज को भजिए ।

(८)

ज्येष्ठमल्ल गुरुवरमतिकूपम् । सिद्धं भवति कठिनतररूपम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—अतिकूपं कार्यं पुनः कठिनतररूपम् अपि भवेत्, तत् सिद्धं भवति अतः हे भक्त ! भवान् ज्येष्ठमल्लगुरुवरम् अतिकलिवीरं गुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—कुए की गहराई को मात करने वाला कार्य फिर कठिन से कठिन रूप का क्यों न हो ! वह सिद्ध हो जाता है । अतः अजी भक्तजी ! आप श्री जेठमलजी गुरुश्रेष्ठ जो कलिसमय के वीर वचनसिद्ध हुए हैं, उनको भजिये ।

(९)

कार्यं किमपि न दुष्करमेवम् । स्मरति सन्ततं यो गुरुदेवम् ।
भजतु निरन्तमति कलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः–यः सन्ततं गुरुदेवं स्मरति, (तस्य कृते) कार्यं किम् अपि एवं न अस्ति, यत् दुष्करं भवेत् ! अतः हे भक्तः ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेव गभीरं भजतु ।

अर्थ–जो निरन्तर गुरुदेव का स्मरण करता है, उसके लिए कार्य कोई भी ऐसा नहीं है, जो न हो सके अथवा कठिन हो ! इसलिए अजी भक्तजी ! आप कलि समय के वीर गुरुदेवों में गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

---

० चतुष्पदी—अथवा चौपाई इति ज्ञेया ।

(१०)

नाम्नः सत्यमेवमुपगीतम् । क्षयति कष्टमतिशयि प्रतीतम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यस्य नाम्नः सत्यम् एवम् उपगीतम् (अस्ति) । यः अतिशयि प्रतीतं कष्टं क्षयति । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—जिनके नाम की सचाई इस प्रकार बन गई है कि बड़े से बड़ा समझे जाने वाले कष्ट को नष्ट कर देता है । अतः ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेवों में गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिराज को भजिए ।

(११)

जपति नाम यो गुणशृङ्गारम् । श्रयति सन्ततं सुखभण्डारम् ।
भजतु निरन्तरमति कलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेव गभीरम् ॥

अन्वयः—यः तस्य नाम जपति, सः सन्ततं सुखभण्डारं श्रयति । अतः हे भक्त ! भवान् निरन्तरम् अति कलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं गुणशृङ्गारं श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—जो उनके नाम को जपता है, वह सदा आनन्द ही आनन्द भोगता है । अतः ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेवों में गम्भीर गुणों के शृङ्गार श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

(१२)

कुरुते राजमान्यजनसूच्यम् । नित्यं यः श्रयते मुनिपूज्यम् ।
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यः (भक्तः) नित्यं मुनिपूज्यं श्रयते, तं भक्तं राजमान्य-जन सूच्यं कुरुते । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरं मुनिपूज्यं श्रीज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—जो भक्त नित्य मुनियों से पूज्य गुरुदेव का आश्रय लेता है, उसको गुरुदेव राजमान्य पुरुषों का अभिवन्दनीय बना देते हैं । अतः ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनि महाराज को भजिए ।

(१३)

ज्येष्ठमल्लगुरुदेवं श्रयते । भक्त जनोविजनोऽपि विजयते ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेव गभीरम् ॥

अन्वयः—यः ज्येष्ठमल्लगुरु वं श्रयते, सः विजनः अपि भक्तजनः विजयते । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—जो श्रीजेठमलजी गुरुदेव को आश्रय समझता है, वह एकाकी ही भक्त पुरुष विजय प्राप्त करता है । इसलिए ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचन-सिद्ध गुरुदेव श्री जेठमलजी मुनि महाराज को भजिये ।

(१४)

महिमानं लभते रमणीयम् । श्रियाः शरण्यं गुणभजनीयम् ॥
भजतु निरन्तर मतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यः भक्तः गुणभजनीयं शरण्यं भजते, सः रमणीयं श्रियाः महिमानं लभते । अतः हे भक्त ! अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—जो भक्त गुणों से भजन करने योग्य शरण्य मानता है, वह अति-रमणीय लक्ष्मी के गौरव को प्राप्त करता है । अतः ओ भक्तवर ! आप कलिसमय के वीर वचनसिद्ध गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिराज को भजिए ।

(१५)

रोगान् क्षणशो नाशयितारम् । प्रेतभूतबाधाः दमितारम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यः भक्तानां रोगान् नाशयति, प्रेतभूतबाधाः च दमति, तं रोगान् क्षणशः नाशयितारम्, प्रेतभूतबाधाः (च) दमितारम् निरन्तरम् अति-कलिवीरम् वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरं हे भक्त ! भवान् भजतु ।

अर्थ—जो भक्तों के रोगों को क्षणमात्र में नष्ट कर देता है और उनकी प्रेत-भूत की बाधाओं को दबा देता है, ऐसे उस रोगों को क्षण में नष्ट करने वाले और प्रेतभूत की बाधा को दबाने वाले अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्री जेठमलजी मुनिराज को, ए भक्तवर ! आप भजिए ।

(१६)

ज्येष्ठमल्ल-गुरुदेवं भजताम् । विजने विपिने मङ्गलमवताम् ।
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्ध गुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—भक्तः ज्येष्ठमल्लगुरुदेवं भजताम्, विजने विपने मङ्गलम् अवताम् । हे भक्त ! भवान् निरन्तरम् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेव गभीरम् श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—भक्त श्रीजेठमलजी गुरुदेव का भजन करें और सूने वन में मङ्गल का लाभ उठाएँ । इसलिए हे भक्त ! आप सदा अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्री मुनिराज को भजिए ।

(१७)

जन्मजन्मनां पापसमूहम् । क्षिपति जनस्य प्रतिदिनमूहम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—(तस्य नामजपः जनस्य जन्मजन्मनां पापसमूहम् प्रतिदिनं क्षिपति, इति वयम् ऊहं कुर्मः । अत हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचन-सिद्धगुरुदेवगभीरं श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—उनका नाम जप मनुष्य के जन्म-जन्म के पापसमूह को प्रतिदिन हटाता है, यह हम तर्क करते हैं । इसलिए ओ भक्तवर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेवगभीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज को भजिए ।

(१८)

नाममात्रमत्यद्भुतफलदम् । जपतु निरन्तरमतः शर्मदम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—तस्य मुनेः नाममात्रम् अत्यद्भुतफलदम् (अस्ति) । अतः तस्य शर्मदं नाम भवान् भक्तः जपतु । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—उन मुनिश्री का केवल नाम ही अद्भुतफल देने वाला है । इसलिए उनके कल्याणकारक नाम को आप जपिए । अतः हे भक्त ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमान् मुनिराज को भजिए ।

(१९)

प्रातर्नित्यं नाम गृहीतम् । नवनिधितुल्यं फलं प्रभूतम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—नित्यं प्रातः गृहीतं तस्य नाम नवनिधितुल्यं प्रभूतं फलं ददाति । अतः हे भक्त ! अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीर श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिमहाराजं भवान् भजतु ।

अर्थ—नित्य प्रातः लिया हुआ उनका नाम नवनिधि के समान बहुत फल देता है । अतः ओ भक्तवर ! अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेवगम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज का भजन कीजिए ।

(२०)

श्रयति न चित्रं देवसभायाः । पारं याति न गुरोः कृपायाः ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः कोऽपि देवसभायाः चित्रं न श्रयति । एवमेव गुरोः कृपायाः अपि पारं न याति । अतः हे भक्त ! अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं भजतु ।

अर्थ—कोई भी देवों की सभा का आश्चर्य नहीं मानता, क्योंकि वे चाहें जैसा कर डालते हैं । इसी प्रकार गुरुदेव की कृपा का कोई पार नहीं पा सकता । इसलिए हे भक्तवर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा कीजिए ।

(२१)

मुरलिर्ध्वनति शमो दिनरात्रम् । ज्येष्ठगुरोर्यदि करुणापात्रम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—यदि कोऽपि भक्तः ज्येष्ठगुरोः करुणापात्रं विद्यते, तर्हि तस्य गृहे दिनरात्रं शमः मुरलिः ध्वनति । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—यदि कोई भक्त श्रीजेठमलजी गुरुदेव का कृपापात्र बन जाता है, तो उसके घर पर रात दिन सुख की मुरली झनकार देने लगती है । इसलिए ए भक्तवर ! आप अतिकलिवीर वचनसिद्धगुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा कीजिए ।

(२२)

ताराचन्द्रगुरोः करुणायाः । पुष्कर एकः शिष्यसभायाः ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः– ताराचन्द्रगुरोः करुणायाः शिष्यसभायाः अहमेकः पुष्करः अस्मि । अतः हे भक्त ! भवान् अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं श्री मन्तं मुनिराजं ज्येष्ठमल्लं महाराजं निरन्तरं भजतु ।

अर्थ– गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज की कृपा से उत्पन्न शिष्यों के मण्डल का एक शिष्य पुष्कर हूँ, जो गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज का भक्त हूँ । अतः ओ भक्तवर ! आप और मैं अतिकलिवीर वचनसिद्ध गुरुदेव गम्भीर श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की सेवा करें ।

(२३)

लब्ध्वा तस्य कृपासम्भारम् । तरिं तारयन्नेमि सुपारम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम् । वचनसिद्धगुरुदेवगभीरम् ॥

अन्वयः—तस्य कृपासम्भारं लब्ध्वा अहं तरिं तारयन् सुपारम् एमि । अतः हे भक्त ! भवानपि अतिकलिवीरं वचनसिद्धगुरुदेवगभीरं श्रीमन्तं ज्येष्ठमल्लं मुनिराजं भजतु ।

अर्थ—गुरुदेव श्रीजेठमलजी मुनिमहाराज की कृपा के सम्भार को प्राप्त कर मैं जीवन नौका को तैराता हुआ ही पार पहुँच रहा हूँ ।

(२४)

ओमिति पूर्वं यदि शुभमन्त्रम् । ज्येष्ठं गुरुं जपति सहतन्त्रम् ॥
जपनं सफलं भवति जनानाम् । सुफलं कथनं साधुजनानाम् ॥

अन्वयः—यदि (यः भक्त.) ओम् इतिपूर्वं (कृत्वा) सहतन्त्रं शुभमन्त्रं गुरुं ज्येष्ठं ज्येष्ठमल्लं जपति, तदा जनानां जपनं सफलं भवति—इति साधु-जनानां कथनम् (अस्ति) । अतः सुफलं भवेत् ।

अर्थ—यदि जो भक्त ओम् पहले लगाकर तन्त्र के साथ शुभमन्त्र 'ओं ज्येष्ठं गुरुं नमामि' को जपता है तो भक्तजन का जाप सफल होता है—ऐसा साधुसन्तों का कथन है ।

(२५)

दिवं गते ज्येष्ठगुरौ शुभेऽस्मिन्, महामुनौ श्रीस्थविरप्रशस्तिः ।
महातपास्तारकचन्द्रकोऽसौ, मुनिर्बभूवास्य पदस्य योग्यः ॥

अन्वयः—अस्मिन् शुभे महामुनौ ज्येष्ठगुरौ दिवं गते सति अस्य पदस्य योग्यः श्रीस्थविरप्रशस्तिः महातपाः असौ तारकचन्द्रकः अर्थात् श्रीताराचन्द्रः मुनिः बभूव ।

अर्थ—इन कल्याणकारी आत्मार्थी श्रीजेठमलजी गुरुदेव के स्वर्गारोहण पर आप श्री के स्थान के योग्य महास्थविर परमतपस्वी वे ताराचन्द्र मुनिमहाराज हुए।

(२६)

सतीर्थ्य एवायमथातिसेवी, गुणाग्रणीर्धीरवरस्तपस्वी ।
बभूव शक्तोऽमरपट्टधारी, तदाऽष्टमस्तारकचन्द्र एषः ॥

अन्वयः—अथ अयं सतीर्थ्यः, गुणाग्रणीः, धीरवरः, अतिसेवी, तपस्वी, शक्तः सन् एषः ताराचन्द्रः मुनिः एव अष्टमः अमरपट्टधारी बभूव ।

अर्थ—क्योंकि ये सतीर्थ्य अर्थात् गुरुभाई, गुणविशिष्ट, महाधीर, अतिसेवावृत्तिपरायण तपस्वी एवं समर्थ होकर मुनिश्रीताराचन्द्रजी महाराज ही आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज के आठवें पाट के अधिकारी हुए ।

(२७)

प्रसिद्धगुन्देचकुलप्रसूतेः, महाजनात् श्रीशिवलालनाम्नः ।
अयं हि लेभे जनिमेवमङ्के, सुमातृकाज्ञानकुमारिकायाः ॥

अन्वयः—अयं हि प्रसिद्धगुन्देचकुलप्रसूतेः महाजनात् श्रीशिवलालनाम्नः सुमातृकाज्ञानकुमारिकायाः अङ्के एवं जनिं लेभे ।

अर्थ—आपश्री ने प्रसिद्ध गुन्देचा कुल में उत्पन्न हुए महाजन श्रीशिवलालजी से पवित्र माता ज्ञानकुमारी की गोदी में जन्म प्राप्त किया था ।

(२८)

महाजनोऽयं शिवलालनामा, बभूव बम्बोरपुरोऽधिवासी ।
प्रसिद्धमेवाड़धराधिपस्य, प्रतापसिंहस्य तदास्य भूमेः ॥

अन्वयः—अयं श्रीशिवलालनामा महाजनः अस्य प्रसिद्धमेवाडधराधिपस्य प्रतापसिंहस्य भूमेः तदा बम्बोरपुरः अधिवासी बभूव ।

अर्थ—ये शिवलालजी गुन्देचा ओसवाल महाजन प्रख्यात मेवाड़भूमि के महाराज प्रतापसिंह की भूमि की उस बम्बोरा नगरी के अधिवासी थे ।

(२९)

महामुनेरस्य सुशासनेवा, सुशिक्षणे द्वौ परमौ सुशिष्यौ ।
बभूवतुः पुष्करहीरकौतौ, सुविप्रसु क्षत्रियजातिसूतौ ॥

अन्वयः—अस्य महामुनेः सुशासने वा सुशिक्षणे द्वौ परमौ सुशिष्यौ यौ ब्राह्मणक्षत्रियजातिसूतौ तौ पुष्करहीरकौ बभूवतुः ।

अर्थ—इन महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी महाराज के सुशासन में अथवा सुशिक्षण में तो दो बड़े शिष्य जो ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति में उत्पन्न वे पुष्करमुनि और हीरामुनि हुए ।

(३०)

परन्तु शिष्यास्त्रय एवमासन्, मुनेस्तु ताराशशिनो गुरोर्मे ।
क्रमेण नामानि वदामि चैवम्, सुपुष्करो हीरक एव भैरुः ॥

अन्वयः—परन्तु मे ताराशशिनः मुनेः गुरोः एवं तु त्रयः शिष्याः आसन् । अहं क्रमेण (त्रयाणां शिष्याणां) नामानि एवं वदामि—सुपुष्करः, हीरकः भैरुश्च (इति) ।

अर्थ—परन्तु मेरे श्रीताराचन्द्र मुनिजी गुरुदेव के वास्तव में तो तीन शिष्य थे । मैं क्रम से तीनों शिष्यों के नाम ऐसे बताता हूँ कि पुष्कर मुनि, हीरामुनि और भैरुँमुनि ।

(३१)

अयं मुनिर्भैरवशुद्धनामा, महातपस्वी गुरुदेव भक्तः ।
विभुज्य दीर्घायुरतीव सोऽन्ते, दिवं प्रयातः सहसाक्षणेन ॥

अन्वयः—अयं भैरवशुद्धनामा महातपस्वी गुरुदेवभक्तः च (आसीत्) अन्ते सः अतीव दीर्घायुः विभुज्य क्षणेन सहसा दिवं प्रयातः ।

अर्थ—ये भैरव शुद्ध नामवाले मुनिजी बड़े तपस्वी और गुरुदेवश्री के भक्त थे । अन्त में वे दीर्घायु को भोगकर कुछ ही क्षणों के साथ सहसा स्वर्गवासी हुए ।

(३२)

अयं कनीयान् मुनिरेव चासीत्, गुरोः प्रियः शिष्यगणे तपस्वी ।
दिवं प्रयान्तं प्रसमीक्ष्य सन्तम्, मनस्विनोऽन्ये मुनयो विषेदुः ॥

अन्वयः—अयं मुनिः शिष्यगणे कनीयान् एव किन्तु गुरोः तपस्वी सन् प्रियः आसीत् । सन्तं दिवं प्रयान्तं प्रसमीक्ष्य अन्ये मनस्विनः मुनयः विषेदुः ।

अर्थ—ये मुनि शिष्यों के समुदाय में सबसे छोटे थे, किन्तु गुरुदेवश्री को तपस्वी होने के कारण प्रिय थे । उनको काल करते हुए देखकर दूसरे मुनिजन भावुकतावश दुःखी हुए ।

(३३)

यतो हि संस्तारपथा प्रयान्तम्, मुनिं न सन्तः परिदेवयन्ति ।
निरीक्ष्य सन्तं सहसा प्रयान्तम्, गुरोः प्रियायास्ति विषाद-हेतुः ॥

अन्वयः—यतो हि सन्तः संस्तारपथा प्रयान्तं मुनिं न परिदेवयन्ति । (किन्तु परिदेवनस्य कारणमन्यत्)—स हि गुरोः प्रियः आसीत्—अतः सहसा प्रयान्तं मुनिं निरीक्ष्य गुरोः प्रियाय विषाद-हेतुः अस्ति ।

अर्थ—क्योंकि मुनिजन संस्तारमार्ग से स्वर्गारोहण करने वाले मुनि के लिए कोई परिदेवन नहीं करते । किन्तु परिदेवन का कारण कोई और था—वे मुनि गुरुदेव के लिए प्रिय थे । अतः यह विषाद का कारण था ।

(३४)

अयं मदीयः परमः सतीर्थ्यः, मुनिस्तपस्वी समधीरवृत्तिः ।
सुमध्यमो हीरक एव सत्सु, ततो गुरुस्तं मुनिहीरमाह ॥

अन्वयः—अयं मदीयः परमः सतीर्थ्यः, सत्सु समधीरवृत्तिः तपस्वी सुमध्यमः हीरामुनिः एव विद्यते । (अतएव) ततः तं गुरुः मुनिहीरम् आह ।

अर्थ—ये मेरे बड़े सतीर्थ्य हैं और मुनियों में समधीरवृत्ति, तपस्वी और मेरे गुरुदेवश्री के तीन शिष्यों में से मध्यम हैं । अतएव इन कारणों से गुरुदेव इनको मुनिहीर अर्थात् मुनियों में हीरा कहते थे ।

(३५)

गुरुस्तु हीरामुनिमेवमेवम्, मुनिं मदीयं गुरुबन्धुमेनम् ।
समाह्वयन्नेवमुवाच नाम्ना, ततोऽहमेवं वचसा ब्रवीमि ॥

अन्वयः—एवं गुरुः तु हीरामुनिम् एवं मुनिहीरम् एवम् उवाच, ततः अहम् एनं मदीयं गुरुबन्धुं मुनिहीरं समाह्वयन् हीरामुनिम् एवं वचसा ब्रवीमि ।

अर्थ—इस प्रकार गुरुदेवश्री तो हीरामुनिजी को मुनिहीरा इस प्रकार कहते ही पुकारा करते थे, किन्तु मैं भी इन अपने गुरुबन्धु को हीरामुनि को मुनिहीरा पुकारते हुए ही इस प्रकार वाणी से व्यक्त करता हूँ ।

(३६)

दिवं प्रयाते मम देवतुल्ये, गुरौ मुनौ तारकचन्द्रदेवे ।
अहं वरिष्ठो गुरुशिष्यसंघे, ततोऽभवं शिष्यजनेषु पूज्यः ॥

अन्वयः—मम देवतुल्ये गुरौ तारकचन्द्रदेवे मुनौ दिवं प्रयाते ततः गुरुशिष्यसंघे वरिष्ठः अहं शिष्यजनेषु पूज्यः अभवम् ।

अर्थ—मेरे देवतुल्य गुरु महाराज श्रीताराचन्द्र मुनिराज के स्वर्गारोहण पर तदनन्तर गुरुदेव के शिष्यों के समुदाय में वरिष्ठ होने से मैं ही शिष्यजन का आदरणीय हुआ ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्याय पदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये
द्वादशः सर्गः

❀

त्रयोदश; सर्गः

(१)

महान्तमर्हन्तमिमं जितेन्द्रियम्, तपस्विनं केवलिनं सुशासनम् ।
प्रतिक्षणं वीरमहिंसकं विभुम्, नमाम्यहं सन्मतिवर्द्धमानम् ॥

अन्वयः—अहम् इमं महान्तं वीरम् अर्हन्तं जितेन्द्रियं तपस्विनंविभुम् अहिंसकं केवलिनं सन्मति-वर्द्धमानकं प्रतिक्षणं नमामि ।

अर्थ—मैं इन महान् वीर अर्हन् जितेन्द्रिय तपस्वी व्यापक अहिंसक केवली श्री सन्मति वर्द्धमान स्वामी को प्रतिक्षण नमन करता हूँ ।

(२)

इयंतु रीतिर्जिनशासनेऽस्मिन्, क्षमो भवेद्यः कुशलः क्रियासु ।
सुदीक्षितश्चापि गुरोः प्रियोऽसौ, महामुनिर्गण्यत एव सङ्घे ॥

अन्वयः—अस्मिन् जिनशासने तु इयं रीतिः (अस्ति) य गुरोः प्रियः, क्रियासु कुशलः, सुदीक्षितः, क्षमश्च अपि भवेत्, असौ एव संघे महामुनिः अथवा आचार्यः वा पूज्यः गण्यते ।

अर्थ—इस जिनशासन में तो यह रीति है, कि जो अपने गुरुदेव का प्रिय, क्रियाओं में निपुण, सुदीक्षित और समर्थ भी हो, वह संघ के विषय में आचार्य गिना जाता है ।

(३)

क्रमेण सम्प्राप्तविशेषदृष्टिः, गुरोः प्रियः शिष्यगणे विशिष्टः ।
अतोऽभवं संघविधायकोऽहम्, स्थितोऽस्मि पट्टे नवमोऽमरस्य ॥

अन्वयः—अतः गुरोः प्रियः शिष्यगणे सम्प्राप्तविशेषदृष्टिः विशिष्ट सन् अहं संघ-विधायकः अभवम् । क्रमेण अहम् नवमः (अधिकर्त्ता) अमरस्य पट्टे स्थितः अस्मि ।

अर्थ—उक्त रीति के आधार पर, गुरुदेवश्री का प्रिय अधिकृत विषयों का ज्ञाता विशेष शिष्ट होकर संघ का विधायक बना । एवं क्रम से मैं नवम अधिकर्त्ता के रूप में आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज के पाट पर स्थित हूँ ।

(४)

ममास्य संघस्य समेऽपि सन्तः, इमे महान्तो मुनिवृत्तिनिष्ठाः ।
निरन्तरं संयमिनोऽनुरक्ताः, वशंवदा ज्ञानरताश्च सन्ति ॥

अन्वयः—अस्य मम सङ्घस्य इमे समे सन्तः महान्तः संयमिनः निरन्तरम् अनुरक्ताः अपि मुनिवृत्तिनिष्ठाः, वशंवदाः अपि ज्ञानरताः सन्ति ।

अर्थ—और इस मेरे संघ के ये सभी सन्त बड़े संयमी हैं। निरन्तर अनुरक्त रहते हुए भी मुनिवृत्ति में निष्ठा रखते हैं, आज्ञाकारी रहते हुए भी ज्ञान में लगे रहते हैं।

(५)

समे विनीता मुनयो ममैते, सदा श्रुतज्ञानविधौ निमग्नाः ।
उपासतेऽमी जिनधर्मतत्त्वम्, भवन्तु शक्ता अपि भक्तिमन्तः ॥

अन्वयः—मम एते समे मुनयः विनीताः सन्ति। अमी सदा श्रुतज्ञानविधौ निमग्नाः जिनधर्मतत्त्वम् उपासते। (येन) भक्तिमन्तः अपि (जैनबन्धवः) (जिनधर्मतत्त्वे) शक्ताः भवन्तु ।

अर्थ—मेरे ये सभी सन्त विशेष नम्र हैं। ये सदा श्रुत के ज्ञान की विधि के विषय में तल्लीन रहकर जिनधर्म के तत्त्वों की उपासना करते रहते हैं। (जिससे कि) भक्तिमान रहते हुए जो जैनबन्धु जिनधर्म के तत्त्व को नहीं जानते, वे जिनधर्म के तत्त्व के विषय में समर्थ हों।

(६)

क्रियारतास्ते विधिमेत्य सेच्छम्, विशेषतः पुस्तकलेखनेऽपि ।
प्रचारपत्रेष्वपि जैनधर्मम्, निबन्धदानेन विवर्द्धयन्ते ॥

अन्वयः—क्रियारताः अपि ते सेच्छं विधिम् एत्य पुस्तक विशेषतः पुस्तक लेखने (संलग्नाः सन्ति) अन्ये च ते मुनयः प्रचारपत्रेषु अपि निबन्धदानेन जैनधर्मं विवर्द्धयन्ते ।

अर्थ—मुनिक्रियाओं में रत रहते हुए भी वे मुनिजन इच्छा से जैनधर्म की विशेष पुस्तकों के लेखन में लगे रहते हैं और दूसरे मुनिजन जैनधर्म के प्रचार के समाचार पत्रों में भी निबन्ध देकर जैनधर्म को वृद्धिगत करते रहते हैं।

(७)

तथाप्यहं मे मनसि स्मरंस्तु, प्रसिद्धसिद्धेः सकलान् गुरोस्तान् ।
गुणान् यथानुक्रममेव वक्तुम्, लभे न सन्तोषममुं विनाऽहम् ॥

अन्वयः—प्रसिद्धसिद्धेः गुरोः तान् सकलान् गुणान् अहं मे मनसि स्मरन् अपि तु सन्तोषं तथापि न लभे। अतः अमुं सन्तोषं विना अहं स्थातुं न शक्नोमि, अतः यथानुक्रमम् तान् गुणान् वक्तुं स्थित. अस्मि इतिशेषः।

अर्थ—प्रसिद्ध है सिद्धि जिनकी ऐसे गुरुदेव के उन सभी गुणों को मैं अपने मन में याद करता हुआ भी सन्तोष को फिर भी प्राप्त नहीं कर पाता। इसलिए उस सन्तोष के बिना मैं रुकने के लिए उद्यत नहीं हूँ। इससे अनुक्रम के साथ उन गुणों को कहने के लिए उठ बैठा हूँ।

(८)

अतोऽहमेवं विवृणोमि सेवाम्, गुरोर्मदीयस्य तपस्विनोऽस्य ।
परोपकाराय धृतव्रतस्य, शुभस्य ताराशशिनो मुनीनाम् ॥

अन्वयः—अतः अहं मुनीनाम् अस्य परोपकाराय धृतव्रतस्य तपस्विनः शुभस्य मदीयस्य गुरोः ताराचन्द्रस्य एवम् अहं सेवां विवृणामि।

अर्थ—इसलिए मैं मुनियों के बीचमें इन पर-उपकार के लिए व्रत धारण करने वाले तपस्वी कल्याणकारी मेरे गुरुदेव श्रीताराचन्द्र जी महाराज की सेवा-शुश्रूषा को विवृत करता हूँ।

(९)

यदा शिवाणागढजन्मभूमेः, सतस्तपस्याचरणात् कठोरात् ।
मुनेस्तदा हिन्दुमलस्य भारम्, समुह्य तत्स्थानमवाप सोऽयम् ॥

अन्वयः—यदा शिवाणागढजन्मभूमेः हिन्दुमलस्य मुनेः कठोरात् तपस्याचरणात् तस्य सतः भारं समुह्य अयं सः ताराचन्द्रः मुनिः एव तत्स्थानम् अवाप।

अर्थ—जब शिवाणागढ़ के श्रीहिन्दुमलजी मुनि के कठोर तपस्या करने के कारण वे इतने दुर्बल हो गए थे कि वे चल-फिर नहीं पाते थे, अतः उन सन्त के भार को ढोकर उनके स्थान पर आप श्री ताराचन्द्रजी महाराज ने ही पहुँचाया।

(१०)

यतः स आसीद् गुरुबन्धुरेषः, कथं हि मार्गे परिवर्जनीयः ।
अतः स्वयं कष्टमवाप्य सेवाम्, तदा विधातुं परितः प्रवृत्तः ॥

अन्वयः—यतः स एषः गुरुबन्धुः आसीत्, अतः मार्गे हि परिवर्जनीयः कथं भवेत् ! अतः (अयं) स्वयं कष्टम् अवाप्य तदा परितः सेवां विधातुं प्रवृत्तः (अभवत्) ।

अर्थ—क्योंकि ये ही श्रीहिन्दुमलजीमुनि गुरुभाई थे । इसलिए उनको मार्ग में तो कैसे छोड़ा सकता था ? अतः स्वयं कष्ट उठाकर उस समय सेवा करने के लिए उद्यत हुए ।

(११)

न केवलं मे गुरुदेव एषः, शुभं हि सन्तं पृथुलां सकेन ।
समूढवान् हिन्दुमलं मुनिं तम्, स्वयं सिषेवे खलु पञ्चवर्षम् ॥

अन्वयः—एषः मे गुरुदेवः न केवलं तं शुभं सन्तं हिन्दुमलं मुनिं पृथुलांसकेन हि समूढवान्, अपि तु स्वयं खलु पञ्चवर्षं सिषेवे ।

अर्थ—इन मेरे गुरुदेवश्री ने न केवल उन शुभ हुए श्रीहिन्दुमलमुनिजी को मोटे कन्धे से ही ढोया, अपितु स्वयं ने उनकी पाँच वर्ष तक सेवा की ।

(१२)

यतो मुनिःस स्थिरवास आसीत्, न्युवास पुर्य्यां समदारिकायाम् ।
गुरुर्मदीयः प्रविहाय चिन्ताम्, असेवतायं मुनिजीवनान्तम् ॥

अन्वयः—यतः सः (हिन्दुमलमुनिः) स्थिरवासः आसीत्, य च समदारिकायां पुर्यां न्युवास । मदीयः अयं गुरुः चिन्तां विहाय मुनिजीवनान्तम् असेवत ।

अर्थ—क्योंकि वे श्रीहिन्दुमलमुनिजी महाराज स्थिरवास थे अतः वे समदड़ी पुरी में रहे थे । मेरे इन गुरुदेवश्री ने चिन्ता को छोड़ मुनि हिन्दुमलजी महाराज जब तक जीवित रहे, तब तक सेवा की ।

(१३)

अथायमन्यानपि तानेकान्, गुरुर्मुनीन्मे समसेवतालम् ।
विहाय भावं परकीयमन्तः—गणं न चिन्तन्ति तपस्विनोऽन्ये ॥

अन्वयः—अथ अयं मे गुरुः तान् अनेकान् अन्यान् मुनीन् परकीयम् अन्तर्गणं भावं विहाय अलम् असेवत। अन्ये तपस्विनः परकीयं न चिन्तन्ति।

अर्थ— इसके पश्चात् भी इन मेरे गुरुदेव ने उन अनेक दूसरे मुनियों की पर्याप्त सेवा की। कभी आपने दूसरे गण के भाव को नहीं सोचा। क्योंकि दूसरे तपस्वी परकीय की चिन्ता नहीं करते।

(१४)

न नाम नाम्ना गणनां विधातुम् सतामहं स्यां गुरुसेवकः सन् ।
परोपकारव्रतमानसस्य, स्वयं गुरोर्गौरवमेव हन्मि ॥

अन्वयः—सतां नाम्नां गणनां विधातुं गुरुसेवकः सन् अहं नाम न स्याम्। यदि अहं नाम्नां गणनां विधातुं भवेयम् तर्हि अहं स्वयं परोपकार-व्रतमानसस्य गुरोः गौरवम् एव हन्मि।

अर्थ— सन्तों के नामों की गणना करूँ कि उन-उन सन्तों की सेवा मेरे गुरु-देव ने की, तो मैं गुरुभक्त होकर सन्तों के नामों की गिनती करने के लिए तैयार होता हूँ, तो परोपकार के व्रत के हृदय वाले गुरुदेव के गौरव को नष्ट करूँगा। क्योंकि जब उन्होंने ही सेवा के विषय में अपने-तेरे की चिन्ता नहीं की तो मुझे फिर उनके नाम गिनाने की क्या आवश्यकता है!

(१५)

नमः सुमन्त्रस्य सपादकोटेः, जपं विधायापि जपन् सुमन्त्रम् ।
कदापि कालं व्यतिवाहयन् मे, न जातु शान्तो गुरुरेवमासीत् ॥

अन्वयः—सपादकोटेः नमः सुमन्त्रस्य जपं विधाय अपि सुमन्त्रं जपन् आसीत्। मे गुरुः कदापि कालं व्यतिवाहयन् एवं जातु शान्तः न (अभवत्)।

अर्थ— सवा करोड़ नमस्कार मन्त्र के जप को करके भी इस सुमन्त्र को जपते ही रहे। मेरे गुरुदेव कभी समय को अतिवाहित करते हुए कभी शान्त रहे हों! ऐसा कभी नहीं देखा।

(१६)

महोपकर्त्तारममुं गुरुं मे, स्मरन्नहं यामि निराश एषः ।
सपर्ययाऽलंकृतमानसं तम् गुरुं न पश्यामि हसन्तमेनम् ॥

अन्वयः—अहमेषः मे अमुं महोपकर्त्तारं गुरुं स्मरन् निराशः यामि। (यतः) सपर्यया अलंकृतमानसं तम् एनं गुरुं हसन्तम् अहं न पश्यामि।

अर्थ—यह मैं मेरे परम उपकारी गुरुदेव की याद करता हुआ निराश हो जाता हूं। क्योंकि सत्कार से अलंकृत हृदय के उन गुरुदेव को हँसते हुए इनको अब नहीं देख पाता।

(१७)

तथापि मे मानसिकं सुकायम्, गुरोरदो वर्त्तत एव नित्यम् ।
तदेव रूपं ननु चक्षुषोर्मे, सदैव चित्रायित मेवमस्ति ॥

अन्वयः—तथापि मे गुरोः अदः मानसिकं सुकायं नित्यम् एव वर्त्तते, मे चक्षुषोः ननु तत रूपं वर्त्तते। वस्तुतः सदा एव तत् गुरोः सुकायम् एवं चित्रायितम् अस्ति।

अर्थ—तो भी मेरे गुरुदेव का वह मानसिक सुन्दर शरीर सदा ही मेरी आँखों में रहता है और वही रूप मेरी आँखों में समाया रहता है। वास्तव में सदा ही गुरुदेव का सुन्दर शरीर ऐसा हो गया है जैसे कोई चित्र हो।

(१८)

अहं गुरोरेव सदाशिषा मे, निरन्तरं ध्यानविधिं दधामि ।
जिनप्रभोः शासितमेव धर्मम्, प्रवक्तुमेवं विहरामि देशे ॥

अन्वयः—अहं मे गुरोः एव आशिषा निरन्तरं ध्यानविधिं दधामि, एवं सदा जिनप्रभोः शासितं धर्मम् एव प्रवक्तुं देशे विहरामि।

अर्थ—मैं मेरे गुरुदेव के आशीर्वचन से ही निरन्तर ध्यान की विधि को पोषण दे रहा हूँ, और इसी प्रकार सदा भगवान् जिनके शासित धर्म का ही प्रवचन करने के लिए स्थान-स्थान पर विहार कर पहुँच रहा हूँ।

(१९)

विहारमुद्दिश्य गुरोः प्रसङ्गम्, स्मराम्यहं यद् घटितं दहल्याम् ।
जगामवान्यैर्मुनिभिः सहायम्, जवाहरं दर्शयितुं गुरुर्मे ॥

अन्वयः—अहं विहारम् उद्दिश्य यद् दहल्यां घटितं गुरोः प्रसङ्गं स्मरामि । अयम् मे गुरुः अन्यैः मुनिभिः सह मन्त्रिणं जवाहरम् दर्शयितुं जगाम ।

अर्थ—मैं विहार के उद्देश को लेकर जो दिल्ली में घटित हुआ ऐसे गुरुदेव के प्रसङ्ग का स्मरण कर रहा हूँ। आप श्री अन्य मुनियों के साथ प्रधानमन्त्री श्री पं० जवाहरलालजी को दर्शन देने को पधारे।

(२०)

गुरुं निरीक्ष्यैव जवाहरोऽयम्, प्रसन्नचेताः कुरुतेऽभिलाषम् ।
भवादृशाऽहं मुनिना सहैव, लषामिकाष्टुं प्रतिबिम्बचित्रम् ॥

अन्वयः—अयं जवाहरः गुरुं निरीक्ष्य एव प्रसन्नचेताः सन् अभिलाषं कुरुते यत् अहं भवादृशा मुनिना सह एव प्रतिबिम्बचित्रं काष्टुं लषामि ।

अर्थ—इन पं० जवाहरलालजी प्रधानमन्त्री ने गुरुदेव को देखते ही प्रसन्नचित्त होकर इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसे मुनिराज के साथ फोटो खिचाने के लिए चाहता हूँ।

(२१)

यतो गरुस्तं कुरुते निषेधम्, मुनेः कृते चित्रमिदं निषिद्धम् ॥
अतस्त्वयाऽहं न हि शोचनीयः, भवेयमेवं मुनिधर्मवृत्तेः ॥

अन्वयः—अस्मिन् समये गुरुः तं निषेधं कुरुते, यतः मुनेः कृते इदं चित्रं निषिद्धं वर्त्तते । अतः त्वया अहं मुनिधर्मवृत्तेः शोचनीयः न भवेयम्—इति गुरुः स्पष्टयति ।

अर्थ—इस समय गुरुदेव श्री ने उनको मना कर दिया, और बताया कि यह फोटो खिचाना मुनि के लिए निषिद्ध है। इसलिए आपके द्वारा मैं मुनिधर्म के व्यवहार के कारण अफसोस करने के योग्य नहीं हो सकूंगा। अतः आप कोई अन्यथा न सोचें।

(२२)

धृतस्मयो नेहरुरेवमूचे, महानयं साधुषु साधुरेकः ।
अणुव्रती चित्रमुपेतुमीदृक्, समेत्यसौ मे तुलसीमुनीशः ॥

अन्वयः—धृतस्मयः नेहरू (जवाहरलालः प्रधानमन्त्री) एवम् ऊचे, यत् अयं साधुषु महान् एकः साधुः (अस्ति) । (अन्यथा तु) मे असौ अणुव्रती तुलसीमुनीशः ईदृक् चित्रम् उपेतुं समेति ।

अर्थ—आश्चर्यचकित प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलालजी नेहरू इस प्रकार कहने लगे कि ये साधुओं में से महान एक साधु हैं । अन्यथा तो मेरे वे अणुव्रती वाले तुलसीजी आचार्य ऐसे फोटो के लिए आते रहते हैं ।

(२३)

अथ प्रसङ्गादनुवर्णयामि, प्रधानमन्यच्चरितं गुरोर्मे ।
अहो ममाग्रे निखिलात्मवृत्तम्, समालुलोचैष गुरुर्मदीयः ॥

अन्वयः—अथ प्रसङ्गात् मे गुरोः अन्यत् प्रधानं चरितम् अनुवर्णयामि । अहो एषः मदीयः गुरुः मम अग्रे निखिलात्मवृत्तं समालुलोच ।

अर्थ—अब प्रसङ्ग को लेकर मैं अपने गुरुदेव का दूसरा मुख्य चरित अनुवर्णित कर रहा हूँ कि इन मेरे गुरुदेव ने मेरे ही सामने सम्पूर्ण आत्मवृत्त की समालोचना की ।

(२४)

अयं स्वयं मृत्युमबोधयन्माम्, यतो य आयाति मरिष्यतीति ।
अतो मदीयं खलु जीवनान्तम्, भवेदवश्यं ननु मास्सु षट्सु ॥

अन्वयः—अयं स्वयं मां मृत्युम् अबोधयत्—यतः यः आयाति खलु सः मरिष्यति इति—अतः मदीयं जीवानान्ते ननु मास्सु षट्सु अवश्यं भवेत् ।

अर्थ—इन गुरुदेव ने स्वयं मुझे अपनी मृत्यु को बताया था कि जो उत्पन्न होता है, वह निश्चय के साथ मृत्यु प्राप्त करेगा—ऐसा है, इससे मेरे जीवन का अर्थात् मृत्यु निस्सन्देह छह मासों में अवश्य होगी ।

(२५)

अयं तु सन्तं मदनादिलालम्, न्यवेदयन्मृत्युदिनं मिषेण ।
अतो मुनिं तं स्वयमेव पूर्वम्, न भावि मृत्योरभिभाषणं श्वः ॥

अन्वयः—अयं मिषेण मदनादिलालं (मदनलालं) सन्तं तु मृत्युदिनं-न्यवेदयत्—अतः असौ मृत्योः पूर्वं स्वयमेव उक्तवान् यत् श्वः अभिभाषणं न भावि विद्यते ।

अर्थ—इन्होंने मुनि श्री मदनलालजी महाराज को बहाने से निवेदन कर दिया कि कल व्याख्यान भावी नहीं है । इसलिए उन्होंने मृत्यु से पूर्व स्वयं ही कहा था । अर्थात् मेरी कल मृत्यु हो जायेगी, अतः व्याख्यान नहीं होगा । यह दूसरी बात है कि वे समझ पाये या नहीं । किन्तु दूसरे दिन जब उन्होंने सुना कि महाराज काल कर गए, तो वे समझे कि कल व्याख्यान नहीं होगा, इसका अर्थ मुनिश्री का आज मृत्युदिन है ।

(२६)

अहं मदीयस्य गुरोर्महत्त्वम्, व्यवर्णयं हेतुपरं परन्तु ।
अतोऽप्यनेके ननु सन्त्युदन्ताः, भवेयुरन्येऽपि तु तर्कयेयुः ॥

अन्वय—अहं मदीयस्य गुरोः हेतुपरं महत्त्वं व्यवर्णयम्, परन्तु अतः अपि अनेके उदन्ताः सन्ति । अन्ये अपि उदन्ताः भवेयुः इति तु भवन्तः (एव) तर्कयेयुः ।

अर्थ मैंने अपने गुरुदेवश्री का कारणपरक महत्त्व वर्णित किया । परन्तु इनसे भी अनेक उदन्त हैं । दूसरे भी उदन्त हो सकते हैं, यह तो अब आप ही तर्क करेंगे ।

(२७)

अतोऽहमन्ते कथनीयमेकम्, कथानकं ख्यामि यथाश्रुतं तत् ।
यतः स्वयं सिद्ध्यति निस्स्पृहत्वम्, गुरोर्मदीयस्य महात्मनोऽस्य ॥

अन्वयः—अतः अहम् अन्ते एकं तत् कथनीयं यथाश्रुतं कथानकं ख्यामि । यतः अस्य महात्मनः मदीयस्य गुरोः निस्स्पृहत्वं स्वयं सिद्ध्यति ।

अर्थ—अब मैं अन्त में एक उस कहने के योग्य जैसा कि सुना गया है, कथानक बताता हूँ । जिससे इन महात्मा मेरे गुरुदेव का निस्स्पृहत्व स्वयं सिद्ध होता है ।

(२८)

प्रसिद्धवंशे खलु दुग्गड़ाख्ये, प्रसूत एको धनिको वदान्यः ।
महाजनः सोहनलालनामा, समागतोऽभूदथ बङ्गदेशात् ॥

अन्वयः—अथ खलु प्रसिद्धवंशे दुग्गड़ाख्ये प्रसूतः वदान्यः एकः सोहनलालनामा महाजनः बङ्गदेशात् समागतः अभूत् ।

अर्थ—अब आगे की बात है कि दुग्गड़ कहे जाने वाले प्रसिद्ध खानदान में जन्मे दानी धनाढ्य एक श्रीसोहनलाल नाम महाजन बङ्गाल देश से आये हुए थे ।

(२९)

विराजमानं स्थविरं महान्तम्, गुरुं मदीयं शुभदर्शनार्थम् ।
ततः समाकर्ण्य तदाऽगमत्सः, परं शुभादेशमथार्थयत्तम् ॥

अन्वयः—अथ तं मदीयं गुरुं महान्तं स्थविरं विराजमानं समाकर्ण्य तदा शुभदर्शनार्थम् आगमत् । सः ततः परं शुभादेशम् आर्थयत् ।

अर्थ—तदनन्तर उन मेरे गुरुदेव महास्थविर श्रीताराचन्द्र मुनि महाराज को विराजमान सुनकर तब श्रेष्ठिवर सोहनलालजी दुग्गड़ गुरुदेव के शुभ दर्शन करने के लिए पहुँचे । दर्शन करने के बाद उन्होंने उनसे विशेष सेवा योग्य आदेश के लिए प्रार्थना की ।

(३०)

गुरोः शुभादेशमयं न लब्ध्वा, तदाग्रहे सत्यपि दानवीरः ।
निवृत्य वृत्तं घटितं ततोऽसौ, न्यवेदयत्तं श्रमणं गणेशम् ॥

अन्वयः—आग्रहे सति अपि अयं दानवीरः गुरोः शुभादेश न लब्ध्वा तदा ततः निवृत्य असौ घटितं वृत्तं तं श्रमणं गणेशं न्यवेदयत् ।

अर्थ—आग्रह के रहने पर भी ये दानवीर गुरुदेव के मङ्गलमय सेवा योग्य आदेश को न प्राप्त कर पाए तब वहाँ से लौटकर उन्होंने उन उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज को जो वहाँ हुआ उस वृत्त को निवेदित किया ।

(३१)

अयं तदाचार्यवरो गणेशः, स्वयं गुरुं मे समशंसतालम् ।
सुनिस्स्पृहं तारकचन्द्रदेवम्, तदेतदन्येऽपि विदन्ति वृत्तम् ।

अन्वयः—तदा अयम् आचार्यवरः गणेशः स्वयं मे गुरुं तारकचन्द्रदेवं सुनिस्स्पृहं (मत्वा) अलं समशंसत । (सहैव आचार्यवरः उक्तवान्–) तत् एतत् वृत्तं तु अन्ये अपि विदन्ति ।

अर्थ—तब इन उपाचार्यवर श्रीगणेशीलालजी महाराज ने स्वयं मेरे गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज को परम निस्स्पृही मानकर पर्याप्त प्रशंसा की, और साथ ही यह भी आचार्य वर ने फरमाया कि इस सबको तो और दूसरे भी जानते हैं ।

(३२)

अहो किमेते ननु वर्णिता ये, त एव सन्तीति गुणा न चान्ये ।
न चेत्तदैवं न हि तर्कयेयुः गुणा गुरोर्मे बहवो भवेयुः ॥

अन्वयः—ननु ये गुणाः वर्णिताः सन्ति, ते एव अहो किम् एते सन्ति न च अन्ये इति चेत् तदा भवन्तः एवं न तर्कयेयुः, यतो हि मे गुरोः बहवः गुणाः भवेयुः । साम्प्रतं यान् अहम् अस्मार्षम् तानेव अवर्णयमितिभावः ।

अर्थ—क्या ये ही गुण, जो वर्णित हुए हैं वे ही सब गुण आपके गुरुदेव के हैं और दूसरे नहीं ? यदि आप सब ऐसा सोचते है तो ऐसा नहीं सोचिए । क्योंकि मेरे गुरुदेव के और अनेक गुण हो सकते हैं । अब मैं जिन गुणों को स्मरण कर पाया, उनको बता पाया हूँ, यह व्यङ्ग्यार्थ है ।

(३३)

मया तु पूर्वं कथितं यदुक्तम्, यथाधि किञ्चिन्ननु वक्तुमीहे ।
तथापि दोषः समुपैति कस्मिद्, ममैव सोऽस्तीति विचारयन्तु ॥

अन्वयः—मया तु पूर्वं कथितं यत् किञ्चित् ननु उक्तं विद्यते, तत् यथाधि वक्तुम् ईहे इति कृत्वा उक्तम् । तथापि वर्णने यदि कस्मिद् दोषः समुपैति, स ममैव दोषः अस्ति, इति भवन्तो विचारयन्तु ।

अर्थ—मैंने तो पहले ही कह दिया है कि वर्णन यथामति किया चाहता हूँ । अतः इसमें फिर भी कोई दोष रहता है तो मेरा ही दोष समझना चाहिये, न कि वर्णन का ।

(३४)

ततोऽप्यहं वच्मि गुरोगुणान् मे, प्रशंसनीयान् मम धर्म एव ।
महानुभावैर्गुरुभिः सदेयम्, गुणेषु शिष्यस्य मतास्ति भक्तिः ॥

अन्वयः—ततः अपि अहं मे गुणोः प्रशंसनीयान् गुणान् वच्मि मम (अयं) धर्मः एव (अस्ति)। शिष्यस्य गुणेषु महानुभावैः गुरुभिः सदा इयं भक्तिः मतः अस्ति।

अर्थ—तदनन्तर भी मैं अपने गुरुदेव के प्रशंसा के योग्य गुणों का वर्णन करता हूँ तो यह मेरा धर्म ही है। (जहाँ तक मैं समझता हूँ), एक शिष्य के गुणों में महानुभाव गुरुदेवों ने सदा यह भक्ति मानी है।

(३५)

गुरोः प्रसादादुपलब्धकीर्त्तिः, भ्रमामि सद्भिः सह भारतेऽस्मिन् ।
प्रभोर्महावीर जिनेश्वरस्य, प्रणोदितं धर्ममिमं दिशन्नहम् ॥

अन्वयः—गुरोः प्रसादात् उपलब्धकीर्त्तिः अहं सद्भिः सह अस्मिन् भारते प्रभोः महावीरजिनेश्वरस्य प्रणोदितम् इमं धर्मं दिशन् भ्रमामि।

अर्थ—गुरुदेवश्री के प्रसाद से प्रसिद्ध होकर मैं मेरे सन्तों के साथ इस भारत में श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा प्रज्ञप्त इस धर्म का उपदेश करता हुआ घूमता रहता हूँ।

(३६)

इमे मदीया मुनयः प्रशस्ताः, प्रदीक्षिताः सन्ति गुरोरनुग्रहात् ।
सुशिक्षिता धर्मधुरन्धरास्ते, जिनप्रभोः शासनमावहन्ति ॥

अन्वयः—गुरोः अनुग्रहात् इमे मदीयाः प्रदीक्षिताः सुशिक्षिताः प्रशस्ताः मुनयः सन्ति। सम्प्रति ते धर्मधुरन्धराः सन्तः जिनप्रभोः शासनम् आवहन्ति।

अर्थ—गुरुदेवश्री के अनुग्रह से ये मेरे प्रदीक्षित, सुशिक्षित और प्रशस्त मुनिजन हैं। अब वे धर्म के दायित्व को सँभालते हुए जिनेश्वर भगवान् के शासन को महका रहे हैं।

(३७)

अहन्तु नामानि वदामि तेषाम्, क्रमेण दीक्षानुनयेन येन ।
प्रतीति वैशिष्ट्यगुणेन साकम्, जना मुनींस्तान् परिचेतुमेयुः ॥

अन्वयः—अहं तेषां नामानि दीक्षानुनयेन क्रमेण वदामि । येन जनाः प्रतीतिवैशिष्ट्यगुणेन साकं तान् मुनीन् परिचेतुम् एयुः ।

अर्थ—मैं उनके नाम दीक्षा के अनुनय के क्रम से बता रहा हूँ। जिससे कि कौन-किस प्रकार की योग्यता रखता है, इसके साथ उन मुनियों से परिचित हो सके।

(३८)

मुनी तु देवेन्द्रगणेशमुख्यौ, मुनी रमेशश्च मुनिर्दिनेशः ।
समे मिलित्वा मुनयो विनीता,, भवन्ति शिष्या अधुना समेते ॥

अन्वयः—अधुना मम समे मिलित्वा तु एते, देवेन्द्रगणेशमुख्यौ मुनी, रमेशः मुनिः, दिनेशः मुनिः च, विनीताः मुनयः मम शिष्याः भवन्ति ।

अर्थ—अब मेरे सब मिलकर तो ये देवेन्द्रमुनि, गणेशमुनि, रमेशमुनि और दिनेशमुनि ये विनीत मुनिजन मेरे शिष्य हैं।

(३९)

अयं तु देवेन्द्रमुनिर्विनीतः, निरन्तरं सम्प्रति साधकोऽसौ ।
विशालसाहित्यसुधासमुद्रम्, शनैर्विमथ्नंल्लभते प्रवालम् ॥

अन्वयः—अयम् असौ विनीतः देवेन्द्रमुनिः सम्प्रति साधकः सन् विशालसाहित्य सुधा समुद्रं शनैः विमथ्नन् निरन्तरं प्रवालं लभते ।

अर्थ—ये ही विनयी वे देवेन्द्रमुनि हैं, जो अब साधक होकर विशाल साहित्य-सुधा के समुद्र को धीरे-धीरे निरन्तर मथते हुए मोती को ढूंढ ही लेते हैं।

(४०)

अथास्य वैशिष्ट्यमहं वदेयम्, जना अवश्यं कथयेयुरन्यत् ।
परन्तु याथार्थ्यनिगूहनं किम्, कदापि तत्स्तुत्यमहं न मन्ये ॥

अन्वयः—अथ अहम् अस्य (यदि) वैशिष्ट्यं वदेयम् तदा जनाः अवश्यम् अन्यत् कथयेयुः । परन्तु किं याथार्थ्यनिगूहनं स्तुत्यं (भवेत्) ! अहं कदापि तत् न मन्ये ।

अर्थ—अब मैं इनकी विशेषता बताऊँ तो लोग अवश्य ही कुछ कहेंगे । परन्तु क्या वास्तव को छिपाना स्तुत्य होगा ? कभी स्तुत्य नहीं हो सकता । अतः मैं कभी वास्तव को छिपाना स्तुत्य नहीं समझता ।

(४१)

दिवानिशं यो रमतेऽधिसेवम्, ममैव नैवं कथयेयमित्थम् ।
परन्तु मन्ये मम सेवयालम्, स सेवते ग्रन्थपथा मुनींस्तान् ॥

अन्वयः—यः दिवानिशं मम एव अधिसेवं रमते, मम् अहम् एवं न कुरु इत्थं कथयेयम् ? अर्थात् न हि । परन्तु ममसेवया अलम् इत्थम् अहं कथयेयम्—इति अहं मन्ये । यतः सः ग्रन्थपथा तान् (बहून्) मुनीन् सेवते ।

अर्थ—जो दिनरात मेरी ही सेवा में तल्लीन रहते हैं, उनको मैं ही ऐसा कहूँ कि ऐसा न करो—ऐसा मैं कह नहीं सकता । परन्तु मेरी सेवा करने से कोई कार्य नहीं हो सकता—ऐसा मैं कह सकता हूँ । यह मैं मानता हूँ । क्योंकि वे ग्रन्थ-लेखन के मार्ग से सभी मुनियों की सेवा कर रहे हैं ।

(४२)

न केवलं स्वीयगुरुं तथायम्, परन्तु सर्वानपि साधुवर्य्यान् ।
परे समे सत्यसृतेः प्रशस्ताः, समीक्षका एवमिमं नमन्ति ॥

अन्वयः—न केवलं स्वीयगुरुं तथा (सेवते), परन्तु अयं सर्वान् साधु-वर्यान् अपि सेवते । (अतः) एवम् परे समे सत्यसृतेः प्रशस्ता समीक्षकाः (सन्ति), ते (तु साहित्यं दृष्ट्वा) इमं नमन्ति ।

अर्थ—न केवल वे सब मुनियों की सेवा कर रहे हैं, परन्तु ये सब जैनजन की सेवा कर रहे हैं । इस सबसे ही दूसरे सब सत्य के मार्ग के प्रशस्त गवेषक इनका अभिनन्दन कर रहें हैं ।

(४३)

क्रियानयं प्रेमवशो विरक्तः, सुसंयमी किन्तु सदाऽनुरक्तः ।
क्रियासु नित्यं क्षमते प्रसक्तः, गुरौ तु सेवानियमस्य भक्तः ॥

अन्वय—अहो अयं देवेन्द्रः प्रेमवशः सन् अपि विरक्तः कियान् अस्ति ! किन्तु अनुरक्तः सन् अपि सुसंयमी क्रियासुप्रसक्तः नित्यं क्षमते । गुरौ तु सेवानियमस्य भक्तः अस्ति एव ।

अर्थ—अरे ये देवेन्द्रमुनि प्रेम के वश में रहते हुए भी विरक्त हैं । किन्तु अनुरक्त होकर भी सच्चे संयम के साथ मुनि क्रियाओं में लगे रहते हैं और नित्य ही सब सहते रहते हैं । गुरु के विषय में सेवा के नियम के भक्त तो वे हैं ही ।

(४४)

अयं गणेशोऽपि समुन्नतश्रीः, कविः प्रवक्ता रचनाप्रवीणः ।
सतां गणे लब्धयशा मनस्वी, विराजते चन्द्र इवाधितारम् ॥

अन्वयः—अयं गणेशः अपि समुन्नतश्रीः कविः, रचनाप्रवीणः, प्रवक्ता च (अस्ति) । अयं मनस्वी सन् सतां गणे लब्धयशाः अधितारं चन्द्र इव राजते ।

अर्थ—ये गणेशमुनि भी पूर्णउन्नत होकर कवि, परमलेखक, प्रभावी प्रभाषक सब कुछ हैं । ये मनस्वी रहकर सन्तों के समुदाय में यशस्वी हैं । अतएव ये तारागण में चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे हैं ।

(४५)

ममाज्ञयाऽयं सुसतां गणेशः, करोति धर्मस्य पथा प्रचारम् ।
विहृत्य दूरं लभते प्रसिद्धिम्, प्रभाषणादस्य परं प्रसन्नः ॥

अन्वयः—अयं सुसतां गणेशः गणेशः मुनिः मम आज्ञयापथा धर्मस्य प्रचारं करोति, दूरं च विहृत्य प्रसिद्धि लभते, तस्मात्तु अहं प्रसन्नोऽस्म्येव), किन्तु अस्य प्रभाषणात् अहम् ततः अपि परं प्रसन्नः (अस्मि) ।

अर्थ—ये सच्चे सन्तों के संघ के स्वामी गणेश मुनि मेरे आदेश से ही मार्ग से धर्म को दीप्त कर रहे हैं और लम्बे-लम्बे विहार कर स्थान-स्थान पर पहुँच, यश प्राप्त कर रहे हैं । इससे तो पहले मैं प्रसन्न हूँ ही, किन्तु व्याख्यान की विशेष उपलब्धि से मैं उससे भी अधिक प्रसन्न हूँ ।

(४६)

अयं रमेशो मुनिरेव नित्यम्, नयेन शास्त्रस्य चिनोति तत्त्वम् ।
जिनस्य धर्मस्य विवेकपूर्णः, प्रतत्त्वसूत्रेण दृढीकरोति ॥

अन्वयः—अयं रमेशः मुनिः नित्यम् एव नयेन शास्त्रस्य तत्त्वं चिनोति विवेकपूर्णः सन् अयं जिनधर्मस्य तत्त्वं प्रतत्त्वसूत्रेण दृढीकरोति ।

अर्थ—ये रमेशमुनि सदा न्यायशास्त्र के द्वारा शास्त्र के तत्त्वों को एकत्र करते हैं, और नैपुण्य के साथ ये उस चुने हुए तत्त्व को तत्त्वार्थसूत्र से कसकर के मजबूत बना देते हैं ।

(४७)

असौ प्रबुद्धोऽतिधृतागमश्रीः, यशोधरः स्तोक कलाविलासे ।
विराजते शिष्यगणे प्रसन्नः, तपस्विधाराधर एव धर्मे ॥

अन्वयः—असौ प्रबुद्धः अतिधृतागमश्रीः, स्तोक कलाविलासे यशोधरः, धर्मे शिष्यगणे प्रसन्नः सन् तपस्विधाराधरः एव राजते ।

अर्थ—ये ही जाग्रत आगम के ज्ञाता हैं और थोकड़ों की कला के विलास में विशेषज्ञ हैं । मेरे शिष्यों के समुदाय में धर्म के विषय में गरज-गरज कर बरसनेवाले तपस्वी मेघ ही हों ऐसी शोभा पा रहे हैं ।

(४८)

न केवलं तोषमुपैति तावत्, न यावदायाति पुरोऽस्य हेतुः ।
स्वयं प्रसन्नो रमते विचारे, न कोऽपि तं ज्ञातुमतः प्रपन्नः ॥

अन्वयः—अयं तावत् केवलं तोषं न उपैति, यावत् अस्य पुरः हेतुः न आयाति । स्वयंप्रसन्नः अयं विचारे रमते, अतः कोऽपि तं ज्ञातुं प्रपन्नः न भवति ।

अर्थ—ये मुनिजी तब तक सन्तोष नहीं लेते, जब तक कि इनके सामने कारण उपस्थित नहीं होता, क्योंकि ये बिना कारण के किसी बात को ठीक नहीं मानते । इसलिए आपके सन्तोष के लिये केवल हेतु है । दूसरे आत्माराम होकर अपने विचार में रमते रहते हैं । इसलिए कोई भी इनको जानने का अधिकारी नहीं हो पाता ।

(४९)

विचारदृष्ट्या सरलो विनोदी, हितैषिता वाचि न चेतसैव ।
न छद्मवृत्तिं जनमीक्षतेऽयम्, पुनर्भवेत्कोऽपि भयङ्करोऽसौ ॥

अन्वयः—(अयं) विचारदृष्टया सरलः विनोदी वर्त्तते। अस्य हितैषिता वाचि न विद्यते, किन्तु चेतसा हितम् अनुभूय तद्वत् एव आचरति येन हितं जायते। अर्थात् अयं हितम् आचरति, किन्तु न वदति। अयं छद्मवृत्तिं जनं न ईक्षते, पुनः असौ कोऽपि भयङ्करः भवेत् अर्थात् तस्मात् न बिभेति।

अर्थ—विचार की दृष्टि से भोले विनोदी हैं। इनकी भलाई की चाह कहने में नहीं है, अपितु हृदय से ही अनुभव करने में है। ये किसी छली को देखना तक नहीं चाहते, बात की बात तो दूर है। फिर चाहे वह कितना भी जालिम क्यों न हो।

(५०)

कविस्वभावः कुशलो निबद्धा, प्रतिष्ठते संस्कृतपण्डितेषु ।
स्वभावमौनः समये च खिन्नः, सुसेवते मां विनयेन नुन्नः ॥

अन्वयः—अयं कविस्वभावः, कुशलः निबद्धा, संस्कृत-पण्डितेषु-प्रतिष्ठते। अयं स्वभावमौनः तिष्ठति, समये च अयं खिन्नः भवति, किन्तु अयं विनयेन नुन्नः सन् मां सुसेवते।

अर्थ—ये मुनि कवि जैसे स्वभाव के हैं, कुशल निबन्ध लेखक हैं और संस्कृत के पण्डितों में जमकर बैठते हैं अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और ये स्वभाव से मौन रहते हैं, तथा समय-समय पर खिन्न हो उठते हैं, वस्तुतः यह इनका स्वभाव ही है। किन्तु विनय के हेतु से प्रेरित हो मेरी खूब सेवा करते हैं।

(५१)

अयं दिनेशो मुनिरेवमेवम्, समभ्यसन् स्तोककदम्बकं नः ।
उपैति सम्यक् जिनधर्मबोधम्, शनैः शनैरेति मुनिप्रभावम् ॥

अन्वयः—अयं दिनेशः मुनिः एवम्-एवम् नः (अस्माकं) स्तोककदम्बकं समभ्यसन् जिनधर्मबोधं सम्यक् उपैति, शनैःशनैः च मुनिप्रभावम् एति।

अर्थ—ये दिनेशमुनि हैं जो जैसे-तैसे कर हमारे थोकड़ों को गिनते हुए जिन-धर्म के ज्ञान को बढ़ा रहे हैं और धीरे-धीरे मुनिवृत्ति को जगाते चल रहे हैं।

(५२)

अयं तु देवेन्द्रमुनेः सुशिष्यः, महाविनीतोऽपि विचारधीरः ।
सुसेवको मे प्रियपौत्रकोऽसौ, बुधेषु राजेन्द्र इवाधिकोऽस्ति ॥

अन्वय—अयं तु (राजेन्द्रमुनिः) देवेन्द्रमुनेः सुशिष्यः महाविनीतः अपि विचारधीरः मे प्रियपौत्रकः सुसेवकः (अस्ति) असौ बुधेषु इव अधिकः अस्ति ।

अर्थ—ये तो राजेन्द्रमुनि हैं, जो प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीदेवेन्द्रमुनि के सुशिष्य हैं, अत्यन्त विनीत होते हुए भी काफी अच्छे विचारवान् हैं । वे मेरे प्रिय पौत्रमुनि होते हैं और बहुत ही सेवापरायण हैं और वस्तुतः ज्ञाताओं में अधिक के समान जैसे ही हैं । स्पष्ट विशेषण इसलिए कहना नहीं चाहता; क्योंकि सेवक, लेखक, व्याख्यानी और अध्ययनरत हैं । अतः मेरी दृष्टि में अभी अधिक विशेषण उपयुक्त जमा सो कह दिया ।

(५३)

सुलेखको ग्रन्थचयस्य वाग्मी, विभुः प्रभाविष्वपि सज्जनेषु ।
प्रभाषको धर्मसभासु नीतौ, उदीयमानो मुनिरेव सोऽयम् ॥

अन्वयः—(अयं) ग्रन्थचयस्य सुलेखकः, सज्जनेषु वाग्मी प्रभाविषु अपि विभुः, धर्मसभासु प्रभाषकः, सः अयम् एव यः नीतौ उदीयमानः मुनिः (अस्ति) ।

अर्थ—ये अनेक पुस्तकों के अच्छे लेखक हैं, सज्जनों में वाग्मी हैं, प्रभाविओं में व्यापक हैं, धर्म की सभाओं में प्रवक्ता हैं और वे ही ये मुनि हैं, जो नीति के विषय में होनहार मुनि हैं ।

(५४)

अयं मुनी राष्ट्रियतत्त्वदर्शी, हितं परं वेत्ति सुमानवीयम् ।
दृष्टौ मुनेर्धर्ममुपास्यमेवं, निधाय राजेन्द्रमुनिः स्थितोऽसौ ॥

अन्वयः—अयं मुनिः सन् राष्ट्रियतत्त्वदर्शी विद्यते, अयं सुमानवीयं परं हितं वेत्ति, असौ राजेन्द्रमुनिः दृष्टौ मुनेः उपास्यम् एवं धर्मं निधाय स्थितः (विद्यते) ।

अर्थ—ये मुनि रहते हुए राष्ट्रीय तत्त्व के द्रष्टा हैं, ये जनता के विशिष्ट हित को पहचानते हैं । धर्म की दृष्टि के विषय में उपास्य मुनिधर्म, जैसा कि चाहिए, को स्थिर करके मुनिधर्म के पालन में तत्पर हैं ।

(५५)

यमी, श्रमी, वीरमुनिर्विनीतः, गुरुं स्वकीयं प्रति भावभक्तिम् ।
दधाति मां प्रत्यपि निर्विशेषम् ममाशिषायुष्यमशेषमेतु ॥

अन्वयः—अयं यमी, श्रमी, वीरमुनिः विनीतश्च अस्ति । अयं स्वकीयं गुरुं प्रति एवं मां प्रति अपि भावभक्तिं निर्विशेषं दधाति । (अतः) अहं हृदयेन प्रसन्नोऽस्मि) मम आशिषा अयम् अशेषम् आयुष्यम् एतु ।

अर्थ—ये संयम-शील के पालक, विद्याभ्यास में रत, दृढ़श्रद्धा के सन्त और अत्यन्त नम्र हैं । अपने गुरुदेव के प्रति एवं मेरे प्रति भी बिना किसी भेदभाव के श्रद्धा-सेवा का सदा ध्यान रखते हैं । अतः मैं हृदय से प्रसन्न हूँ—मेरे आशीर्वचन से चाहता हूँ कि ये अशेष आयुष्य प्राप्त करें ।

(५६)

इमौ गणेशस्य मुनेः सुशीलौ, प्रियौ हि तौ सम्प्रति शिष्यकौस्तः ।
तयोस्तुसंज्ञे गणयामि मुन्योः, यतो भवन्तोऽवगता भवेयुः ॥

अन्वयः—सम्प्रति गणेशस्य हि मुनेः तौ सुशीलौ प्रियौ शिष्यौ स्तः । तयोः मुन्योः तु अहं संज्ञे गणयामि । यतः भवन्तः अवगताः भवेयुः ।

अर्थ—सम्प्रति श्री गणेशमुनिजी के वे सुशील, और प्रिय दो शिष्य हैं । उन दोनों मुनियों के नाम गिनाता हूँ । जिससे कि आप अवगत हो सकें ।

(५७)

मुनिर्जिनेन्द्रः प्रथमस्तपस्वी, मुनिर्द्वितीयोऽस्त्यपरः प्रवीणः ।
इमौ मिलित्वा च समौ तथैतौ, मुनेर्गणेशस्य मुनी भवेताम् ॥

अन्वयः—मुनिः जिनेन्द्रः प्रथमः अस्ति, अपरः मुनिः तपस्वी प्रवीणः अस्ति । तथा इमौ मिलित्वा एतौ समौ (अर्थात् द्वावेव) गणेशस्य मुनेः मुनी भवेताम् ।

अर्थ—मुनि जिनेन्द्रजी प्रथम हैं और दूसरे मुनि तपस्वी प्रवीणजी द्वितीय हैं । इस प्रकार ये मिलकर के समान ही होते हैं अर्थात द्विवचन होने से दो ही होते हैं । ये ही दोनों मुनि श्रीगणेशमुनिजी के शिष्य हैं ।

(५८)

मुनिर्जिनेन्द्रोऽपि गुणैर्विशिष्टः, प्रभावपूर्णोऽपि विनीत एव ।
कृतश्रमोऽयं जिनधर्मतत्त्वे, सुशोभते पण्डितमण्डलेऽपि ॥

अन्वयः—अयं जिनेन्द्रः मुनिः अपि गुणैर्विशिष्टः अस्ति, अयं विनीतः अपि प्रभावपूर्णः अस्ति । अयं जिनधर्मतत्त्वे अपि कृतश्रमः विद्यते । अतः अयं पण्डितमण्डले अपि सुशोभते ।

अर्थ—ये जिनेन्द्रमुनि भी बड़े गुणी हैं । ये अधिक नम्र होते हुए भी अपना पर्याप्त प्रभाव रखते हैं । इन्होंने जैनधर्म के तत्वज्ञान में भी पूर्णश्रम किया है, अन्य विषय जैसे भाषा, साहित्य, व्याकरण, न्याय आदि तो पढे हैं । अतः विद्वज्जनों में भी आप शोभा पाते हैं ।

(५९)

अतो मदीयं मुनिपौत्रवृन्दम्, शुभाशिषाऽहं परियोजयामि ।
भवन्तु सर्वे मुनयो धुरीणाः, विवोढुमेनं जिनधर्मसंघम् ॥

अन्वयः—अतः अहं मदीयं मुनिपौत्रवृन्दं शुभाशिषा परियोजयामि । मम सर्वे मुनयः एनं जिनधर्मसंघं वोढुं धुरीणाः (समर्थाः) भवन्तु ।

अर्थ—अतः अब मैं अपने मुनिपौत्र-वृन्द को हार्दिक-आशीर्वचन से परियोजित कर रहा हूँ कि मेरे ये सब मुनिजन इस श्रमणभगवान् महावीर जिनेश्वर के धर्मसंघ के दायित्व को वहन करने के लिए समर्थ हों ।

(६०)

विमल कमलशोभं काव्यकर्मप्रवीणः
रचयति कविरेवं पुष्करोऽयं नवीनम् ।
अमरमुनिदिनेशो रञ्जयन् साधुपद्मम्
निखिलमुनिसरस्सु श्रीधरं द्योततेऽलम् ॥

अन्वयः—काव्यकर्मप्रवीणः कविः पुष्करः मुनिः अयम् नवीनं विमल-कमलशोभं साधुपद्मं रचयति, अमरमुनिदिनेशः तत् इदं श्रीधरं साधुपद्मं रञ्जयन् निखिलमुनि सरस्सु अलं द्योतते ।

अर्थ—काव्य की रचना में निपुण कविपुष्करमुनि ने नूतन विमल कमल है, शोभा जिसकी, ऐसे नये साधुरूप पद्म को अथवा श्रेष्ठ कमल को रचा, जिसको अमर-सिंहमुनिरूप सूर्य अपने किरणसमूह से उस श्रीधर साधुपद्म को रञ्जित करता हुआ सम्पूर्णमुनिरूप तडागों में पर्याप्त दीप्त हो रहा है ।

(६१)

केवलं काव्यसौख्याय, सोविध्यायाथवा सताम् ।
ताराचन्द्रमुनेः शिष्यः, पुष्करोऽहं व्यवर्णयम् ॥

अन्वयः—अहं ताराचन्द्र मुनेः शिष्यः पुष्करः केवलं काव्यसौख्याय अथवा सतां सौविध्याय व्यवर्णयम् ।

अर्थ—श्री ताराचन्द्र मुनि महाराज का शिष्य पुष्कर मुनि, यह जो गुरुदेव का वर्णन किया है, वह केवल काव्य आनन्द के लिए तथा सुज्ञजनों की सुविधा की दृष्टि से किया है । वास्तव में उनका उदात्त चरित शब्दों द्वारा अवर्णनीय ही है ।

इति श्रीमता राजस्थानकेसरिणा पण्डितरत्नेन
उपाध्यायपदालङ्कृतेन पुष्करमुनिना विरचिते
श्रीमदाचार्यामरसिंह महाकाव्ये अन्तिमः
त्रयोदशः सर्गः

—शुभम्—

❀